गौड़ीय संप्रदाय और मध्यकालीन हिन्दी कृष्णकाव्य

(हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.ड़ी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबंध)

2004

प्रस्तुतकर्ता

शशिकांत मिश्र

विभागाध्यक्ष

प्रो. नूरजहाँ बेगम
एम.ए. (हिन्दी,,संस्कृत) पीएच.डी., डी.लिट.
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद - 500 046

निर्देशक

सच्चिदानंद चतुर्वेदी
रीड़र, हिन्दी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद - 500 046

"त्वदीयं वस्तु गोविन्द

तुभ्यम्यहं समर्पयामि"

माँ शक्तिमयी,

बाबा एवं माँ के पादपद्मों में

DEPARTMENT OF HINDI
SCHOOL OF HUMANITIES
UNIVERSITYSD OF HYDERABAD
HYDERABAD- 500 046

Date: 31/12/04

This is to certify that I, **Shashi Kanta Mishra** have carried out the research embodied in the present dissertation entitled **'GAUDIYA SAMPRADAY AUR MADHYAKALEEN HINDI KRISHNA KAVYA'** for the period prescribed under Ph.D. ordinances of the University of Hyderabad.

I declare to the best of knowledge that no part of this dissertation was earlier submitted, for the award of the research degree of any University.

31/12/04
(Signature of Supervisor)
Dr. Sachidananda Chaturvedi

(Signature of the Candidate)
Name: Shashi Kanta Mishra
Enrollment No. 01HHPH06

Head, Department of Hindi
31/12/04
Head
Department of Hindi

12/1/05
Dean, School of Humanities
DEAN
School of Humanities
University of Hyderabad
Central University P.O.
HYDERABAD - 500 046.

विषय–सूची

पृष्ठ संख्या

भूमिका i - iv

प्रथम अध्याय

भक्ति का उद्भव, विकास और भक्ति आन्दोलन 01 –60

1 . 0 प्रस्तावना

1 . 1 भक्ति

1 – भक्ति शब्द की व्याख्या

2 – भक्ति की परिभाषा

3 – भक्ति के प्रकार

4 – भक्ति के विभिन्न उपादान (गुरु महिमा, सत्संग, नाम महिमा, वैराग्य)

1 . 2 वैदिक वाङ्मय में भक्ति का बीज

1 – वेद में भक्ति

2 – उपनिषद में भक्ति

3 – पुराणों में भक्ति

4 – श्रीमद्भागवत में भक्ति

5 – गीता में भक्ति

6 – पांचरात्र साहित्य में भक्ति

1 . 3 दक्षिण में भक्ति का विकास

1 . 4 मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि

1 – वैष्णव भक्ति आन्दोलन

1 . 5 भक्ति के विभिन्न वैष्णव संप्रदाय

1 . अद्वैत संप्रदाय 2 . श्री संप्रदाय 3 . रूद्र संप्रदाय 4 . सनकादि संप्रदाय 5 . ब्रह्म संप्रदाय 6 . वल्लभ संप्रदाय 7 . सखी संप्रदाय 8 . राधावल्लभ संप्रदाय

1 . 6 चैतन्य संप्रदाय का भक्ति आन्दोलन

1 . 7 निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय

गौड़ीय संप्रदाय : उद्भव और विकास 61 – 97

2 . 0 प्रस्तावना

2 . 1 साहित्येतिहास तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थ : गौड़ीय संप्रदाय

1 . शिवसिंह सरोज 2 . हिन्दुई साहित्य का इतिहास 3 . ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर 4 . मिश्रबंधु विनोद 5 . ब्रजमाधुरी सार 6 . हिन्दी साहित्य का इतिहास 7 . हिन्दी भाषा और साहित्य 8 . हिन्दी साहित्य सुबोध इतिहास

9 . हिन्दी साहित्य की भूमिका 10 . उत्तरी भारत की संत परंपरा

11 . हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

2 . 2 गौड़ीय संप्रदाय का उद्भव

2 . 3 गौड़ीय संप्रदाय का विकास

2 . 4 महाप्रभु चैतन्य देव का जीवन तथा व्यक्तित्व

4.1 – महाप्रभु चैतन्य का जीवनारंभ 4.2 – महाप्रभु चैतन्य की बाल्यावस्था

4.3 – महाप्रभु चैतन्य का अध्ययन तथा अध्यापन 4.4 – विवाह 4.5 – भक्ति के प्रति आकर्षण 4.6 – महाप्रभु चैतन्य का संन्यास 4.7 – यात्रा और धर्म प्रचार

4.8 – अंतिम अवस्था और देहावसान

2 . 5 महाप्रभु चैतन्य : एक अवतार

5.1 – अवतार का कारण 5.2 – अवतार का कार्य

5.3 – चैतन्य अवतार का कारण

2 . 6 महाप्रभु चैतन्य देव का शिक्षाष्टक

2 . 7 निष्कर्ष

तृतीय अध्याय

गौड़ीय संप्रदाय के विकास में सहायक आचार्य और कवि 98 – 143

3 . 0 प्रस्तावना

3 . 1 गौड़ीय संप्रदाय के मान्य षड् गोस्वामी

1 . सनातन गोस्वामी 2 . रूप गोस्वामी 3 . गोपाल भटट् गोस्वामी 4 . रघुनाथ गोस्वामी

5 . रघुनाथ भटट् गोस्वामी 6 . जीव गोस्वामी

3 . 2 गौड़ीय संप्रदाय के विकास में सहायक कवि

1. माधवदास जगन्नाथी 2. आनंदघन 3. रामराय 4. सूरदास मदनमोहन 5. गदाधर भटट् 6. चंद्रगोपाल 7. भगवान दास 8. गरीब दास 9 . विष्णु दास 10. जुगल दास 11. राधिका नाथ 12. किशोर दास 13. मनोहर दास 14. लाखा दास 15. मधुसुदन दास 16. हरि दास 17. तीर्थराम 18. रसिक मोहन राय 19. हरिराम व्यास 20. प्रिया दास 21. भगवंत मुदित 22. कृष्ण दास 23. माधुरी दास 24. वल्लभ रसिक 25. ललित किशोरी और ललित माधुरी 26. गुणमंजरी दास 27. ललित लड़ैती 28. बांकेपिया

3 . 3 गौड़ीय संप्रदाय के विकास में सहायक विद्वान

1. सार्वभौम भटट्ाचार्य 2. प्रकाशानंद सरस्वती 3. कृष्णदास कविराज 4. नारायणभटट्
5. विश्वनाथ चकवर्ती 6. बलदेव विद्याभूषण 7. नरोत्तम दास

3 . 4 निष्कर्ष

<u>चतुर्थ अध्याय</u>

गौड़ीय संप्रदाय के दर्शन और उपासना विधि–विधान 144 – 184

4 . 0 प्रस्तावना

4 . 2 गौड़ीय संप्रदाय का दर्शन : अचिंत्यभेवाभेद

1 . ईश्वर 2 . जीव 3 . प्रकृति 4 काल 5 . कर्म

1.1 अचिंत्य भेदाभेद : ब्रह्म, जीव, जगत्, माया

1 – गौड़ीय संप्रदाय में ब्रह्म तत्व

(अ) श्रीकृष्ण का स्वरूप

(आ) – राधा का स्वरूप

(इ) राधा का परकीया भाव

2 – गौड़ीय संप्रदाय में जीव तत्व

3 – गौड़ीय संप्रदाय में जगत् (संसार) तत्व

4 – गौड़ीय संप्रदाय में माया तत्व

4 . 3 गौड़ीय संप्रदाय के भक्ति तत्व

1 — साधन भक्ति

2 — भाव भक्ति

3 — प्रेम भक्ति

4 . 4 प्रेम भक्ति की परिणति महाभाव

4 . 5 भक्ति की रस रूप में स्थापना

4 . 6 गौड़ीय संप्रदाय उपासना विधि—विधान

4 . 7 गौड़ीय संप्रदाय में भक्ति उत्प्रेरक साधन

4 . 8 गौड़ीय संप्रदाय की साधना के विभिन्न अंग

4 . 9 निष्कर्ष

पंचम अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण—भक्ति काव्य और गौड़ीय संप्रदाय 185 — 262

5 . 0 प्रस्तावना

5 . 1 मध्यकालीन कृष्ण भक्तिकाव्य और गौड़ीय संप्रदाय

1 . वल्लभ संप्रदाय के कृष्ण भक्तिकाव्य और गौड़ीय संप्रदाय

2 . निम्बार्क संप्रदाय के कृष्ण भक्तिकाव्य और गौड़ीय, संप्रदाय

3 . राधावल्लभ संप्रदाय के कृष्ण भक्तिकाव्य और गौड़ीय संप्रदाय

4 . संप्रदाय रहित कृष्ण भक्त कवि और गौड़ीय संप्रदाय

अ . कृष्ण प्रेम दिवानी मीराबाई

आ . कृष्ण भक्त कवि रसखान

5 . 2 राम भक्ति संप्रदाय के कवि और गौड़ीय संप्रदाय

5 . 3 अन्य भाषा के कृष्णभक्ति काव्य और गौड़ीय संप्रदाय

1 . उड़िया कृष्ण भक्तिकाव्य और गौड़ीय संप्रदाय

2 . बंगला कृष्ण भक्तिकाव्य और गौड़ीय संप्रदाय

3 . मराठी और गुजराती कृष्ण भक्तिकाव्य और गौड़ीय संप्रदाय

5 . 4 निष्कर्ष

उपसंहार 263 — 266

ग्रंथ सूची 267 — 274

भूमिका

हरि शब्द की अर्थव्यंजना में पूरा जगत् समा जाता है। इसीलिए जगत् की समस्त वस्तुओं में से हरि श्रेष्ठ हैं। उसी की प्राप्ति में जगत् लगा हुआ है। भक्ति की कल्पना उसी की प्राप्ति के लिए की गई है। मनुष्य के जीवन की सार्थकता उसी हरि की प्राप्ति में है। किन्तु आज का मानव उसे कहाँ समझता है ! पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से प्रथम तीन की प्राप्ति के लिए वह अत्यंत व्याकुल है। अंतिम की बात वह मन से निकाल चुका है। रे मानव! अंतिम की प्राप्ति के लिए पहले तुझे तीनों को छोड़ना पड़ेगा । जब तक नहीं छोड़ेगा तब तक अंतिम की आशा करना व्यर्थ है ।

मेरे अपने शोध विषय "गौड़ीय संप्रदाय और मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण काव्य" को शोध की सुविधा के लिए पाँच अध्यायों में बाँटा गया है। प्रथम अध्याय 'भक्ति का उद्भव, विकास और भक्ति आन्दोलन' है। इसमें भक्ति शब्द की व्याख्या, परिभाषा और प्रकार के साथ उसके विभिन्न उपादानों पर प्रकाश ड़ला गया है । वेद, उपनिषद्, पुराण, श्रीमद्भगवद्गीता और पांचरात्र साहित्य आदि में भक्ति का जो स्वरूप प्राप्त होता है उसका संक्षेप में विवेचन कर एक निष्कर्षात्मक स्वरूप तक पहुँचने का प्रयास किया गया है । भक्ति आन्दोलन में उत्तर और दक्षिण का विभाजन बहुत पुराना है। इस आंदोलन को कुछ आलोचक उत्तर से दक्षिण ले जाते हैं तो कुछ दक्षिण से उत्तर। मैंने किसी विवाद में न पड़, सीधे–सीधे मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में, दक्षिण में भक्ति का विकास दिखाया है । महाप्रभु चैतन्य के 'अचिंत्य भेदाभेद' वाद को सभी, आदि शंकराचार्य द्वारा प्रारंभ किए गए अद्वैतवाद और उसकी प्रतिक्रिया में खड़े हुए अन्य वादों की एक कड़ी के रूप में ही देखते हैं । इसीलिए इन वादों और संप्रदायों के मध्य गौड़ीय संप्रदाय का स्थान निर्धारित करने के लिए मैंने अद्वैत, श्री, रूद्र, सनक, ब्रह्म, वल्लभ, सखी, राधा–वल्लभ और अंत में गौड़ीय संप्रदाय का परिचय प्रस्तुत किया गया है ।

द्वितीय अध्याय ''गौड़ीय संप्रदाय : उद्भव और विकास'' है। गौड़ीय संप्रदाय का विकास दिखाने के लिए विभिन्न साहित्येतिहास, धार्मिक तथा साहित्यिक ग्रंथों का अनुशीलन किया गया है । इसी कम में महाप्रभु चैतन्य देव के जीवन तथा धार्मिक ग्रंथों का अनुशीलन किया गया है । इसी कम में महाप्रभु चैतन्य देव के जीवन तथा व्यक्तित्व और कृतित्व पर भी प्रकाश ड़ाला गया है । यहाँ प्रभु चैतन्य देव को भगवान श्रीकृष्ण का अवतार माना गया है । अतः आवश्यक था कि अवतार के कारण और कार्य पर कुछ प्रकाश ड़ाला जाए, वैसा किया गया है ।

तृतीय अध्याय ''गौड़ीय संप्रदाय के विकास में सहायक आचार्य और कवि'' है। इसमें गौड़ीय संप्रदाय के प्रतिष्ठित षड् गोस्वामियों – सनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी, गोपाल भट्ट गोस्वामी, रघुनाथ गोस्वामी, रघुनाथ भट्ट गोस्वामी, जीव गोस्वामी – के साथ अन्य सहायक कवियों और आचार्यों के व्यक्तित्व और कृतित्व का परिचय संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है ।

चतुर्थ अध्याय ''गौड़ीय संप्रदाय का दर्शन और उपासना विधि –विधान'' है । इस अध्या के अंतर्गत गौड़ीय संप्रदाय का दर्शन 'अचिंत्य भेदाभेद' के तत्वों – ब्रह्म, जीव, जगत्, माया – का विवेचन किया गया है । श्रीकृष्ण और राधा के स्वरूप पर प्रकाश ड़लते हुए, गौड़ीय संप्रदाय के भक्ति तत्वों, विधि–विधानों और साधना के विभिन्न अंगों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है ।

पंचम तथा अंतिम अध्याय ''मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण काव्य और गौड़ीय संप्रदाय'' रहा है। इसमें मध्यकालीन कृष्णभक्ति काव्य, वल्लभ संप्रदाय के कृष्णभक्ति काव्य, निम्बार्क संप्रदाय के कृष्णभक्ति काव्य, राधा–वल्लभ संप्रदाय के कृष्णभक्ति काव्य,, संप्रदाय रहित कृष्णभक्ति काव्य, रामभक्ति संप्रदाय में कृष्णभक्त कवि, उड़िया, बंगला, मराठी और गुजराती साहित्य के कृष्णभक्ति काव्यों पर गौड़ीय संप्रदाय का प्रभाव दिखाया गया है ।

उपसंहार में शोध का सार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

आभार

भक्ति पर शोध करने की इच्छा मेरे मन में तब जागी थी जब मैंने अपने पूज्य पिताजी की प्रेरणा से एक आश्रम में जाना प्रारंभ किया था। उस आश्रम में प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल, कीर्तनियाँ भाइयों की ताल में ताल मिलाकर मैं चैतन्य महाप्रभु प्रदत्त भक्ति महामंत्र **'हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे / हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे'** गाया करता था । कभी कभार मुझे आश्रम के परम पूज्य बाबा का प्रवचन सुनने का भी सौभाग्य प्राप्त हो जाता था । आज भी उन अधरों से निकले प्रवचन की गूँज मेरे श्रवणेन्द्रियों में समाई हुई है । सच कहें, तो मेरे मन में भक्ति का अंकुर मेरे पिताजी की प्रेरणा से ही फूटा है तथा मेरी माँ के भक्तिमय जीवन ने इस अंकुर को विकसित होने में सहायता दी है । मैं किस रूप में उनकी वंदना करूँ, किन शब्दों से करूँ । आभार व्यक्त करना भी तो धृष्टता ही होगी ।

इस शोध को अंतिम रूप देने में मेरे शोध निर्देशक डॉ. सच्चिदानंद चतुर्वेदी जी ने समय–समय पर मेरी अपेक्षित सहायता की है । मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । इसके अतिरिक्त मैं हिन्दी विभाग के सभी गुरूजनों; विशेषकर विभाग की वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रो. नूरजहाँ बेगम का आभारी हूँ, जिनकी प्रेरणा मेरे साथ सदैव रही है । बहुत स्वल्प समय में परिचित हुए डा. पी. एच. सेतुमाधव राव तथा डॉ. के. वैजयन्ती की सलाह मेरी शोध रूपी नाव को आगे बढाने में पतवार जैसी रही है, उनका भी बहुत आभारी हूँ । कहा गया है ''राजद्वारे श्मशाने च यः तिष्ठति स बान्धवः ।'' अर्थात् सच्चा बंधु वही है जो विपद के समय धैर्य देते हुए हौसला बढ़ाता है। मेरा शोध कार्य कभी संपन्न न हो पाता यदि मेरे अग्रज तुल्य अमिय भैया, रति भैया और सरोज भैया ने मेरी सहायता न की होती । उन्हें मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ । मेरे कुछ अन्य मित्रों ने भी मेरे शोध कार्य में सहायता पहुँचायी है । इस के लिए मैं शरत, विश्वनाथ, अरुण, सालु, पुष्पा को धन्यवाद देता हूँ ।

मेरे स्वजनों से सुदूर रहने पर भी उनकी अशाब्दिक प्रेरणा पल–पल हवाओं से मुझे मिलती रही है, उनका भी मैं आभारी हूँ ।

उन भगवद्भक्त, कवि तथा विद्वान; जिनकी स्वकथित या स्वलिखित वाणियों से आज मेरा शोधकार्य पूर्ण हो पाया है, उन्हें मेरा आंतरिक नमन । उन गौड़ीय मठों के मठाधीशों को मेरा आन्तरिक वन्दन; जिनसे मिलकर मुझे कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है ।

यह शोध कार्य दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के राष्ट्रीय शोध ग्रंथालय से प्राप्त अनेक पुरानी सामग्रियों की सहायता से पूरा हो पाया है। इसके लिए मैं ग्रंथालय के वरिष्ठ ग्रंथपालक जी. आर. भगवंत गौड़र तथा भारती जी को अंर्तमन से धन्यवाद देता हूँ।

मैंने अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार प्रस्तुत शोध कार्य पूर्ण करने का प्रयास किया है । मेरा यह शोध, विशेषकर इस विषय पर, पहला और अंतिम है, यह मैं नहीं कहता । जैसा भी है, मैं आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ । यदि इससे शोध की परंपरा आगे बढ़ सकी तो मुझे अतीव प्रसन्नता होगी ।

शशिकांत मिश्र

प्रथम अध्याय

भक्ति का उद्भव, विकास और भक्ति आन्दोलन

1 . 0 प्रस्तावना

1 . 1 भक्ति

1 – भक्ति शब्द की व्याख्या

2 – भक्ति की परिभाषा

3 – भक्ति के प्रकार

4 – भक्ति के विभिन्न उपादान (गुरू महिमा, सत्संग, नाम महिमा, वैराग्य)

1 . 2 वैदिक वाङ्मय में भक्ति का बीज

1 – वेद में भक्ति

2 – उपनिषद में भक्ति

3 – पुराणों में भक्ति

4 – श्रीमद्भागवत में भक्ति

5 – गीता में भक्ति

6 – पांचरात्र साहित्य में भक्ति

1 . 3 दक्षिण में भक्ति का विकास

1 . 4 मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि

1 – वैष्णव भक्ति आन्दोलन

1 . 5 भक्ति के विभिन्न वैष्णव संप्रदाय

1 . अद्वैत संप्रदाय 2 . श्री संप्रदाय 3 . रूद्र संप्रदाय 4 . सनकादि संप्रदाय 5 . ब्रह्म संप्रदाय 6 . वल्लभ संप्रदाय 7 . सखी संप्रदाय 8 . राधावल्लभ संप्रदाय

1 . 6 चैतन्य संप्रदाय का भक्ति आन्दोलन

1 . 7 निष्कर्ष

1. 0 प्रस्तावना

आनन्द ही भक्ति है। भक्ति एक मानसिक आनन्द की खोज है । यह खोज आत्मचेतन मानव में अधिक जागरूक हो उठती है। प्रेम उसी आनन्द को पाने का प्रबलतम साधन है। माया तथा मोह से परिचालित मानव–प्रेम देह एवं प्राण की कामनाओं में उलझकर रह जाता है। जहाँ प्रेम अपने अनाविल रूप में प्रकट नहीं हो पाता, वहाँ आनन्द भी नहीं रह सकता। प्रेम आत्यंतिक रूप से दुःख की निवृत्ति चाहता है। अगर उसे दूसरे शब्द में कहा जाए तो यह आनन्द की खोज करता है। प्रेम आनन्द की पुंजीभूत किरण है। यह आत्मा का नित्य गुण है। प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए भट्ट रमानाथ शास्त्री जी कहते हैं कि –''उस आनन्द रूप आत्मा का ही विशुद्ध धर्म या किरण जब मन के द्वारा अंतर प्रकट होता है, तब वह स्नेह किंवा प्रेम कहलाता है।''[1] प्रीति संदर्भ में यह कहा गया है कि पुरुष का प्रयोजन सुख प्राप्ति एवं दुःख निवृत्ति है। भगवत्प्रेम में ही आत्यन्तिक सुख है, अन्य आश्रयों से प्राप्त सुख कदापि सत्य नहीं हो सकता, क्योंकि वह नित्य नहीं है। जो सत्य है, वही नित्य है। अतएव अन्य प्रेम अफुरंत न होने के कारण अनिवार्यतः दुःख में परिणत होता है, यानी आनन्द का निषेधक बनता है । यह सिद्ध है कि केवल भगवान नित्य परमानन्द स्वरूप हैं। अतः उनके प्रति उन्मुख प्रेम ही नित्य आनंद स्वरूप हो सकता है। उसमें ही दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति संभव होती है।

प्रेम चेतना का शिरोमणि है। यह सत्ता की आत्मपरिपूर्णता का पथ है। इसके द्वारा आत्मा, आत्मोपलब्धि की गहनता, आह्लाद एवं संपूर्णता को प्राप्त कर लेती है। प्रेम, विभाजन के क्लेश से आत्मा को ऐक्य के आनन्द में पहुँचाता है। अतः भगवान की ओर प्रेम सहित अभिमुख होना सर्वाधिक आध्यात्मिक पूर्ति के लिए अपने को तैयार करना है। मनुष्य में प्रेम; संवेग के रूप में अधिक व्यक्त होता है। उसे जीवन में लिप्त करने वाला आकर्षण प्रमुखतः संवेग का ही होता है। संवेग से ही जीवन को गति मिलती है किन्तु दुःख का कारण भी वही होता है। यदि संवेग की धारा को भगवान की ओर मोड़ दिया जाता है तो व्यक्ति की चेतना में दिव्य परिवर्तन आ जाता है।

जीवन का सुख; प्रेम में है, वासना में नहीं। वासना में जहाँ तम के परमाणु व्यस्त होकर दौड़ते हैं, वहाँ प्रेम में प्रकाश जगमगाता है। वासना में जहाँ असत्य, अंधकार, जड़ता

है; वहाँ प्रेम में सत्, प्रकाश, आनंद है। उसे पाकर मानव सिद्ध हो जाता है। उसे कुछ पाने की और लालसा नहीं रहती है। उसका जीवन अमृतमय बन जाता है। वह मरकर भी जीवित रहता है और तृप्त हो जाता है। अतः 'नारद भक्ति सूत्र' में कहा गया है कि –

''यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति अमृतोभवति, तृप्तो भवति।'' [2]

प्रेम ही जीवन है, प्रेम ही आलोक है, प्रेम ही मंगल है, प्रेम ही शिव–रूप है और प्रेम ही अद्वैत है। इसमें मल का निवारण होता है। जीवात्मा को प्रत्यभिज्ञा होता है। प्रत्यभिज्ञा का मतलब अपने सही रूप को पुनः पहचानना है। 'स्व' से एक होना है। यह कार्य प्रेम द्वारा ही संभव हो पाता है।

जब भक्ति को एक मानसिक खोज कहा गया है तब इस संदर्भ में यह निश्चित है कि समुद्र में लहरें उठने की तरह मनुष्य के मानस पटल पर अनेक प्रकार की भाव धाराएँ उठती हैं। यदि उन भावधाराओं को सही रूप दे दिया जाए तो वे भक्ति बन सकती है, नहीं तो नहीं। उदाहरण स्वरुप यह देखा जा सकता है कि एक बीज को वृक्ष बनने तथा वृक्ष में फूल आने और फल होने तक जैसे कुछ प्राकृतिक प्रकियाएँ सहायता करती हैं, ठीक उसी प्रकार मन–रूपी वृक्ष पर भक्ति रुपी पुष्प के प्रस्फूटित होने के लिए कुछ प्रक्रियाओं से गुजरना होता है। इसका एक रेखा–चित्र इस प्रकार दिया जा सकता है।

प्रीति ⟶ स्नेह ⟶ प्रेम ⟶ श्रद्धा ⟶ भक्ति

उपर्युक्त सारणी को सरल रूप में समझने के लिए प्रेम के सतही धरातल पर यह कहा जा सकता है कि मन की रागत्मिका वृत्ति का नाम प्रेम है। अपने से छोटे व्यक्तियों पर जब प्रेम किया जाता है तो उसे स्नेह कहते हैं। समान व्यक्तियों के परस्पर प्रेम को प्रीति कहा जाता है। पति–पत्नी के परस्पर प्रेम को प्रणय कहा जाता हैं। अपने से बड़े गुरूजनों के प्रति यही प्रेम श्रद्धा बन जाता है। माता का अपने पुत्र के प्रति यही प्रेम ममता कहलाता है। किसी वस्तु विशेष अथवा भाव विशेष के प्रति यही प्रेम आसक्ति कहलाता है। लौकिक और अलौकिक विषयों से आकृष्ट प्रगाढ़ प्रेम जब ईश्वर के प्रति होता है तो उसे भक्ति कहा जाता है। किन्तु इसी प्रेम की गहराई के धरातल पर उतरकर अगर सूक्ष्म अध्ययन किया जाए, तो हम कह सकते हैं कि जैसे बीज बोया, सम्यक ऋतु हो, ठीक भूमि हो, जल मिले, सूर्य की किरण मिले, तो स्वभावतः और अनिवार्यतः बीज अंकुरित होगा। यदि भूमि ठीक न हो, पथरीली हो, सूरज उपलब्ध न हो, जल न मिले तो बीज अंकुरित नहीं होगा। अतः बीज

अंकुरित हो और उसे सब अनुकूल चीजें मिलें तो यह निश्चित है कि यह वृक्ष बनेगा। जब वृक्ष हो, तब यह भी निश्चिंत है कि एक न एक दिन फूल भी खिलेंगे और फल भी लगेगें। यह सब सहज ही होता है।

प्रीति की ऊर्जा को भक्ति बननी ही चाहिए। प्रीति भक्ति बनने को ही पैदा हुई है। दूसरे शब्द में अगर कहें तो मनुष्य भगवान होने को पैदा हुआ है। मनुष्यता भगवत्ता में रूपान्तरित होनी ही चाहिए। वह उसका अंतर्निहित सहज स्वभाव है। यह ध्यान रहे कि जब प्रीति भक्ति बनती है, तभी व्यक्ति समष्टि बन जाता है। किन्तु प्रीति से भक्ति बनने की राहों में अनेक अंतर्निहित बाधाएँ आ उपस्थित होती हैं। ये बाधाएँ प्रीति, स्नेह, श्रद्धा आदि को दूषित कर देती हैं। उनमें शुद्धता नहीं होती है। इसमें ईर्ष्या, घृणा अदि कलुषित भावनाएँ आ जाती हैं, जिसके चलते प्रीति न स्नेह बन पाती है, न स्नेह प्रेम । इस क्षेत्र पर प्रेम पवित्र नहीं हो पाता है। इसमें पावनता नहीं आ पाती है। प्रेम के अग्नि में धुआँ ही धुआँ भरा रहता है। इसमें न स्पष्टता होती है, न स्वच्छता। जिसके चलते प्रेम से श्रद्धा का जन्म नहीं हो पाता है। "स्नेह शुद्ध हो तो प्रीति या प्रेम बने। प्रेम शुद्ध हो तो श्रद्धा बने और श्रद्धा शुद्ध हो तो भक्ति।"[3] इसको और स्पष्ट करने के लिए एक वैज्ञानिक उदाहरण देखा जा सकता है। जैसे न्यूटन ने, बगीचे में बैठते समय पेड़ से एक फल गिरते हुए देखा और उस पर अनुसंधानात्मक रवैया अपना कर यह प्रमाणित कर दिखाया कि धरती की एक शक्ति है, वह है गुरुत्वाकर्षण शक्ति जो, हर चीज को अपनी ओर खींच लाती है। कितु सही मायने में इस विषय पर ध्यान केन्द्रित करें तो, हमारे मन में यह सवाल उठना स्वाभाविक हो जाता है कि जो फल आकाश छुए पेड़ के अग्र की ड़ालियों पर लटका हुआ है, यह वहॉ तक पहुँचा कैसे? हमने बीज तो बोया था जमीन में, और फल लगा आकाश में, यह कैसे संभव हो सकता है ? किन्तु यह सत्य है कि धरती की एक शक्ति है जो, उस पेड़ से टूटे फल को नीचे खींच लाती है। किन्तु यह भी सिद्ध है कि ऐसी कोई शक्ति है, जो पेड़ को ऊपर की ओर खींचने में मदद् करती है।

इससे यह तय होता है कि भक्ति का साम्राज्य आकाश की ओर है। भक्ति मनुष्य को शून्यता की ओर ले जाती है, जिस राज्य में मोह, माया, ईर्ष्या, घृणा, अहंकार आदि चीजें नहीं होती हैं। भक्ति के धरातल पर मनुष्य को स्वतंत्रता का एहसास होता है। उसमें प्रेम रूपक दो पंख होते हैं, जो उसे ऊपर की ओर ले चलते हैं। जब प्रेम रूपक पंख हो जाता है यानी

मनुष्य पूर्ण रूपेण सारे बंधनों से दूर चला जाता है; तब उसके मन में आनंद की महोदधि उमड़ने लगती है। तब यह समझ लेना कि प्रीति का बिरवा अपनी पूरी ऊँचाई पर आ गया है। अभी इसमें भक्ति का फूल तथा फल लगेगें। मंदिर में जो फूल या फल लेकर भक्त जाता है, प्रकृत में ये असली नहीं हैं। ये तो प्रतीक मात्र हैं। असली फूल या फल तो भक्ति के होते हैं, जो भक्त ईश्वर को भेंटने के लिए अपने साथ लेकर जाता है। अब सारी चीजों में तुम्हें मधु की सुगंध मिलेगी। अखिर मधु क्या है? मधु तो मधुसुदन ही है। उस मधु को भक्त पूरे संसार में बाँटता है। वह अपने दोनों हाथों की अँजुली से दूसरों की अँजुली में उलीच देता है। इस संदर्भ में 'अथातो भक्ति जिज्ञासा' में कहा गया है कि स्नेह उलीचने से प्रेम प्राप्त होता है, प्रेम उलीचने से श्रद्धा प्राप्त होती है और श्रद्धा उलीचने से भक्ति प्राप्त होती है। अतंतः किसी पर मोहवश बंध कर नहीं रहना है। किसी को अंतिम मानकर रुक नहीं जाना है, पकड़कर नहीं रहना है। प्रीति, स्नेह, प्रेम, श्रद्धा को समझना है यानी उनसे समझौता करनी है। शांडिल्य ने इस संदर्भ में सही कहा था कि "संसार में कुछ पकड़ो मत, बढ़ते जाओ। उसे पकड़ोगे तो पत्थर हो जाएगा; उसे समझोगे तो मुक्ति मिल जाएगी।"[4]

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि भक्ति मन की उपज उस गंगा की धारा है जो भक्त की सारी प्रवृत्तियों को अपनी शीतलता से शांत कर आगे बढ़ जाती है औ भक्त को उस ब्रह्म से साक्षात कराती है जहाँ पर भक्त को उसके जन्म की सार्थकता की उपलब्धि हो पाती है ।

1 . 1 भक्ति

1 – भक्ति शब्द की व्याख्या

भक्ति अपने आपमें एक महान तथा विशिष्ट अर्थ देने वाला शब्द है। इसके बारे में बताना या उसे परिभाषित करना, आसमान की ऊँचाई नापना और सागर की गहराई के बारे में बताने के समान है। यह अनुभव करने की चीज है। यह गूँगे का गुड़ है। इसका संबंध मनुष्य के मन से है, मनुष्य भक्ति के बिना नहीं रह सकता । बादल जब पानी से भर जाता है तो उसे बरसना पड़ता है और फूल जब सुवास से भर जाते हैं, उन्हें हवाओं को अपनी सुगंध लुटा देनी होती है। जब कोई दिया जलता है तो वह आलोक देता ही है। मनुष्य के

अंदर भी एक लहर अंतत काल से बहती हुई आई है; यह है प्रेम की लहर । मनुष्य फूल या दिया की तरह अपने मन में उठनेवाली प्रेमरूपी लहरों को प्रकट करने के लिए छटपटाता है। उसे एक प्रिय की आवश्यकता रहती है । जब उसकी छटपटाहट चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब वह एक आनंद का अनुभव करने लगता है । यही आनन्द भक्ति है ।

वेदों में 'भक्ति' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता है। 'निरुक्त' में भक्ति शब्द का उल्लेख दो स्थलों पर –'भक्ति साहचर्य' और 'भक्तीनि' हुआ है।"तासां भक्ति साहचर्य व्याख्यास्यामः । भक्तिश्च साहचर्यं च भक्तिकृतं वा साहचर्यमिति ।" तथा "अथैतान्यग्निभक्तीनि......... ।"[5] यह निश्चित है कि वैदिक साहित्य की शब्दावली का प्रथम प्रामाणिक ग्रंथ निघण्टु माना जाता है और निघण्टु का भाष्य निरुक्त है । निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भक्ति शब्द का सर्व प्रथम उल्लेख ईश्वर के प्रति प्रेम के अर्थ में नहीं है, बल्कि एक गौण अर्थ में है । यह ध्यान रहे कि बाद में चलकर ध्वनिकार आनंदवर्धन ने 'भोग' के अर्थ में इसका प्रयोग किया । उन्होंने भक्तिवादी पक्ष का निरूपण करते हुए 'ध्वन्यालोक' में यह कहा है कि –

"भक्तिमाहुस्तमन्ये । अन्ये तं ध्वनि संज्ञितं काव्यात्मानं गुणवृत्तिरित्याहुः ।"[6]

अर्थात् अन्य लोग उसे भक्ति कहते हैं। अन्य लोग ध्वनि संज्ञावली उस काव्य की आत्मा को गुणवृत्ति कहा करते हैं ।

लोचन टीका के अनुसार – "भज्यते सेव्यते पदार्थेन . . . ।" [7]

पाणिनीय सुत्र के अनुसार 'भजसेवायाम्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगने से 'भक्ति' शब्द बनता है। हेमचंद्र के 'अमरकोष' के अनुसार "भक्तमन्ने तत्परे च, इति हेमचंद्रः।"[8] इसके अलावा भी भक्ति शब्द अपने सही अर्थ सहित शब्दार्थ कौस्तुभ, वाङ्मयार्पण तथा हलायुध कोश में उपलब्ध होता है । परंतु इन ग्रंथों में प्राप्त भक्ति शब्द का अर्थ पहले के ग्रंथों से कुछ भिन्न है । यहाँ इसका अर्थ है –सेवा, विभाग, अनुराग विशेषः, ईश्वर परानुरक्तिः, उपासना आदि । तदोपरांत भक्ति शब्द शनैः शनैः, श्रद्धापरक प्रेम के अर्थ में केन्द्रित होने लगा । पाली भाषा में भक्ति शब्द का प्रयोग उपासना के अर्थ में किया गया है । "Bhakti Marga is the path of devotional practice, with some expectation of spiritual aid in return centering around the veneration (puja) of Buddha in various forms or manifestations."[9] प्राकृत में भी भक्ति शब्द का प्रयोग सेवा, उपासना आदि के अर्थ में मिलता है ।

2 – भक्ति की परिभाषा

भक्ति, भगवान की प्रेमभाव जन्य निकटता का नाम है। भक्ति दर्शन के सूत्र तो वेदांत के साथ अनुस्यूत हैं; परंतु इनका तत्व निरूपण नारद और शाण्डिल्यादि के भक्ति सूत्रों में प्रामाणिक रूप से हुआ है। रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों में भक्ति का काव्यात्मक और धार्मिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। भक्ति के आचार्यों ने इन सभी स्रोतों के आधार पर भक्ति–तत्व की पुनःव्याख्या की । भक्ति के संदर्भ में श्रीमद्‌भागवद्‌गीता प्रथम प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। गीता के बारहवें अध्याय में भक्ति से संबंधित जो श्लोक हैं, उनमें भक्ति के संदर्भ में एकनिष्ठता पर जोर दिया गया है ।[10] इसके नौवें, तेरहवें तथा चौदहवें अध्याय में वर्णित भक्ति संबंधित व्याख्या में इष्ट के प्रति एक निष्ठाभाव को ही भक्ति माना गया है। नौवें अध्याय में यह कहा गया है कि –

"मन्मना भव मद्‌भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ।"[11]

अर्थात् मुझ में मन लगा, मेरा भक्त हो, मेरी पूजा कर और मुझे नमस्कार कर । इस प्रकार मत्परायण होकर,योग का आस्वाद करने से मुझे ही पाएगा । 'महाभारत' में भक्ति के एकान्तिक रूप पर बल देते हुए कहा गया है कि – " . . . एकन्तिनस्तु पुरुषा गच्छन्ति परमपदम् । . . ."[12] शाण्डिल्य, "सा परानुरक्तिरीश्वरे"[13] कहकर ईश्वर में परा अनुरक्ति की घोषणा करके अपने ग्रंथ में 'पराभक्ति' की विस्तार से व्याख्या करते हैं। महर्षि नारद ने भी लगभग इसी प्रकार की परिभाषा की है। "सात्वस्मिन् परम प्रेमरूपा ।"[14] यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि शाण्डिल्य की 'परानुरक्ति' और नारद के 'परम प्रेम' में, अर्थ के धरातल पर बहुत कुछ समानताएँ हैं। यह ध्यातव्य है कि नारद ने अपने भक्तिसूत्र ग्रंथ में अपने पूर्वाचार्यों पराशर मुनि तथा गर्गाचार्य का नाम लेकर कहा है कि – "पूज्यादिष्वनुरागः इति पराशर्यः।"[15] तथा "कथादिष्वति गर्गः।"[16] अतः पराशर मुनि के अनुसार पूजा आदि में अनुराग रखना भक्ति है तथा गर्गाचार्य के अनुसार भगवान के कीर्तन, भजन और पुराण आदि में प्रीति रखना भक्ति है। नारद ने अपने भक्तिसूत्र में शाण्ड़िल्य के मत को भी उद्धृत किया और कहा कि "आत्मरत्य विरोधेनेति शाण्डिल्यः ।"[17] अर्थात् आत्मरति के अविरोधी विषय में अनुराग होना

भक्ति है । उन्होंने आगे कहा कि भगवान के प्रति अपने समस्त कर्मों को अर्पित करना और उनका विस्मरण होने पर व्याकुल होना ही भक्ति है – "नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे व्याकुलतेति।"[18]

अंततः नारद ने संक्षेप में पूर्व आचार्यों द्वारा कही गई भक्ति के आधारों पर यह निष्कर्ष दिया कि – "गुणरहितं कामना रहितं प्रतिक्षण वर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमं ।"[19] अर्थात् भक्ति गुण रहित होती है । इसमें स्वार्थ की गंध नहीं रहती है, इसमें शैथिल्य कभी नहीं आता, आवेश परिवर्धित होता रहता है और भक्ति की भावना सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती जाती है ।

भक्ति मीमांसा में मन के उल्लास विशेष को भक्ति कहा गया है –

"भक्तिर्मनस उल्लास विशेषः ।"[20]

मधुसूदन सरस्वती के अनुसार मन की समग्र वृत्तियों का भगवान की ओर छटपटा कर प्रवाहित होना भक्ति है।[21] रूप गोस्वामी ने 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में श्रीकृष्ण के प्रति ऐसे अनुराग या प्रेम को उत्तम भक्ति कहा है, जो अन्य अभिलाषाओं से शून्य हो; ज्ञान और कर्म से अनावृत हो –

"अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्म्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।।"[22]

भक्ति में सबसे पहले श्रद्धा या विश्वास की आवश्यकता होती है और साधु संग से वह विश्वास क्रमशः प्रेम या भक्ति के रूप में परिणत हो जाता है। रूप गोस्वामी जी के अनुसार भक्ति के विकास की स्थितियाँ इस प्रकार है –

"आदौ श्रद्धा ततः साधु संगोथ भजन क्रिया ।
ततोऽनर्थ निवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः ।।"[23]

'भागवत' को भक्ति का महान उपजीव्य ग्रंथ माना जाता है । इसमें भक्ति की सीधी परिभाषा प्रस्तुत नहीं हुई है, बल्कि इसमें भक्ति का मानवीकरण किया गया है। अवश्य इसमें भक्ति का स्थान निर्धारित किया गया है।[24] फिर भी यह कहा जा सकता है कि भागवत में भक्ति को ईश्वर के प्रति प्रेम तो माना ही गया है।

"निःशेषशेषमुखगीतकथैकपानाः प्रेमप्रकाशकृतये शरणंगतोऽस्मि ।"[25]

'विवेकचुडामणि' में भक्ति का ज्ञानात्मक लक्षण देते हुए स्वरूपानुसंधान को भक्ति कहा है – "स्वरूपानुसंधान भक्तिरित्यभिधीयते ।"[26] रामानुज ने भक्ति की परिभाषा इस प्रकार दी है –

स्नेहपूर्वमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः। अंततः चैतन्य महाप्रभु के अनुसार प्रेम ही सबसे बड़ा धर्म है। अहेतुकी प्रेम सर्वोच्च तत्व है। भक्त मोक्ष की कामना न करके इसी प्रेम रूपी महातत्व की कामना करता है। इस संदर्भ में महाप्रभु ने कहा कि –

''न धनं न जनं सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये ।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भगवद्भक्ति रहैतुकीत्वयि ।।''[27]

भक्ति की परिभाषा की दृष्टि से अगर निर्गुण वादी संत कवियों को देखें तो उनमें यह प्रवृति लुप्त प्रायः नजर आती है। किंतु इस संदर्भ में सगुण रामभक्त कवि तुलसी दास की पंक्ति – 'मन क्रम वचन रामपद नेहु' कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है।[28] आधुनिक काल तक आते–आते आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भक्ति संबंधी परिभाषा कुछ हद तक नारद मुनि तथा शांड़िल्य मुनि की परिभाषा से मेल खाते हुए नजर आती है। शुक्ल जी के अनुसार ''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है ।''[29] इस परिभाषा में प्रेम के साथ श्रद्धा का समायोजन 'परा'(शाण्ड़िल्य का) और 'परम प्रेम' (नारद का) के निकट माना जा सकता है।

3 – भक्ति के प्रकार

भक्ति के प्रकारों के संबंध में आचार्यों में मतभेद दिखाई देते हैं । किसी ने दो प्रकार बताये हैं तो किसी ने नौ तथा किसी ने दस । भक्ति के सांगोपांग वर्णनों के पश्चात् यह तथ्य सामने आता है कि भक्ति मनुष्य के मन की उपज है तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भक्ति मनुष्य की मूल प्रवृतियों का उदात्तीकृत रूप है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भक्ति के प्रकारों की स्थापना भक्ति शास्त्रों में ओर पुराणों में की गयी है । नाम, रूप और भाव आदि तीन तत्वों से भक्ति का संबंध होने से नवधा भक्ति की सृष्टि मानी गई है –

''श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।''[30]

इसके अतिरिक्त मनुष्य मन के स्वभावानुसार सात्विकी, राजसी तथा तामसी भक्ति का निरूपण हुआ है। इसमें वर्णित निष्काम भक्ति, अहैतुकी भक्ति, नैष्ठिकी भक्ति, अकिंचन भक्ति, निरपेक्ष भक्ति आदि को भी भक्ति के विविध प्रकारों के रूप में स्वीकारा जा सकता है।[31]

शांड़िल्य मुनि के भक्ति सूत्रों में भक्ति दो प्रकार की यानी मुख्या और इतरा कही गई है – ''सा मुख्या इतरापेक्षितत्वाम्''[32] यह ध्यान रहे कि 'इतरा' भक्ति को शांड़िल्य ने गौणी भक्ति कहा है और इस गौणी भक्ति के अंतर्गत देव भक्ति को भी प्रभु भक्ति की सहचरी होने के कारण स्थान प्राप्त हुआ है – ''देवभक्तिरितरस्मिन साहचर्यात्''[33] । यह सूचनार्थ है कि गीता में भक्तों के चार प्रकार, यथा – अर्थार्थी, आर्त्त, जिज्ञासु तथा ज्ञानी माने गये हैं।[34] इसके आधार पर भक्ति के चार प्रकार भी माने जा सकते हैं । किन्तु महर्षि शांडिल्य ने ऊपर वर्णित गौणी भक्ति तीन प्रकार की मानी है – आर्त्त भक्ति, जिज्ञासा भक्ति, अर्थर्थिता भक्ति।[35] इनके पश्चात् महर्षि नारद ने शांड़िल्य के द्वारा प्रदत्त गौणी भक्ति को दो प्रकार का स्वीकारा है –

''गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादिभेदाद्वा ।''[36]

भागवत के आधार पर ऊपर वर्णित नवधा भक्ति के समान आचार्य रामानुजाचार्य ने अपने 'वेदार्थ संग्रह' में नवधा भक्ति का उल्लेख तो किया है, किन्तु इसमें थोड़े अंतर के साथ –
''अनवरत–स्तुति–स्मृति–नमस्कृति–वन्दन–यतन–
कीर्तन–गुणश्रवण–वचन–ध्यानार्चन–प्रणामादि ।''[37]

श्री वल्लभाचार्य जी ने रामानुजाचार्य की तरह नवधा भक्ति को, लक्ष्य न मानकर प्रेम संबंध को उत्पन्न करने के साधन के रूप में स्वीकारा है। उन्होंने भक्ति के दो प्रकार (साधन और साध्य) माने हैं । परंतु साधन भक्ति का लक्ष्य ज्ञान अथवा मोक्ष न होकर, इस मार्ग में पूर्ण प्रेम अवस्था का प्राप्त करना ही है ।[38] अंततः वल्लभ ने जिस रूप में भक्ति को स्वीकारा है, उसे मिलाकर भक्ति के दस प्रकार हो जाते हैं । 'श्रीसुबोधिनी' के 'फल संस्करण' के प्रथम अध्याय में 'श्रवणाद् दर्शनात्' आदि भागवत के दशम अध्याय के श्लोक 26 की टीका करते हुए श्री वल्लभाचार्य जी कहते हैं कि –

''साधन भक्ति नौ प्रकार की है तथा दशवीं प्रेम रूपा है।''[39]

यह पहले बताया गया है कि श्रीमद्भागवत में साधक के स्वाभावानुसार भक्ति चार प्रकार की मानी गई है। इस प्रकार का विभाजन वल्लभ संप्रदाय में भी किया गया है और उनके शिष्य सूरदास जी ने भी चार प्रकार की भक्ति का विवरण दिया है । यह भक्ति – तामसी, राजसी, सात्विकी तथा निर्गुण है। ''सूरदास जी ने चौथी भक्ति को 'सुधासार भक्ति ' कहा है।[40]

सकामी और निष्कामी ये दो भेद भी सूरदास ने बताये हैं।[41] इस प्रसंग के अंत में उन्होंने कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग को भी भक्ति के ही त्रिविध रूप माने हैं ।

"त्रिविध भक्ति कहौं सुनि अब सोइ । जातैं हरि पद प्राप्त होई ।[42]

यह निश्चित है कि भक्ति में प्रेम महत्वपूर्ण होता है, जो नारद के भक्तिसूत्र 'सा त्वस्मिनपरमप्रेमरूपा' से स्पष्ट है। जब प्रेम की प्रवृति भक्ति में समाविष्ट हो गई है तो शास्त्र के नियंत्रण की बात आना स्वाभाविक हो जाता है। मुख्यतः भक्ति को शास्त्र सम्मत बनाने का श्रेय चैतन्य संप्रदाय के आचार्य श्री रूप गोस्वामी जी को जाता है। उन्होंने 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में अनेक प्रकार से भक्ति का विभाजन किया है। सबसे पहले उन्होंने भक्ति को सुदुर्लभ और अलभ्य कहते हुए हरिणा और आश्वादेय इन दो भेदों में विभाजित किया है ।[43] इनके बाद भक्ति के तीन भेद बताये हैं – साधन भक्ति, भाव भक्ति और प्रेम भक्ति ।[44] पुनश्च साधन भक्ति को दो भागों में विभाजित किया गया है – वैधी और रागानुगा ।[45] उन्होंने रागानुगा भक्ति को रागात्मिका भी कहा है तथा इसके दो भेद बताये हैं – कामानुगा ओर सम्बधानुगा । इनका सविस्तार वर्णन चैतन्य संप्रदाय की भक्ति के संदर्भ में किया जाएगा ।

रूप गोस्वामी जी ने भक्ति का दो और भेद बताये हैं – "एकांगी और अनेकांगी।"[46] उन्होंने भक्ति के एक अन्य प्रकार से भी भेद करते हैं "भावोत्थ और हरेरीतिप्रसादोत्थ ।[47] पुनः हरेरीति प्रसादोत्य के दो प्रकार बताये हैं – महात्म्यज्ञान युक्त ओर केवल ।[48] मीराबाई ने चैतन्य महाप्रभु की भाँति भक्ति का शास्त्रीय विवेचन नहीं किया है । तुलसी दास ने नवधा भक्ति को स्वीकारा है। जिसकी झाँकी हमें 'रामचरित मानस' के हृदय पृष्ठों पर स्वर्णाक्षर में लिपिबद्ध दोहा, चौपाई में मिलती है।उन्होंने नवधा भक्ति को श्रवनादिक नव भक्ति कहा है –

"श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं, ममलीला रति अति मनमाहीं ।"[49]

यह गौरतलब है कि तुलसी की भक्ति परक दृष्टि कृष्णभक्त कवियों की तरह रागानुगा भक्ति की तरफ नहीं गई है, क्योंकि उनके आराध्य राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे।

4 – भक्ति के विभिन्न उपादान

व्यष्टि, समष्टि का एक उपादान है । अणु, विभु का एक उपादान है । कोई भी वस्तु कुछ उपादानों के समिश्रण से बनती है। जैसे कि समस्त अंग प्रत्यंग के सम्मिश्रण से मनुष्य,

मनुष्य कहलाता है, उसी प्रकार भक्ति कुछ साधनों के सम्मिश्रण से बनती है। यह कोई ठोस वस्तु नहीं है। यह मन की साधना का फल है। साधना की बात जब आती है तो, इस संदर्भ में कुछ निमित्त कारण तथा उपादान कारणों का महत्व भी होता है। ध्यातव्य है कि कारण ही कार्य को सफल बनता है। यदि कार्य भक्ति हो तो गुरू महिमा, सत्संग, नाम महिमा, वैराग्य आदि उसके मुख्य तथा गौण उपादान हैं। इनके बिना भक्ति अपने आपमें कुछ नहीं है। जैसे मिट्टी के बिना घड़ा बनना असंभव है; भले ही अन्य उपादान, मशीन ,कुम्हार तथा अन्य चीजें उपलब्ध हों उसी प्रकार भक्ति के लिए भले ही भक्त हो, अगर उसके पास उपर्युक्त उपादान न हों तो भक्ति असंभव है ।

1 – गुरूमहिमा

'गुरू' का शाब्दिक अर्थ भारी होता है । यह हुई बाह्य धरातल की बात । किन्तु आंतरिक धरातल पर भी गुरू भारी होता है। वह भारी होता है क्योंकि उसके पास ज्ञान होता है । गुरू संसार में मनुष्य को मोक्ष दिलाते हैं । गुरू को भक्ति के सगुण तथा निर्गुण, दोनों संप्रदायों में स्थान मिला है।[50] गुरू तो वह है जो, मनुष्य को सच्चे ज्ञान के धागे से भगवान के साथ बांध देता है। श्रीरामानुजाचार्य के अनुसार केवल आचार्य द्वारा प्रेषित शिष्य ही ब्रह्म की शरण में प्रवेश कर सकता है। गुरू की महिमा का गान वेद से लेकर पुराणों तक और संस्कृत साहित्य से लेकर लोक साहित्य तक सभी में मिलाता हैं ।

2 – सत्संग

'सत्संग' का अर्थ है सही संगति । भक्ति भाव के पोषण के लिए और प्रतिकूल भावों के शमन के लिए सत्संग की आवश्यकता होती है। सभी भक्त कवियों ने सत्संग की महिमा बतायी है । यह सत्संग बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है। जिसको सत्संग की प्राप्ति हो जाती है; उसे ही जन्म–मृत्यु के आवागमन चक्र से छूटकारा मिल जाता है। सत्संग, भगवान की छात्र छाया है; जिस छत्र छाया के नीचे मनुष्य अपने आपको सुरक्षित समझते हुए अपने जीवन को सार्थक बनाता है। सत्संग एक ऐसे वैद्य का दवा खाना है जिसमें असाधु, दुष्ट प्रकृति के लोग भी सन्मार्ग पर चल कर अपनी कलुषित बुद्धि से ऊपर उठ जाते हैं । इस संदर्भ में गोस्वामी तुलसी दास कहते हैं –

"सठ सुधरहिं सत्संगति पाई । पारस परस कुघात सुहाई ।।"[51]

3. नाम महिमा

कलिकाल में नाम महिमा को ही मनुष्य की मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन बताया गया है। इस संदर्भ में 'श्रीमद्भागवत' में कहा गया है –

"नातः परं कर्मनिबंध कृन्तनं
मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ।
न यत् पुनः कर्मसु सज्जते मनो
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ।।"[52]

अर्थात् जो लोग इस सांसारिक बंधनों से मुक्त होना चाहते हैं उनके लिए तीर्थ पाद भगवान के नाम कीर्तन से बढ़कर और कोई साधन ऐसा नहीं है; जो कर्म बंधन की जड़ को काट सके। क्योंकि नाम का आश्रय लेने से मनुष्य का मन फिर सकाम कर्मो में आसक्त नहीं होता है । भगवन्नाम के अतिरिक्त दूसरे किसी प्रायश्चित का आश्रय लेने पर मन रजोगुण और तमोगुण से ग्रस्त ही रहता है तथा उसके पापों का भी पूर्णतया नाश नहीं होता है।

कलिकाल में नाम की महता के संदर्भ में पुराणों में अनेक बातें कही गई हैं। 'स्कन्दपुराण' में कहा गया है कि –

"हरिनामपराये च घोरे कलियुगे नराः
त एव कृत्यकृत्याश्च न कलिर्बाधते हि तान् ।"[53]

अर्थात् जो मनुष्य घोर कलियुग में हरिनाम की शरण ले चुके हैं, वे ही कृतकृत्य हैं। कलि उन्हें बाधा नही पहुँचाता। नाम स्मरण को मनुष्य की मोक्ष प्राप्ति के साधन के साथ–साथ उसके बाह्य शरीर के लिए उपयोगी भी बताया गया है ।

"सर्व मंगलमंगल्य मायुष्यं व्याधिनाशनम् ।
भुक्तिमुक्ति प्रदं दिव्यं वासुदेवस्य कीर्तनम् ।।"[54]

'राम' मंत्रराज माना गया है। यह भय एवं व्याधियों का विनाशक है। उच्चरित होने पर यह द्वऽक्षर मंत्रराज पृथ्वी में समस्त कार्यो को सफल बनाता है। गुणों की खान इस राम नाम का स्मरण समस्त पापों का विनाशक तथा मोक्ष प्रदायक है ।

4. वैराग्य

'वैराग्य' विराग से बना है; जिसका अर्थ त्याग की भावना है। जहाँ तक भक्ति के संदर्भ में वैराग्य की बात है, ज्ञानमार्ग ने बुद्धि पूर्वक इस समस्त संसार को तथा इससे संबंधित संबंधों को मिथ्या, माया कहते हुए वैराग्य दीक्षा ग्रहण की बात कही है। किन्तु भक्ति संप्रदायों में वैराग्य का आधार ज्ञान नहीं है। जिस प्रकार गीता में अनासक्ति योग की बात की गई है, उसी प्रकार भक्ति संप्रदायों में इस संसार में रहते हुए भी इससे विच्छिन्न रहने की साधना को सम्मिलित किया गया है। इस संदर्भ में एक अंग्रेजी लेखक ने यह लिखा है कि – "devotion to god increases in the same proportion as the attachment to the object of the senses decreases''.[55] सच्चा भक्त वही है जो, भक्ति को अपना सर्वस्व समझते हुए सांसारिक विषय–वासनाओं से वैराग्य ले लें । वह संसार में रहते हुए भी संसार से अलग रहता है जैसे पानी में कमल का पत्ता। कमल का पत्ता पानी पर रहता है किन्तु पानी उस पर नहीं रह सकता। अंततः जो संसार में रहकर सांसारिकता से दूर रह पाता है या दूर रहने के लिए अपने आपको समर्थ बना पाता है, वह सच्चा वैरागी भक्त कहलाता है। 'श्रीमद्भागवत्गीता' में भगवान कहते हैं –

"असंशय हि महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासने तु कौंतेय वैराग्येण च गृहचेत् ।।(गीता – 6/35)

" असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति में मतिः ।
वश्यात्मना तुयंतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ।।(गीता – 6/36)

अर्थात् मेरे मत में जिसका अंत करण काबू में नहीं उसको योग का प्राप्त करना है, किन्तु अन्तःकरण को काबू में रखकर प्रयत्न करते रहने पर उपाय से प्राप्त होना संभव है ।

वैराग्य का अर्थ अतःकरण को काबू करना है । गीता में इन्द्रिय निग्रह को ही वैराग्य कहा गया है । 'विवके चूडामणि' में – दर्शन और श्रवणादि के द्वारा देह से लेकर ब्रह्मलोक पर्यंत संपूर्ण अनित्य पदार्थो में जो घृणा बुद्धि है – उसी को वैराग्य कहा गया है ।(विवेक चूडामणि– 21,22) वैराग्य को शांत रस का लक्षण बताते हुए रूप गोस्वामी महोदय ने यह कहा है कि –

"नास्ति यत्र सुखं, दुःखं न द्वेषो न च मत्सरः
समः सर्वेषु भूतेषु स शान्तः प्रथितो रसः ।"[56]

1 . 2 – वैदिक वाङ्मय में भक्ति के बीज

भक्ति मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्तियों में एक प्रमुख प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति ईश्वर के अस्तित्व के साथ जुड़ी हुई है। मन के भीतर निहित पूज्य भाव या श्रद्धाभाव जब अपने से अधिक शक्तिशाली व्यक्ति के प्रति व्यक्त होता है, तब यह लौकिक श्रद्धा कहलाता है। किन्तु जब यह भाव किसी अलौकिक, अदृश्य शिक्ति के प्रति उदय होता है, वह भक्ति कहलाता है। भक्ति में सबसे पहले श्रद्धा या विश्वास की आवश्यकता होती है और साधुसंग से वह विश्वास क्रमशः प्रेम या भक्ति के रूप में परिणत होता जाता है। इस प्रेम भक्ति के उदय के बारे में रूप गोस्वामी जी निम्न प्रकार बताते है –

"आदौ श्रद्धा ततः साधुसंगोऽथ भजन क्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः।।
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमऽभ्युदंचति
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवमत् क्रमः ।।"[57]

अर्थात् प्रेम भक्ति के उदय की प्रकिया में सबसे पहले श्रद्धा की उत्पत्ति होती है और उसके वाद साधुसंग, तदनंतर भजन किया, तत् अनर्थ निवृत्ति, उसके बाद निष्ठा, विश्वास, उसके पश्चात् रूचि, तदनंतर आसक्ति, फिर भाव एवं अंततः प्रेम का उदय होता है ।

ध्यातव्य है कि भारतीय श्रुति तथा स्मृति ग्रन्थों में भक्ति को ईश्वर की उपासना, आराधना, पूजा आदि माना जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में हर किसी के मन में तरह–तरह के सवाल उठते हैं कि मनुष्य कौन है? कहाँ से आया है? कहाँ जाएगा? उसे किसने बनाया संसार की सृष्टि कैसे हुई है? इन सवालों का जवाब ढूँढ़–ढूँढ़कर जब मनुष्य का मानस थक जाता है, वह निस्सहाय होकर एक विराट शक्ति की शरण में आ जाता है। इस विराट शक्ति को आचार्यों ने ब्रह्म की संज्ञा दी है। यह ब्रह्म नित्य, अपरिवर्तनीय तथा अंतिम सत्य है। इस भक्ति का विधान ही ईश्वर भक्ति है।

1 – वेद में भक्ति

जहाँ तक भक्ति के उद्‌भव तथा विकास का प्रश्न है, यह निश्चित है कि "भक्ति की परंपरा दीर्घ कालीन है।"[58] भारतीय धर्म में ऋग्वेद को ही संसार का प्राचीनतम ग्रंथ माना गया है। "अधिकांश विद्वानों ने भक्ति का मूलस्रोत वेदों हो ही स्वीकार किया है तथा भारतीय

भक्ति संप्रदाय का आदिस्रोत वेद हैं; इस बात की घोषणा भी की गयी है।"[59] इतिहास ग्रंथों से भक्ति के उद्‌भव के बारे में ये तथ्य उपलब्ध होते हैं कि भारतवर्ष में आर्यों के आगमन के पश्चात् यहाँ पर आर्य तथा अनार्यों के बीच संघर्ष छिड़ गया था। तब सिंधु सभ्यता की ये द्रविड़ जातियाँ पीछे हटती गयीं और दक्षिण भारत में बस गयीं। "इस प्रकार भक्ति का उद्‌गम स्थान सिन्धु सभ्यता को माना गया है।"[60]

वेद में विष्णु शब्द की परिकल्पना की गयी है। डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने विष्णु शब्द तमिल के 'बिन' शब्द से निकलने का अनुमान लगाया हैं। जिसका अर्थ 'आकाश' होता है। अर्थात् विष्णु का रंग आकाश की तरह नीला होता है।[61] बाद में चलकर यह सिद्ध किया गया है कि विष्णु की उपासना या पूजा द्रविड़ों की सृष्टि है। तत्पश्चात् ब्राह्मणों तथा वैदिक आचार्यों से यह अपनायी गयी है। इस संदर्भ में 'पद्‌मपुराण' में उल्लिखित अनुश्रुति के अनुसार भक्ति ने नारद को अपने जन्म की कथा सुनाई थी । यह कथा इस प्रकार है –

"उत्पन्ना द्राविडे चाहं, कर्णाटके वृद्धिंगता।
क्वचित्क्वाचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता।।"[62]

यह कहा जाता है कि भक्ति के उद्‌भव के संबंध में सबसे अधिक प्रमाण वेदों से प्राप्त होते हैं। वेदों को सामान्यतः ज्ञानमार्ग का उपदेश देनेवाला कहा गया है। किन्तु वेद की ऋचाओं का गंभीर अध्ययन हमें यह बताता है कि सभी वेदों में हमें ऐसी ऋचाएँ मिलती हैं; जो निर्गुण, निराकार, ईश्वर की स्तुति, आराधना, उपासना और भक्ति के निमित्त रची गयी हैं। डॉ. बेनीप्रसाद ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता' में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि "भारतीय भक्ति संप्रदाय का आदिस्रोत ऋग्वेद है। इसके कुछ मंत्रों में मनुष्य और देवताओं के बीच गाढ़े प्रेम और मैत्री भाव की कल्पना की गई है।"[63] वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर भक्ति की महत्ता बतायी गयी है। जीवन मृत्यु तथा संसार के बंधनों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए भगवद् स्वरूप ज्ञान या भक्ति को आवश्यक बताया गया है –

"वेदाहमेतं पुरुषं महान्तामादित्यवर्ण तमसस्परस्तात्।
तमेव विदित्वऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।।"[64]

अर्थात् जो साधक पुरुष अंधकार से परे, प्रकाश स्वरूप उस परम पुरुष को जान लेता है, वही मृत्यु को अतिक्रांत कर पाता है। प्रभु के पास पहुँचने के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है। ऋग्वेद में भक्त के बारे में यह कहा गया है कि भक्त ईश्वर की सत्ता को स्वीकार

करता है। उसे हर पल उसकी उपस्थिति महसूस होती रहती है। किन्तु जो लोग ईश्वर की सत्ता को स्वीकारते नहीं हैं, उन्हें मुसीबत आने पर ही महसूस होता है कि निश्चित रूप में कोई अज्ञात शक्ति संसार में है। इसलिए यह कहा गया है कि –

"यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषोऽस्तीत्येनम्।

सो अर्यः पुष्टीर्विज इवामिनाति, श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः।।"[65]

सत्य तो यह है कि वेद ही भक्ति का आदि ग्रंथ है। यदि ऋग्वेद से ही भक्ति परक मंत्रों को एकत्र किया जाए तो उनकी संख्या शताधिक होगी, जो निर्गुण और सगुण दोनों के संदर्भ में विनियुक्त किये जा सकते हैं। यजुर्वेद के पुरूष सुक्त में पुरुष की अनंत शक्तियों एवं विभूतियों का भक्ति के संदर्भ में ही वर्णन हुआ है। अथर्व वेद में अगर भक्ति को ढूंढ़ा जाए तो यह कथन उपलब्ध होता है कि – "हे साधको! प्रत्येक यज्ञ कर्म में मिलकर कामनाओं को पूर्ण करने वाले परमेश्वर की स्तुति करो, गुणगान करो, प्रभु के अतिरिक्त किसी अन्य की प्रशंसा मत करो।"[66] यजुर्वेद में भक्त के बारे में यह कहा गया है कि "भक्त उस ईश्वर की महिमा का गान कर रहा है, जिसकी महिमा का गान हिमाच्छादित पर्वत तथा समुद्र और नदियाँ कर रही हैं।"[67]

वैदिक साहित्य में परवर्ती नवधा भक्ति की झलक भी मिलती है। इसमें ईश्वर को माता, पिता, बंधु आदि सभी रूपों में उपास्य मानने के लिए अनेक मंत्र लिखे गये है। कीर्तन, स्मरण, गुणश्रवण तथा विष्णु की व्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता आदि के लिए अनेक मंत्रों की रचना हुई है।

निष्कर्षतः श्रुति ग्रंथों के अध्ययन के उपरांत ये तथ्य सामने आते हैं कि "वेद को जिस तरह कर्म तथा ज्ञान का उदय स्थल माना जाता है, उसी तरह वेद भी भक्ति का उदय स्थल है।"[68] क्योंकि यह ध्यान रहे कर्म और ज्ञान का बंधन छूट जाने से ही भक्ति का जन्म होता हैं।[69] इनमें ज्ञान, कर्म, भक्ति तीनों एक–दूसरे के पुरक हैं। ज्ञान जहाँ लक्ष्य का बोध कराता है, कर्म उस लक्ष्य तक पहुँचने में मदद् करता है और भक्ति उस लक्ष्य प्राप्ति में तल्लीन कर देती है ।

2 – उपनिषदों में भक्ति

वैदिक वाङ्गमय में उपनिषदों का महत्वपूर्ण स्थान है। मूलतः 108 उपनिषदों में से ग्यारह प्रमाणिक माने जाते हैं। इनमें तपः पूत ऋषियों तथा मुनियों के आध्यात्मिक अनुभवों

का वर्णन किया गया है। इन्हें पढ़कर सांसारिक दुःखों से पीड़ित मानव को शांति मिलती है।[70] "यद्यपि उपनिषदों में मुख्य स्वर ब्रह्मवादी है, तथापि उनमें भक्ति तत्व की भी कमी नहीं है।"[71] इनमें भक्ति विषयक संदर्भों को विस्तार से ग्रहण किया गया है। यहाँ तक कह दिया गया है कि –

"यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाश्यन्ते महात्मनः।"[72]

उपर्युक्त मंत्र के द्वारा भक्ति के लिए गुरु और देव को स्पष्ट कथन से प्रकट किया गया है। भक्त के बारे में तैतिरीय उपनिषद् में यह कहा गया है कि –

"यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः।
रसं हि अयं लब्ध्वा आनन्दी भवति।।"[73]

अर्थात् प्रभु निश्चय ही रस रूप हैं। भक्त इन्हीं रस–रूप प्रभु को पाकर आनन्द–विभोर हो उठता है। छान्दोग्य उपनिषद् में प्रभु के उपासक का रूप निम्नांकित शब्दों में उपस्थित किया गया है –"सा वा एष एवं पश्यन् एवं मन्वानः एवं विजानन् आत्मरतिः आत्मक्रीडः आत्ममिथुनः आत्मानंदः स स्वरां भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति।"[74] वृहदारण्यक उपनिषद् प्रभु के भक्त को बालक के समान बनने का उपदेश देती है – "तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्।"[75] कठोपनिषद् में भक्ति के सिद्धांतों का वर्णन किया गया है। इसमें आत्म प्राप्ति के उपाय भी उल्लेख किये गये हैं। अंततः वैष्णव धर्म में प्रपत्ति को भक्ति की अपेक्षा अधिक महत्व प्रदान किया गया है। प्रपत्ति में भगवान ही उपाय तथा उपेय हैं। अर्थात् भक्त का कार्य केवल इतना ही है कि वह भगवान की शरण में जाये। 'श्वेताश्वतर उपनिषद्' में इसी सिद्धांत का उल्लेख किया गया है –

"यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वे शरणमहं प्रपद्ये।।"[76]

उपनिषद् में भक्ति के संदर्भ में श्रद्धा का महत्व प्रतिपादित किया गया है। यह पहले बताया जा चुका है कि श्रद्धा भक्ति का अनिवार्य अंग है। श्रद्धा विहीन व्यक्ति भक्ति की प्राप्ति नहीं कर पाता है। उपनिषदों के अनुसार आत्मा को पहचानने का प्रमुख साधन श्रद्धा ही है –

"तपः श्रद्धे ये ह्यपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।

सूर्यः द्वारेण ते विरजाः प्रयन्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा।।"[77]

'कठोपनिषद्' में श्रद्धा के बारे में यह बताया गया है कि श्रद्धा मन की वह वृति है, जो साधक को विश्व की विविधता के भीतर एक सूत्रता के दर्शन कराती है। तर्क द्वारा यह संभव नहीं । इस संदर्भ में नचिकेता यम से कहते हैं – "नैषा तर्केण मतिरापनेया।"[78]

अंततः उपनिषदों में श्रद्धा की चर्चा के साथ–साथ गुरु की महत्ता को भी चित्रित किया गया है। इसमें यह कहा गया है कि आध्यात्म मार्ग एक नहीं है, अनेक दिशाओं में जाता है। इस मार्ग में कोई ज्ञान का आश्रय लेता है तो कोई कर्म का और कोई भक्ति का लेता है। अतएव जिसको जिस मार्ग का अनुभव है, वह उसी राह में जाने वाले राहियों का रहनुमा बन सकता है। गुरु ही इस काम केलिए समर्थ है –

"न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति, अणोयान् ह्यतर्क्यमणु प्रमाणात्।।"[79]

3 – पुराणों में भक्ति

संस्कृत साहित्य में अठारह महापुराण और अठारह उपपुराण प्रसिद्ध हैं। इन अठारह महापुराणों में से छः पुराण वैष्णव पुराण हैं तथा अन्य बारह पुराण शैव और ब्रह्म पुराण हैं। अठारह पुराणों में से लगभग आधे पुराणों का संबंध वैष्णव धर्म तथा कृष्ण भक्ति से नितांत स्फुट है। शेष में श्रीमद्भागवत्, विष्णु, ब्रह्मवैवर्त्त, नारद और पद्म–इन पाँच पुराणों में विष्णु के आध्यात्मिक रूप तथा महिमा का व्यापक और सर्वांग सुन्दर वर्णन किया गया है। इनसे हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य बहुत प्रभावित हुआ है।[80] पुराणों को पंचम वेद कहा जाता है तथा इसमें भक्ति का सांगोपांग विवेचन भी उपलब्ध होता है। पद्म पुराण, बृहन्नारदीयपुराण तथा कूर्म पुराण में दी गयी भक्ति की परिभाषा निम्न प्रकार हैः

1. वेदेभ्य उद्धृत्य समस्त धर्मान योऽयं पुराणेषु जगाद देवः।
   व्यास स्वरुपेण जगद्धिताय वन्दे तमेतं कमलासमेतम्।।
   (पद्म पुराण, किया योगसार, 1/3)

2. चण्डालोऽपि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्तिर्द्विजाधिकः।
   विष्णुभक्ति विहीनश्च द्विजोऽपि श्वपचाधिकः।।
   (वृहन्नारदीय पुराण, 32/29)

3. सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतमो मम।
यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथ।।
(कूर्म पुराण, उत्तरा 4/25)

4 – श्रीमद् भागवत में भक्ति

श्रीमद्भागवत संस्कृत साहित्य का एक अनुपम रत्न है और भक्ति शास्त्र का सर्वस्व है। वैष्णव आचार्यों ने प्रस्थान त्रयी के समान भागवत् को भी अपना उपजीव्य माना है। "इसमें स्कन्ध 3 अध्याय 29 के श्लोक 15 से 19 तक भक्ति के अंगों का वर्णन हुआ है।"[81] यह ध्यातव्य है कि जहाँ 'वेद' तथा 'गीता' में कर्म और ज्ञान को थोड़ा ऊँचा स्थान प्राप्त था वहाँ 'श्रीमद्भागवत्' में ज्ञान और कर्म को भक्ति से नीचा स्थान प्राप्त है। श्रीमद्भागवत् के एकादश स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में भक्ति की महिमा निम्न प्रकार बताई गई है –

"न साधयति मां योग न सांख्यं धर्म उद्वव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता।।"

ध्यान रखें कि भागवत में नवधा भक्ति की बात की गई है ।[82] भागवत में भक्ति की परिभाषा निम्न प्रकार दी गयी है –

" स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्ति रधोक्षजे।
आहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति।।'(1/2/6)

अर्थात् भगवान में हेतु रहित, निष्काम, एक निष्ठ युक्त अनवरत प्रेम का नाम ही भक्ति है ।

5 – गीता में भक्ति

'श्रीमद्भगवत्गीता' में सर्वत्र भगवत्प्रेम के ही गीत दिखाई देते हैं।[83] ध्यान रहे कि निर्गुण और सगुण उपासना की तुलना करनेवाली गीता का बारहवाँ अध्याय भक्ति योग के नाम से विख्यात है। अर्जुन की जिज्ञासा की शब्दावली भी तात्पर्यपूर्ण है। उसमें आये समस्त युक्ता, भक्ता और पर्युपासते शब्द अक्षर , अव्यक्त के उपासकों के लिए भी प्रयुक्त हैं । स्पष्ट है कि गीताकार की मान्यता है कि "उपासना का चरमोत्कर्ष ही भक्ति है।"[84] गीता के अनुसार निर्गुण उपासना या निर्गुण तत्व की भक्ति का स्वरूप इस प्रकार है –

" ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ।।"[85]

अर्थात् जो भक्त अपनी समस्त इन्द्रियों को सम्यक् रूप से नियन्त्रित कर, सर्वत्र समबुद्धि होकर, सब प्राणियों के हित में लीन होकर अक्षर, अनिर्देश्य, अव्यक्त, सर्वव्यापी, अचिंत्य, कूटस्थ, अचल एवं ध्रुव (तत्व) की परितः उपासना करते हैं, वे मुझे ही प्राप्त करते हैं । गीता में प्रभु प्रेम या भगवत्प्रेम का वर्णन करते हुए भगवान ने स्वयं यह कहा है कि –

" यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।।
सर्वभुत स्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ।।"[86]

इसमें एक सिद्ध भक्त की स्थिति के बारे में यह बताया गया है कि :

"विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ।।"[87]

भगवत्प्रेम भगवत् धर्म है, जिसमें भगवान् स्वयं निवास करते हैं । भगवत् धर्म का स्वरूप बताते हुए भगवान् स्वयं कहते हैं – "ये भजन्ति तु मां भक्त्या'मयि ते तेषु चात्यहम्"।।"[88]

भगवान प्रेम स्वरूप हैं। जो व्यक्ति भगवान की ओर जितना ही बढ़ता है, भगवान् भी उसे उतना ही प्रेम प्रदान करते हैं। भगवान के प्रति अनुराग ही भवत्प्रेम है। उस भगवत्प्रेम की साधना में संसार की अन्य वस्तुओं का राग स्वतः ही समाप्त हो जाता है। भगवान् कहते हैं –

"यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत।"[89]

गीता में स्वयं भगवान ने अर्जुन के माध्यम से मानव मात्र को प्रेम पूर्वक सदैव भगवत्स्मरण करने का उपदेश दिया है और कहा है कि जो ज्ञानपूर्वक निरंतर ईश्वर का स्मरण करने का अभ्यास करता है, वह निश्चय ही उन्हें प्राप्त कर लेता है –

''अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।

परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयम् ।।''[90]

इसमें इस तरह भी बताया गया है कि यदि कोई भक्त भगवान के लिए प्रेम पूर्वक फल, पुष्प ,पत्र आदि अर्पण करता है, तो भगवान् भी सगुण रूप से प्रकट होकर उसे प्रीति सहित ग्रहण करते हैं –

''पत्रं ,पुष्पं,फलं,तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।''[91]

इस प्रकार गीता में भक्ति के तत्वों का विकसित रूप दृष्टिगत होता है। श्रीकृष्ण के धार्मिक उपदेश ही अर्जुन के माध्यम से सारे भगवद्जनों के जीवन को सार्थक कर पाने का एक मात्र साधन है। अंततः गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है कि सज्जन पुरूषों के दुःख का परित्राण करने के लिए वे युग–युग में अवतार लेते हैं –

''परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे–युगे ।''[91]

6 – पांचरात्र साहित्य में भक्ति

''पांचरात्र'' शब्द की व्याख्या कई प्रकार से की गई है। इस संदर्भ में 'नारद पांचरात्र', तथा 'अहिर्बुध्न्यसंहिता' के अनुसार ''रात्र का अर्थ है' ज्ञान''।[92] ज्ञान के पांच प्रकार यानी परमतत्व, मुक्ति ,भुक्ति, योग तथा विषय (संसार) का वर्णन इस शास्त्र में होने के कारण इसका नाम पांचरात्र पड़ा है।

यह निश्चित है कि उपनिषदों के बाद भक्ति की धारा भागवत धर्म के रूप में प्रवाहित हुई । भागवत धर्म में विष्णु देवता की प्रतिष्ठा हुई और धीरे–धीरे भागवत् धर्म की कई शाखा–प्रशाखाओं में विकास हुआ। भागवत संप्रदाय में पांचरात्र तथा वैखानस संहिताओं की बड़ी मान्यता है। ध्यातव्य है कि आज भी दक्षिण के मंदिरों में दोनों प्रकार की पूजा विधियाँ प्रचलित हैं । आचार्य रामानुज ने वैखानस संहिताओं की स्थापना पर पांचरात्र संहिताओं का प्रचार किया था और वैष्णवों के दोनों संप्रदायों में एकता स्थापित करने का भी प्रयत्न किया था। दक्षिण के कुछ मंदिरों में जैसे तिरूपति गिरि पर स्थित श्री वेंकेटेश्वर के मंदिर में तथा कांजीवरम और श्री पुरूमबुदूर के मंदिरों में वैखानस संहिताओं का आज भी प्रयोग होता है।[94]

''डॉ. श्रेडर ने अपनी पुस्तक 'इन्ट्रोडक्सन टू दि पांचरात्र' में इसका सविस्तार परिचय दिया है।''[95]

1 . 3 दक्षिण में भक्ति का विकास

भक्ति का द्वितीय उत्थान आलवार संतो द्वारा तमिलनाडु से हुआ। दक्षिण भारत के चारों प्रदेशों में भक्ति का विकास लगभग दो हजार वर्ष पूर्व हुआ था। किन्तु उसकी अविच्छिन्न धारा का इतिहास तमिलनाडु में पंद्रह सौ वर्ष से उपलब्ध होता है।[96] छठी शताब्दी से पूर्व द्रविड देश में भी जैन तथा बौद्ध धर्म की प्रमुखता थी किन्तु छठी शताब्दी के बाद वैष्णव भक्ति का उत्थान आरंभ हुआ। तमिल में छठी से नवीं शताब्दी तक जिस साहित्य का निर्माण हुआ, वह पूर्णरूप से भक्ति साहित्य है । यह काल तमिल साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के नाम से प्रसिद्ध है। इस संदर्भ में एस. कृष्णस्वामी आयंगर की पुस्तक 'हिस्ट्री आफ तिरूपति'' से यह तथ्य मिलता है कि – "Alvars are the first people who gave a new shape to Bhakti school making simple, designed not for serving the purpose of whorship by the elite, but subserve the similar ends for the quite ordinary flok." [97]

यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि ''आलवार शब्द का अर्थ तो भगवत् भक्ति में लीन व्यक्ति है।''[98] वे बहुत सीधे–सादे थे। वे बाह्याचार 'और आडम्बर में विश्वास नहीं रखते थे। भक्ति के क्षेत्र में स्त्री–पुरुष का भेद भी नहीं करते थे। इनके बहुत से भक्ति संबधित पदगीत तमिल भाषा में उपलब्ध होते हैं। इनमें उन्होंने वात्सल्य, सख्य, दास्य और माधुर्य भाव से भक्ति मार्ग का वर्णन किया है। पहले इनका लिखित रूप नहीं था । '''नाथमुनि ने इनका लिखित संकलन नवीं शताब्दी में प्रस्तुत किया था । यह संकलन 'दिव्य प्रबन्धम्' कहलाता है।''[97]

अलवार वैष्णव भक्तों ने अपने सुमधुर गीतों से वैष्णव भक्ति को जिस शैली से माधुर्य मंडित किया, उसका एक स्वतंत्र इतिहास है । किन्तु यह न भूलना चाहिए कि आलवार भक्तों से पहले भी यहाँ भक्ति विद्यमान थी, जिसे तमिल साहित्य के विद्वान भक्ति का उषाकाल मानते हैं और आलवारों की भक्ति को भक्ति–आन्दोलन का सूर्योदय काल ठहराते हैं।[100] इतिहास इसका साक्षी है कि आलवारों से पहले तमिलनाडु में ही नहीं, समस्त दक्षिण

भारत में जैन और बौद्ध लोग अपनी नास्तिक विचारधारा का प्रचार कर रहे थे। आलवारें की भक्ति के क्षेत्र में सब से बड़ा योगदान यही है कि उन्होंने जनता को नास्तिक मत से बचाकर विष्णु भक्ति के आस्तिक पथ पर आरूढ़ किया था। ये सब सगुणोपासक थे। विष्णु के अवतार पर उनका विश्वास था। उन्होंने भगवद् भक्ति का जो रूप जनता के सामने प्रस्तुत किया था, वह आर्यावतार के रूप में विष्णु की उपासना का था; जो दर्शन, श्रवण, कीर्तन, पादसेवन आदि के द्वारा भगवान को प्रसन्न करने का मार्ग प्रशस्त किया था । उनकी पूजा और अर्चना की विधि में नाम महिमा, कीर्तन, अर्चन, शरणागति, गुरुमहिमा, सत्संगति, वैराग्य, अपरिग्रह, इन्द्रिय विजय आदि को स्थान प्राप्त है। "इसके साथ ही विष्णु के अवतार, श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन , लीलाओं में तन्मयता, मधुरभाव, रासलीला, राधाभाव, भ्रमरगीत, नवधा–भक्ति की स्वीकृति, भक्ति के पॉचो रूपों का वर्णन इन आलवारों के पदों में मिलता है।"[101]

दक्षिण के राज्यों में तमिलनाडु के अलावा केरल, कर्णाटक तथा आंध्र प्रदेश में भी भक्ति की धारा अनवरत प्रवाहित होती रही । इन धाराओं को तेज गति देने में कुछ आचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान पाया जाता है। अंततः आलवारों के पश्चात् दक्षिण में आचार्यों का युग आरंभ हुआ। यहॉ इस ओर संकेत करना उचित होगा कि इन आलवारों तथा आचार्यों में निश्चित रूप में भिन्नता पाई जाती है। भिन्नता यह है कि जहॉ आलवार केवल भक्ति रस में लीन रहे, वहॉ पर अचार्यों ने भक्ति और कर्म का समन्वित रूप उपस्थित किया । सत्य तो यह है कि आलवार इतने विद्वान नहीं थे, बल्कि आचार्य लोग वेदान्त के प्रकाण्ड पंडित थे। इस संदर्भ में उन दानों की तुलना करते हुए श्री बलदेव उपाध्याय ने लिखा है " अलवार तथा आचार्य दोनों ही विष्णु भक्ति के जीवंत प्रतिनिधि थे, परंतु दोनों में एक पार्थक्य है। अलवारों की भक्ति उस पावन सलिला सरिता की नैसर्गिक धारा के समान है जो स्वयं उद्वेलित होकर प्रखर गति से बहती जाती है और जो कुछ सामने आता है, उसे तुरंत बहाकर अलग फेंक देती है। आलवारों की भक्ति उस तरंगिणी के समान है जो अपनी सत्ता जमाए रखने के लिए रुकावट ड़ालनेवाले विरोधी पदार्थों से लड़ती–झगड़ती आगे बढ़ती है। आलवारों के जीवन का एक मात्र आधार था प्रपत्ति; विशुद्ध भक्ति; परंतु आचार्यों के जीवन का एकमात्र सार था भक्ति तथा कर्म का मंजुल समन्वय । आलवार शास्त्र के निष्णात

विद्‌वान न होकर भक्ति रस से सिक्त थे। आचार्य वेदान्त के पारंगत विद्‌वान ही न थे, प्रत्युत तर्क और युक्ति के सहारे प्रतिपक्षियों के मुखमुद्रण करने वाले बावदूक पंडित थे।''[102]

अतएव आलवारों में हृदय पक्ष की प्रवलता थी और आचार्यों में बुद्धि पक्ष की । इस युग में चार आचार्य प्रमुख माने जाते हैं जिन्होंने भक्ति की सरिता को जनता के महा समुद्र के साथ मिलाया। इन चार मुख्य आचार्यों के दार्शनिक तत्वों के आधार पर प्रतिष्ठित चार संप्रदाय हैं । इन चार संप्रदायों ने भक्ति आन्दोलन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाऐं निभायी हैं । इनमें श्रीसंप्रदाय के संस्थापक रामानुजाचार्य, निम्बार्क संप्रदाय के निम्बार्काचार्य, माध्व–संप्रदाय के मध्वाचार्य, रूद्रसंप्रदाय के संस्थापक विष्णुस्वामी के नाम अग्रगण्य हैं। इन आचार्यों तथा इनके संप्रदायों के दार्शनिक सिद्धातों की चर्चा भक्ति आन्दोलन के संदर्भ में करना अनुचित न होगा ।

1 . 4 मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि

स्पष्ट है कि मध्यकाल की यह युगान्तकारी घटना भक्ति के आन्दोलन का उद्‌भव तथा प्रसार है । इस आन्दोलन में पहली बार राष्ट्र के एक विशेष भू भाग के निवासी तथा कोटि–कोटि साधारण जन ही शिरकत नहीं करते बल्कि समस्त राष्ट्र की शिराओं में इस आन्दोलन की ऊर्जा स्पन्दित होती है। एक ऐसा जबरदस्त ज्वार उफनता है कि उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम सब मिलकर एक हो जाते हैं । उस समय के लिए भक्ति आन्दोलन एक ऐसा धागा था, जिसने भारत के चतु:दिंशाओं के जनमानस रूपी फूलों को एक माला में पिरोकर भगवान के गले में पहनाया था। इस आन्दोलन ने एक–दूसरे से पहचनवाया तथा संबंधं स्थापित करवाया था। तत्पश्चात एक दूसरे से प्रेरणा ग्रहण कर, मिलजुल कर भक्ति की झरना को महासागर में रूपायित कर दिया । इससे सदियों से आज तक कोटि–कोटि तृषार्त भक्त अपनी अपनी आध्यात्मिक तृषा को बुझा पाते हैं।

जहाँ तक मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का सवाल है, यह मूलतः एक धर्मिक, सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में सामने आता है । सच देखा जाए तो अधिकांशतः इसे एक धार्मिक आन्दोलन के रूप में ही स्वीकार करते हैं। इसकी पृष्ठभूमि अगर खोजी जाए तो यह जाहिर है कि ''सामंतवाद की जकड़बंदी के कमजोर पड़ने का लाभ उठाकर भारत में

एक जन–अभियान का रूप सामने आया, जिसे भक्ति आन्दोलन के नाम से पहचाना जाता है।"[103] भक्ति के उत्थान का तृतीय काल 1500 ई. माना जाता है। इस काल में जिस साहित्य की रचना हुई वह मुख्य रूप से भक्ति रस से ओत–प्रोत था । इसलिए हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह काल 'भक्तिकाल' कहलाता है। भक्ति आन्दोलन की शुरुआत के संदर्भ में श्री दामोदरन कहते हैं कि 'भारत में धर्म पर आस्था सदा सामाजिक प्रगति के लिए प्रतिकूल नहीं रही। वास्तव में इसने प्रायः ही उत्पीड़न और शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध का रूप धारण किया। भारत में कितने ही सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष धर्मिक सुधारों के आवरण में लड़े गये। इस प्रकार धार्मिक आन्दोलनों ने प्रारंभिक अवस्था में किसी पंथ था संप्रदाय का रूप धारण नहीं किया था । एक गतिपूर्ण और प्रगतिशील भूमिका ही अदा की ।"[104] भक्ति आन्दोलन का मूल आधार भगवान विष्णु अथवा उनके अवतारों राम और कृष्ण की भक्ति थी ।[105] इस आन्दोलन का सिद्धान्त; ईश्वर के सामने सभी मनुष्य समान है तथा 'हरि को भजे सो हरि का होई', इस आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु बन गया था।[106] जिसने पुरोहित वर्ग और जाति प्रथा के आतंक के विरुद्ध संघर्ष करने वाली आम जनता के व्यापक हिस्सों को अपने चाारों ओर एकजुट किया । जो भी हो, मध्ययुग का यह आन्दोलन जन समुदायों की एक सुसंबद्ध भारतीय संस्कृति के विकास में मदद की तथा सांमती दमन और उत्पीड़न के विरूद्ध संयुक्त संघर्ष चलाने का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार यह भक्ति आन्दोलन धार्मिक आवरण में भी देश के साधारण जन की व्यथा–कथा का आन्दोलन बन कर सामने आया । जहाँ इस आन्दोलन के दक्षिण प्रान्त के पुरोधा रामानुज बने, वहाँ उत्तर प्रांत के पुरोधा उनके शिष्य रामानन्द बने । रामानुज ने ब्राह्मण–अब्राह्मण सभी को, यहाँ तक कि मुसलमानों को भी अपनी शिष्य–परंपरा में शामिल कर लिया तथा दक्षिण में व्याप्त सामाजिक रूढ़ियों को ठुकराया था। उत्तर में भी वही काम उनके शिष्य रामानंद ने किया । जिसके फलस्वरूप कन्याकुमारी से हिमाचल तक आन्दोलन का नेतृत्व नीची कही जानेवाली जातियों के हाथों में ही रहा। यह भक्ति आन्दोलन कुछ मूल भूत आस्थाओं तथा नियमों को आधार बनाते हुए आगे बढ़ा। इनमें धार्मिक विचारों के बावजूद जनता की एकता को स्वीकारना, ईश्वर के समक्ष सब की समानता का प्रतिपादन करना, जातिप्रथा का विरोध करना, मनुष्य और ईश्वर के बीच तादात्म्य, प्रत्येक मनुष्य के सद्गुणों पर निर्भर करना न कि उसकी ऊँची जाति तथा धन संपत्ति पर तथा बाह्याचारों कर्मकांडों आदि की निंदा, प्रमुख

सिद्धान्त थे। इस आन्दोलन के भौतिक–सामाजिक आधारों के प्रमुख पक्षों को रेखांकित करते हुए दामोदरन् उपर्युक्त बातों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं साथ–साथ यह भी कहते हैं कि "भक्ति आन्दोलन ने केवल अंधविश्वास और जाति प्रथा के खिलाप आवाज उठाने और ईश्वर की दृष्टि से सबकी समानता घोषित करने की बात तक ही अपने को सीमित नहीं रखा। इस आन्दोलन के कुछ नेताओं ने तो मुगल आधिपत्य और कुशासन तथा सामंती शोषण और उत्पीड़न के विरूद्ध व्यापारियों, कारीगरों और गरीब किसानों के संघर्ष का नेतृत्व भी किया।"[107] लगभग तीन सौ वर्ष से भी ऊपर के समय तक भारतीय जीवन को अनुप्राणित करने वाले भक्ति आन्दोलन की चर्चा करते हुए प्रायः प्रत्येक देशी–विदेशी विद्वानों ने उसे एक महान ऐतिहासिक घटना के रूप में स्मरण किया है।[108] पश्चात्य विद्वान डॉ. ग्रियर्सन ने इस आन्दोलन के विषय में लिखा है कि "यह आन्दोलन बीजली की चमक के समान सारे भारत में फैल गया था; साथ–साथ उन्होंने इस आंदोलन का संबंध मध्ययुग के मर्मी ईसाईयों से लगाया है और इसे ईसाइयत की देन बताया है।"[109] इसकी आलोचना करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी यह कहते हैं कि "जिस तरह ग्रियर्सन महाशय ने इस आन्दोलन को बीजली की चमक की तरह फैलने की बात कही है। सचमुच यह ऐसा नहीं है। इसके लिए सैकड़ों वर्षों से मेघ खंड एकत्र हो रहे थे।"[110] अतः इस भक्ति आन्दोलन रूपी मेघ खण्डों को जमाकर एकत्र कराने का कार्य दक्षिण के वैष्णव आचार्यों ने किया था । इस तरह भक्ति आन्दोलन की जो लहर दक्षिण से उत्तर भारत में आयी थी, वह सतत उत्तरी भारत में फैल गयी और इस आन्दोलन जन आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। अस्तु इसमें संदेह नहीं कि मध्य–युग के इतिहास में यह आन्दोलन बेजोड़ कहा जा सकता है। यह आन्दोलन उत्तरोत्तर जोर पकड़ता गया और पद्रहवीं–सोलहवीं शताब्दी में यह प्रवाह सिमटकर ब्रजभूमि में प्रवाहित होने लगा तथा मानव मात्र के मैल को काटकर अनिर्वचनीय आनन्द का प्रसार करने लगा।

1 – वैष्णव भक्ति आन्दोलन

भक्ति आन्दोलन 'वैष्णव' आन्दोलन का ही नया संस्करण है। इसने समस्त लौकिक वैदिक तत्वों को समन्वित करने का प्रयत्न किया। इसमें भक्ति की भावना, अवतार में आस्था, निर्गुण–सगुण का समन्वय, सहज–सुरति और योग की योजना, पूजा, कीर्तन और काव्य का

उपयोग, नाम और रूप का आश्रय–ये सभी लोकतत्वों के पोषण के लिए किसी–किसीने वेद–उपनिषद् और ब्रह्मसूत्रों से भी आधार ग्रहण किया।[111] इस आन्दोलन के संबंध में डॉ ग्रियर्सन ने जो बात कही है कि जब मुसलमान हिन्दुओं पर अत्याचार करने लगे तो निराश होकर हिन्दू लोग भगवान का भजन करने लगे। इस बात को नकारते हुए आचार्य हजारी प्रसाद जी यह कहते हैं कि यह विदेशी शासन के फल स्वरूप पराजित जाति के ईश्वरोन्मुखी होने का द्योतक न होकर सतत गतिशील भारतीय चिंताधारा के क्रमशः विकास का परिणाम है। जिसकी आधार भूमि का निर्माण शदियों पूर्व से हो रहा था और इसका मूल कारण शास्त्र सिद्ध आचार्यों और पौराणिक ठोस कल्पनाओं से इनका योग होना था।"[112] ये शास्त्र सिद्ध आचार्य दक्षिण के वैष्णव थे। जहाँ तक भक्ति के मूलस्रोत का विषय है, उसके बीज वैदिक साहित्य में भी विद्यामान हैं जो आगे चलकर भागवत धर्म तथा उससे विकसित वैष्णव धर्म के रूप में पल्लवित हुए।[113] कहने की आवश्यकता नहीं कि सिद्धान्त रूप से तो सभी वैष्णव संप्रदायों ने अपना संबंध वेदों से लगाया ओर थोड़े बहुत अंतर के साथ योग–दर्शन की समान रूप से व्याख्या की। परंतु भक्ति का वह रूप, जो उत्तरी भारत में दीख पड़ा, उसके मूल में शैव तथा वैष्णव भक्तों की भक्ति भावना थी। पहले इस ओर संकेत किया गया है । फिर भी इस ओर संकेत करना उचित होगा कि दक्षिण में आठवीं शताब्दी राजनीतिक तथा धार्मिक उथल–पुथल की शताब्दी कही जाती है, इससे ही भक्ति आन्दोलन का मूल आरंभ हुआ था। इसमें शैव और वैष्णव धर्म के आचार्यो ने मिलकर बौद्ध तथा जैन धर्म का कड़ा विरोध किया था। ध्यान रहे कि शैव और वैष्णव संतो के स्वरों में कोई अंतर नहीं था।[114] वैष्णव भक्त संतों के गीत स्वाभाविक और स्वच्छन्द भावधारा के प्रतीक थे। हृदय मुक्ति की उस चरम सीमा पर पहुँचकर उपासक और उपास्य एक हो जाते हैं, विश्वास संशय पर विजय पा लेता है, भावना बुद्धि के व्यापार को कुंठित कर समस्त वृत्तियों को आत्मसात् कर लेती है। इन भक्त कवियों ने 'प्रेम भक्ति' के वे गीत गाये, जिनकी मधुर धारा में तर्क, शास्त्र ज्ञान, अविश्वास आदि के भाव विलीनप्रायः हो गये थे और इन धाराओं ने समस्त प्रदेशों को रससिक्त कर दिया था। उनके मानस से निकले हुए इन निर्मल भाव मोतियों को अपने कंठ का आभरण बनाकर श्रोतागण कृतकृत्य होने लगे और आनन्द का ऐसा पारावार उमड़ा; जिसमें ऐहिक लालसाएं संतोष की सुखद शीतलता में परिणत हो गईं। किन्तु परवर्ती विद्वान आचार्यों ने इन कोमल भावों में तर्क का पुट लगाकर तथा शास्त्रीय नियमों के साँचे में

ढ़ालकर सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा की और श्रुति–स्मृतियों से उनका सूत्र जोड़कर अनेक संप्रदायों के रूप में प्रतिष्ठित किया। वस्तुतः समस्त वैष्णव संपद्रायों के मूल में इन संतों के गीत की भाव–धारा ही रस उड़ेलती दीख पड़ती है। यह ध्यान रहे कि भारतीय चिंतन ने 1000 ई. के पश्चात् भक्ति परक मोड़ लिया था, जिससे सभी धर्म संप्रदाय प्रभावित हुए थे। इससे सभी ने भावात्मक जीवन मूल्य को भी स्वीकार कर लिया था। भक्ति आन्दोलन इन्हीं नवोदित जीवन–मूल्यों का आन्दोलन था, जिसने सभी धर्म–संप्रदायों को प्रभावित किया।

1 . 6 भक्ति के विभिन्न वैष्णव संप्रदाय

1 – शंकराचार्य (अद्वैत संप्रदाय)

जीवन : श्री रामानुज के लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व देश में श्री शंकराचार्य के रूप में एक ऐसे महान् व्यक्तित्व का जन्म हुआ था, जिन्होंने अपनी अपूर्व बैद्दिक शक्ति द्वारा यहॉ वैचारिक क्रान्ति की थी। इस समय तक भारतीय चिंतन के क्षेत्र में 'प्रस्थानत्रयी' के महत्व की प्रतिष्ठा हो चुकी थी तथा शंकराचार्य से लेकर पन्द्रहवीं शती के पूर्व तक के सभी वैष्णव आचार्यों ने अपने मत के प्रतिपादन में उन्हीं की व्याख्या को आधार बनाया था।[115]यद्यपि आचार्य शंकर के जीवन एवं सिद्धांतों के बारे में पर्याप्त सामग्री अधिगत हैं तथापि उनके काल के विषय में अभी तक कोई सर्वमान्य निर्णय नहीं हो पाया है। यह अनुमान के तौर पर माना जाता है कि उनका काल आठवीं शताब्दी के अंत तथा नवीं शताब्दी के प्रारंभ तक है। उनका जन्म दक्षिण भारत के केरल प्रान्त के कालपी ग्राम में 788 ई. में हुआ था।[116] वे प्रारंभ से ही अत्यन्त प्रतिभाशाली तथा कुशाग्र बुद्धि के थे। बहुत छोटी अवस्था में ही उन्होंने प्रायः सभी धर्म ग्रन्थों का अध्ययन कर लिया था। विद्याध्ययन के पश्चात् उन्होंने संन्यास धारण कर लिया और देश–भ्रमण करने लगे।

शंकर के सिद्धांतः

शंकराचार्य ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति में उपजे धार्मिक ऊहापोह को नष्ट करने के लिए तथा बौद्ध और जैनों की धर्मविरूद्ध घोषणा को धूलीशात् कर धर्म की प्रतिष्ठा के लिए अपना मत का प्रतिपादन किया था। किन्तु उनके इस मत को बाद के आचार्यों से सहमति नहीं मिली। शंकराचार्य ने "अद्वैत सिद्धांत" की स्थापना की थी। इसमें उन्होंने केवल

ब्रह्म की सत्ता स्वीकारी थी। उनके मतानुसार केवल 'ब्रह्म' ही सत्य है; इसके अतिरिक्त सब कुछ असत् अर्थात् माया है। ब्रह्म के बारे में उनका कथन है 'एकमेवाद्वितीयं' ।[117] उनकी सिद्धांतों की पृष्ठभूमि पर अगर ध्यान दें तो यह स्पष्ट होता है कि उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता जिनमें वैदिक वाङ्गमय के आध्यात्मिक ज्ञान का सार तत्व दिया गया है तथा इन्हें 'प्रस्थानत्रयी' कहा जाता है, पर शंकर सिद्धांत की पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ है। "उनके मतानुसार यह दृश्यमान जगत् और उसके सभी पदार्थ मिथ्या एवं मायाजन्य हैं।"[118] यह माया ब्रह्म की शक्ति होने पर अनिर्वचनीय तुच्छ पदार्थ है।[119] उन्होंने ब्रह्म को निर्गुण, किन्तु माया के कारण सगुण सा भाषित होने वाला माना है। उनके अनुसार एक शुद्ध, बुद्ध, नित्य मुक्त परंब्रह्म के अतिरिक्त विश्व में कोई वस्तु स्वतंत्र नहीं है। माया मानवीय दृष्टि से भय उत्पन्न करती है, जो मिथ्या है। शंकर के 'अद्वैतवाद' का महावाक्य 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' है। जीव के बारे में आपका मत यह है कि जीव ब्रह्म का ही आभास अथवा प्रतिबिम्ब है और ब्रह्म के समान नित्यमुक्त तथा स्वप्रकाश है। शंकर के मतानुसार "माया, अविद्या तथा अज्ञान–ये तीनों ही नामतः भिन्न होने पर भी वस्तुतः एक ही पदार्थ है।"[120] सांसारिक मुक्ति लाभ के साधन के बारे में आपने यह बताया है कि "तत्वमसि रूपी उपनिषदीय महावाक्यों के श्रवण मात्र से उत्पन्न ज्ञान ही मुक्तिलाभ में एक मात्र साधन है, मुक्ति का कोई दूसरा उपाय नहीं है।"[121] उनके दर्शन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। उनके कथनानुसार जीव स्वयं ब्रह्म है, पर माया के कारण वह सांसारिक माया जाल में फंसा हुआ है। अज्ञान का नाश होने पर ही मुक्ति संभव है। ब्रह्म चिन्तन से ही अज्ञान का नाश होता है तथा जीव मात्र को सत्य स्वरूप ज्ञान का आभास होता है। ब्रह्म चिंतन में लीन होने वाले साधक को ब्रह्म का साक्षात्कार होता है तथा वह ब्रह्म में लीन हो जाता है। इस अवस्था में उसे परमानंद पद प्राप्त होता है।[122] यह निःसंदेह है कि शंकराचार्य के दार्शनिक सिद्धांत ने भक्ति के क्षेत्र में क्रांति मचा दी थी। किन्तु आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनके संदर्भ में यह लिखा है कि "उन्होंने जिस अद्वैतवाद का निरुपण किया था, वह भक्ति के सन्निवेश के लिए उपयुक्त न था। यद्यपि उसमें ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता को भी स्वीकार किया गया था, पर भक्ति के सम्यक् प्रचार के लिए जैसे दृढ़ आधार की आवश्यकता थी, वैसा दृढ़ आधार स्वामी रामानुजाचार्य ने खड़ा किया था।"[123]

तर्क सम्मत और समयापेक्षित होते हुए भी शंकर के इस मत को पूर्ण नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इसके दोनों पक्षों में समन्वय का अभाव नजर आता था। एक ओर तो ब्रह्म की अद्वैतता को उस अमूर्त स्थिति तक पहुँचा दिया था कि सामान्य व्यक्ति उसकी प्रक्रिया से चौंधिया जाय और दूसरी और संसार के महत्व को स्वीकार करके भी उसकी निःसारता और मिथ्यात्व के प्रतिपादन द्वारा साधारण मानव धर्म की ओर से भी मनुष्य को विमुख कर दिया था। अतंतः शंकर के दार्शनिक सिद्धांतों में भक्ति के लिए तत्वतः कोई स्थान न होने के नाते भक्तिमार्गीय परवर्ती संप्रदाय के आचार्यों ने अद्वैतवाद का विरोध करते हुए विभिन्न वादों के आधार पर अपने–अपने भक्ति संप्रदायों की स्थापना की थी।[124]

5.2 रामानुजाचार्य (श्री संप्रदाय)

वैष्णव संप्रदायाचार्य श्री रामानुज का जन्म सं.1074 में दक्षिण भारत के श्री पेरेम्बुपुरम् में हुआ था। आप आरंभ से ही कुशाग्र बुद्धि और प्रतिभा संपन्न थे। आपको वेदांत की शिक्षा यादव प्रकाश नामक विद्वान से मिली थी। किन्तु यह अचरज की बात है कि जो पहले गुरु थे उन्होंने बाद में शिष्य से शिष्यत्व ग्रहण किया था। गृहस्थाश्रम से विरक्त होकर रामानुजाचार्य ने सन्यास ग्रहण कर आलवार भक्तों के भक्ति–मार्ग का प्रचार किया। यह ध्यान रहे कि वे यामुनामुनि की पौत्री के पुत्र थे और यामुनमुनि, नाथमुनि के पौत्र थे।[125] यामुनामुनि ने कई विद्वतापूर्ण ग्रन्थों की रचना की थी। जिनमें 'आगम प्रामाण्य' प्रमुख है। इस ग्रंथ में विशिष्टाद्वैत सिद्धांत की आरंभिक प्रतिष्ठा की गई थी। यह सूचनायोग्य है कि यामुनामुनि के दादा यानी नाथमुनि ने तमिल–प्रवंधम् को सार्वजनिक पूजा में समाविष्ट कराया था। उन्होंने तमिल प्रबंधम् को वैष्णव संप्रदायों में वेद का दर्जा दिलवाया । उनके पौत्र यामुनाचार्य ने पांचरात्र पद्धति की प्रामाणिकता को स्थापित किया, शंकर के मायावाद का खंड़न किया, जीवात्मा की अलग सत्ता का प्रतिपादन किया और प्रपत्ति के सिद्धान्तों की घोषणा की थी। अतः दिनकर जी ने डी.एस.शर्मा कृत 'रिनासाँ आव् हिन्दुइज्म' के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि "बारहवीं सदी के आरंभ में रामानुज ने जिस विशिष्टाद्वैत दर्शन का महल खड़ा किया, उसकी नींव यामुनाचार्य ने ही ड़ाली थी।"[126] रामानुजाचार्य के संप्रदाय को श्री संप्रदाय कहा जाता है। इस संप्रदाय के नामकरण के बारे में यह कहा जाता है कि

"भगवान विष्णु ने इसका सर्वप्रथम उपदेश श्री देवी (लक्ष्मी) को दिया था, उन्हीं के नाम पर इसका 'श्रीसंप्रदाय' नाम प्रसिद्ध हुआ है।"[127]

<u>रामानुज का सिद्धान्त</u> : पहले यह बताया जा चुका है कि रामानुज ने आचार्य शंकर के अद्वैत दर्शन के विरोध में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। "इस सिद्धांत के अनुसार पदार्थ तीन हैं – चित्, अचित् तथा ईश्वर। चित् का अभिप्राय है भोक्ताजीव से, अचित् का संबंध भोग्य जगत् से तथा ईश्वर का संबंध अतंर्यामी परमेश्वर से है।"[128] उन्होनें ब्रह्म को अद्वैत मानते हुए भी उसे चिन्मय आत्मा और जड़ प्रकृति इन दो पदार्थों से विशिष्ट बताया है। वे शंकराचार्य की भाँति जगत् को मिथ्या एवं मायाजन्य नहीं मानते बल्कि इसे ब्रह्म में लीन और ईश्वर को विश्व में अंतर्हित बतलाते हैं। उन्होंने ईश्वर के संदर्भ में यह कहा है कि – "ईश्वर समस्त जगत् का निमित्त कारण होते हुए भी उपादान कारण हैं। जगत् की सृष्टि भगवान की लीला से ही हुई है। सृष्टि में वह सृष्ट पदार्थों के साथ ही लीला किया करता है। उसी प्रकार संहृति भी उसकी एक विशिष्ट लीला ही है, क्योंकि इस व्यापार में ईश्वर आनंद का अनुभव करता है। 'चित्' के बारे में बताते हुए उन्होंने यह कहा है कि "चित् से अभिप्राय है जीव जो देह इंद्रिय–मान–प्राण बुद्धि से विलक्षण, अजर, आनंदरूप, नित्य, अणु, अव्यक्त, अचिंत्य, निर्विकार तथा ज्ञानाश्रय है।"[129] जीव ईश्वर के अधीन है। वह अपने समस्त कार्य कलाप के लिए ईश्वर पर आश्रित रहता है। इसलिए जीव शेष कहलाता है और ईश्वर शेषी कहलाता है। एक प्रकार से यह इस संप्रदाय का साधना पक्ष ही है। "शेष दास है, और शेषी स्वामी।"[130] गीता में जीवों को आत्म विभूति माना गया है।"[131] श्रीरामानुज के अनुसार विभुति का अर्थ है शेष अर्थात नियाम्यत्व, क्योंकि ये भगवान और जीव में नियामक और नियाम्य संबंध मानते हैं। ब्रह्म तथा जीव के संबंध में रामानुज का मंतव्य है कि जिस प्रकार देह, देही का अंश है और चिनगारी, अग्नि का अंश है उसी प्रकार जीव ब्रह्म का है। इसको और स्पष्ट करते हुए उन्होंने यह बताया है कि जिस प्रकार आग से निकलने वाली चिनगारी उसका अंश है, उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म से निर्गत होता है तथा उसका अंश है। दोनों के रूप में महान् अंतर है। जीव है अणु अर्थात् क्षुद्र; ब्रह्म है विभु अर्थात् अति महान्। जीव है अल्पज्ञ परंतु ब्रह्म है सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान। शंकर के मतानुसार ब्रह्म निर्गुण है किन्तु रामानुज ने ब्रह्म को सगुण बताया है। इस संप्रदाय में निर्गुण के प्रति स्पष्ट विरोध परिलक्षित होता है। "इनकी दृष्टि से समस्त पदार्थ गुणविशिष्ट हैं।

निर्विकल्प प्रत्यक्ष के अवसर पर भी गुणविशिष्ट वस्तु की ही प्रतीति होती है।"[132] 'श्री संप्रदाय' के भक्ति तत्व का सार प्रपत्ति है। जिसका अभिप्राय भगवान की शरण में जाना है।[133] इस संप्रदाय के मतानुसार यही यथार्थ संन्यास है। ज्ञानयुक्त भक्तियोग में न तो सब की सामर्थ्य है और न अधिकार ही है। किन्तु उन्होंने प्रपत्ति योग को सबके लिए सुगम और सुलभ बताया है। रामानुजाचार्य के प्रसिद्ध ग्रथों में वेदांतसार, वेंदान्त–संग्रह, वेदांत–दीप तथा ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता आदि के भाष्य मान्य हैं। उन्होंने अपने संप्रदाय को शास्त्र सम्मत सिद्ध करने के लिए 'प्रस्थानत्रयी' पर भाष्य लिखा था।

निष्कर्षतः यह कहा जाता है कि भक्तिमार्ग के परिनिष्ठित स्वरूप की स्थापना सबसे पहले रामानुजाचार्य ने ही की थी और भक्ति के इस स्वरूप ने उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन को पूर्णता प्रभावित किया था। यह निश्चित है कि रामानुज संप्रदाय के अनुयायियों की संख्या उत्तर भारत में इतनी नहीं है, जितनी दक्षिण भारत में है। यह भी पहले बताया जा चुका है और यहाँ भी इस ओर सूचित किया जाता है कि आगे वैष्णव मत के जितने भी प्रचारक हुए हैं सभी ने शंकर के 'मायामिथ्यात्व' के सिद्धांत का खण्डन कर शुद्ध भक्ति की स्थापना की है।

3 – विष्णुस्वामी (रुद्रसंप्रदाय)

वैष्णव आचार्यों में विष्णुस्वामी जी का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके संप्रदाय का नाम 'शुद्धाद्वैत संपद्राय' बताया जाता है । इसे 'रुद्र संपद्राय' भी कहा जाता है। यह माना जाता है "इस संप्रदाय के आरंभकर्ता भगवान शंकर हैं, जिसके लिए इसे 'रूद्रसंप्रदाय' कहा जाता है।"[134] इस संपद्राय का कोई ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध नहीं होता है। डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने 'वैष्णव धर्म के संक्षिप्त इतिहास' में यह बताया कि "पद्मपुराण और भविष्य पुराण में रुद्र संपद्राय का नामोल्लेख मिलता है।"[135] परशुराम चतुर्वेदी ने यह उल्लेख किया है कि "विष्णुस्वामी वास्तव में रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य एवं मध्वाचार्य – इन तीनों से पहले ईसा की 10 वीं शताब्दी में हुए थे।"[136] नाभाजी के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भक्तमाल' के आधार पर विष्णुस्वामी को ज्ञानदेव का गुरु कहकर उनके समय 13 वीं शताब्दी होने का अनुमान किया जाता हैं ।[137]

विष्णुस्वामी का जीवन वृत्तांत उपलब्ध नहीं है। आप के संबध में यह कहा जाता है कि आप दिल्ली के किसी सुल्तान के अधीन द्रविड़ प्रदेशीय राजा के एक ब्राह्मण मंत्री के पुत्र थे। प्रभुदयाल मीतलजी ने इनके दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर यह बताया है कि – "विष्णुस्वामी के दार्शनिक सिद्धांतों का वास्तविक स्वरूप तो उनके ग्रन्थों के मिलने पर ही जाना जा सकता है; किन्तु यदि वल्लभाचार्य जी का 'शुद्धाद्वैतवाद' ही विष्णुस्वामी जी का सिद्धांत है, तब उसकी स्पष्ट रूप–रेखा उपलब्ध है।[138] इस प्रकार विष्णु स्वामी जी के विषय में कुछ कहना कठिन है। वल्लभ संप्रदाय की मान्यतानुसार वल्लभाचार्य विष्णुस्वामी की परंपरा में ही थे और विष्णुस्वामी ने जिस भक्तिमार्ग का प्रचार किया था उसमें मुक्ति की अपेक्षा भक्ति की महत्ता का ज्यादा प्रतिपादन किया गया है। इस संप्रदाय में आचार्य विल्वमंगल के समय में भक्ति का जोरदार प्रचार हुआ। इस संप्रदाय के सिद्धांत के विषय में भंड़ारकर लिखते हैं – "The vedanti theory of Vishnusumin, which is the same as that of Vallabh, is as follows. The one Primeval soul was not Joyful, because he was alone and desining to be many, he himself became the inanimate world, the invdividual soul, and the inward controlling soul "[139] विष्णुस्वामी की अनेक रचनाऍं बतलायी जाती हैं, परंतु उनमें 'सर्वज्ञसूक्त' ही एक मात्र रचना है जो प्रमाण कोटि में अंगीकृत की गई है।[140] श्रीधर स्वामी ने इस ग्रन्थ का आध्यात्मिक उपयोग अपनी रचना में किया है । उनके द्वारा लिंखित टीका से विष्णुस्वामी के कतिपय सिद्धांतों का आभास मिलता है। अतः विष्णुस्वामी के सिद्धांतों के अनुसार ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप हैं। वे अपनी 'ह्लादिनी संवित्' के द्वारा आश्लिष्ट हैं तथा माया उन्हीं के अधीन रहती है। ईश्वर का प्रधान अवतार नृसिंह अवतार बतलाया गया है। "कुछ लोग विष्णु स्वामी को नृसिंह तथा गोपाल दोनों का उपासक मानते हैं।"[141]

इनकी शिष्य परंपरा की छानबीन करने के उपरांत हमें इस संबंध में असंदिग्ध तथ्य हाथ लगते हैं। साथ–साथ नाभाजी के 'भक्तमाल' में ज्ञानदेव, नामदेव, त्रिलोचन और वल्लभाचार्य का नामोल्लेख प्राप्त होता है। इनमें से ज्ञानदेव, नामदेव नाथ संप्रदाय के माने जाते हैं। ऐसी दशा में इनके संबंध में कोई ठोस प्रामाणिकता हाथ नहीं लगती है। फिर भी

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि उनकी विचार धारा एवं साधना पद्धत्ति का प्रभाव अन्य प्रसिद्ध आचार्यों तथा संप्रदायों पर देखा जाता है।

4 – श्री निम्बार्काचार्य (सनकादि संप्रदाय)

भक्ति के क्षेत्र में राधा–कृष्ण को जिन संप्रदायों ने ब्रज मंडल में प्रधानता दी है, उनमें निम्बार्क संप्रदाय प्रमुख है। निम्बार्क संप्रदाय युगल भाव से श्रीकृष्ण के किशोर रूप का उपासक है। वैष्णव संप्रदायों में निम्बार्क मत का एक विशिष्ट महत्व है। यह केवल दार्शनिकता की दृष्टि से ही नहीं, प्रत्युत प्राचीनता की दृष्टि से भी महान है । इस संप्रदाय के कई नाम प्रचलित हैं – हंस सप्रदाय, सनकादि संप्रदाय, देवऋषि संपद्राय आदि। ये नाथ संप्रदाय में प्रचलित इस मत की परंपरा के ही द्योतक हैं। श्री निम्बार्काचार्य के समय के बारे में विद्वानों ने अनिश्चितता जताई है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि उस वैष्णव मत के ऐतिहासिक प्रतिनिधि श्री आचार्य हंसावतार हैं। ''इस मत के सर्व प्रथम उपदेष्टा हंसावतार भगवान हैं, जिनके शिष्य सनत्कुमार हैं । इन्होंने इसका उपदेश श्री महर्षि नारदजी को दिया था और नारद जी से ही यह उपदेश निम्बार्क को प्राप्त हुआ था।''[142] आचार्य निम्बार्क ब्रह्म तथा जीव के संबंध में भेदाभेद या द्वैताद्वैत के प्रतिपादक हैं। उनकी मान्य सम्मति में ''जीव अवस्था भेद से ब्रह्म के साथ भिन्न भी है तथा अभिन्न भी।''[143] भारतीय दार्शनिक जगत् में यह भेदाभेद सिद्धांत नितांत प्राचीन है। आचार्य निम्बार्क का काल अनिश्चित होने के बावजूद डॉ. भण्डारकर ने उनकी विद्यमानता रामानुज के पश्चात् अनुमानित की है।[144] दार्शनिक साहित्य में इनके ''निम्बाकाचार्य, निम्बादित्य, निम्बभास्कर नियमानन्दाचार्य आदि कई नाम मिलते हैं।''[145]

अगर आपके दार्शनिक सिद्धान्त की ओर बढ़ें तो यह तथ्य उपलब्ध होते हैं कि आपके दो प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रंथ प्राप्त होते हैं – 'वेदान्त पारिजात सौरभ' तथा 'वेदान्त कामधेनु दशश्लोकी'। ''वेदांत पारिजात सौरभ ब्रह्मसूत्रों पर लिखा गया भाष्य ग्रंथ है तथा 'दशश्लोकी' में संक्षिप्त रीति से ज्ञेय पंचविधि पदार्थ का निरूपण है।''[146] निम्बार्क के उत्तराधिकारी श्रीनिवास ने 'वेदान्त–परिजात' पर भाष्य लिखा और निम्बार्क से 32 वें आचार्य हरिव्यासदेव ने दशश्लोकी पर उपर्युक्त दो ग्रन्थों के अतिरिक्त गीताभाष्य, कृष्णस्तवराज, गुरुपरंपरा, वेदान्त

तत्वबोध, वेदान्त सिद्धांन्तप्रदीप, स्वधर्माध्वबोध, ऐतिह्यतत्व सिद्धान्त, राधाष्टक आदि की रचना की है ।[147]

द्वैताद्वैतवाद : निम्बार्क द्वारा प्रतिपादित 'द्वैताद्वैतवाद' का मूल सिद्धान्त यह है कि जीव और ब्रह्म के बीच अवस्था–भेद से अभिन्नता और भिन्नता दोनों बनी रह सकती है। इस सिद्धान्त की परंपरा बहु प्राचीन है।[148] ऊपर यह कहा जा चुका है कि 'दशश्लोकी' पर हरिव्यास देव ने टीका लिखी है तथा सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन किया है।

निम्बार्क के सिद्धांतों के अनुसार "जीव और जगत् का ब्रह्म से संबंध द्वैत भी है और अद्वैत भी। 'दशश्लोकी' के भाष्य में हरिव्यास देव जी यह लिखते हैं कि – वस्तुतः विज्ञान–स्वरूप एक ही ब्रह्म सर्व जीव जगत् का नियन्ता है। जीव और ब्रह्म में अभेद रहते हुए भी जीव तथा ब्रह्म का विलक्षण व्यवहार है, जैसे अवतार और अवतारी, गुण और गुणी में अभेद है। परंतु दृष्टि मात्र से भेद दिखाई देता है, वस्तुतः भेद नहीं है। इससे इस मत में भेदाभेद का समर्थन किया गया है। ब्रह्म, चित् जीव तथा अचित् जड़ से भिन्न है। किन्तु चित् तथा अचित् दोनों ही तत्व ब्रह्मात्मक हैं।[149] इसको और सरल रूप में स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। कहा गया है कि जैसे वृक्ष से पत्र तथा प्रदीप की प्रभा, ये वृक्ष और प्रदीप से अलग होकर कार्य नहीं कर पाते हैं। ये इनके अंश रूप हैं यानी अभिन्न हैं। उसी प्रकार चित्–अचित् भी ब्रह्म के अंश हैं। जहाँ तक दार्शनिक सिद्धान्तों का संबंध है, रामानुज के दर्शन से इसकी काफी समानता परिलक्षित होती है। ये समानताएँ अग्रलिखित हैं।

जीव : जीव का संबंध चिदंश से है। इस मत में जीव ईश्वरात्मक तथा उससे अविभाज्य कहा गया है। अचेतन पदार्थ का भी ब्रह्म से अविभाज्य है। "जैसे मकड़ी का तंतु मकड़ी से अलग भी स्थित है तथा उसके भीतर भी। उस तरह जगत ब्रह्म में है तथा ब्रह्म जगत से अतीत भी स्थित है।"[150] इस संदर्भ में मुक्त जीव तथा बद्धजीव की बात की गई है। ये दो प्रकार के हैं – मुमुक्षु और भुभुक्षु। जहाँ मुमुक्षु मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से आन्दोलित रहता है, वहाँ भुभुक्षु विषय वासना की इच्छा करता रहता है।

जगत् : जगत् अचित् पदार्थ है यानी चीत् का विपरीत है। ये तीन प्रकार के होते हैं। प्राकृत, अप्राकृत और काल।[151] महत् तत्व से लेकर ब्रह्मांड तक जगत्–रूप 'प्राकृत' का कार्यरूप है। इसमें बद्धजीवों की स्थिति होती है। 'अप्राकृत' जगत् वहाँ होता है, जहाँ समस्त प्रकृतिक नियम पंगु हो जाते हैं। 'कालतत्व' समस्त जगत् के परिणामों का विधायक है। काल अखंड़ है। यह सर्वदा भगवान् के अधीन है। यह तत्व नित्य तथा विभु है और भूत, भविष्य तथा वर्तमान आदि व्यवहार का हेतु है।[152]

ईश्वर : श्री रामानुजाचार्य के दार्शानिक सिद्धान्तों की भाँति इनके दार्शनिक सिद्धांतों में भी भगवान के सगुण स्वरूप को स्वीकारा गया है। यह बात पहले भी बताई जा चुकी है कि समस्त वैष्णव संप्रदायों के दार्शनिक सिद्धांत की प्रतिष्ठा शंकराचार्य के 'अद्वैत दर्शन' के विरुद्ध हुई थी। इस मत में ईश्वर के संबंध में यह बताया गया है कि नारायण समस्त गोचर जगत् में व्याप्त हैं। समस्त चेतन और अचेतन तत्व उन पर अवलम्बित हैं। जीव और ब्रह्म में भेदाभेद संबंध है। 'प्रपत्ति', जो भगवान का गुण है, द्वारा जीवों पर भगवान का अनुग्रह होता है। इन सारी बातों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने प्रेम लक्षणा भक्ति का अद्भुत अनिर्वचनीय स्वरूप 'दशश्लोकी' में प्रतिपादित किया है –

"कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते
यया भवेत् प्रेम विशेषलक्षणा।
भक्तिर्ह्यनन्याधिपतेर्महात्मन्
स चोत्तमा साधनरूपिकाऽपरा।।"[153]

परम कृपाधाम सर्वेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की दिव्य कृपा दैन्यादिलक्षण परिपूर्ण प्रपन्न भक्तों पर होती है, जिस अनिर्वचनीय कृपा से उन कृपार्णव श्रीप्रभुके युगल चरण कमलों में रसमयी भक्ति प्रकट हाती है। यह भक्ति दो प्रकार की बतायी गई हैं –प्रेम लक्षणा परा भक्ति और साधन रूपा अपरा भक्ति ।

निष्कर्षतः निम्बार्काचार्य के दार्शनिक मतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसमें ब्रह्म, जीव तथा प्रकृति का वर्णन हुआ है। इसमें यह प्रतीत होता है कि इन सिद्धान्तों का मूल आधार रामानुज के ही सिद्धान्त हैं। इसीलिए इनमें शरणागति अर्थात् प्रपत्ति को विशेष महत्व दिया गया है। इनकी विशेषता यह है कि प्रपति के साथ–साथ परमात्मा की

कृपा तथा उसके प्रति प्रेम का प्राधान्य है। निम्बार्क की साधना पद्धत्ति में रामानुज संप्रदाय के सभी योग आते हैं। इन दोनों में अंतर सिर्फ इतना सा है कि रामानुज ने तो भक्ति को उपनिषदों में विहित उपासना की कोटि में रखा है और उसके भौतिक रूप को बदल दिया है, जबकि निम्बार्क ने भक्ति की मूल भावना को सुरक्षित रखते हुए अपनी भक्ति को रामानुज की भक्ति की तरह नारायण, लक्ष्मी, भू और लीला तक सीमित न रखकर कृष्ण और सखियों द्वारा परिवेष्टित राधा तक व्यापक बना दिया है ।

5 – मध्वचार्य (ब्रह्म संप्रदाय)

श्री भगवान नारायण की आज्ञा से स्वयं वासुदेव ने ही भक्ति सिद्धांत की रक्षा के लिए मद्रास प्रान्त के मंगलूर जिले के अंतर्गत उडूपाक्षेत्र से दो–तीन मील दूर बेलालि ग्राम में भार्गवगोत्रीय नारायण भट्ट के अंश से तथा माता वेदवती के गर्भ से विक्रम संवत् 1295 की माघ शुक्ला सप्तमी के दिन आचार्य मध्व के रूप में अवतार ग्रहण किया था।[154] इस संप्रदाय की मान्यतानुसार इसके आरंभिक उपदेष्टा ब्रह्मा जी हैं। अतः यह 'ब्रह्म संप्रदाय' के नाम से ख्यात है।[155] इसका दार्शनिक सिद्धान्त 'द्वैतवाद' कहलाता है, जो शंकर के अद्वैतवाद के सर्वथा विरूद्ध रहा है। मध्ययुग में इस संप्रदाय की विशेष उन्नति हुई। इस संप्रदाय के आचार्यों का लक्ष्य मायावाद का खण्डन करना था।[156] अतः माया को किसी रूप में मिथ्या मानकर चलने वाले संप्रदायों का खण्डन कर भगवत् भक्ति को ही सच्चा मोक्ष–साधन बतलाने वाले इस रामानुज संप्रदाय के पश्चात् एक तीसरा संप्रदाय निकला, जिसको 'द्वैत संप्रदाय' कहा जाता है।[157] यह निश्चित है कि वैष्णव धर्म के चारों संप्रदायों में भक्तिमार्ग का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करने वाला यही संपद्राय है। जब कि अन्य तीनों संप्रदाय भक्ति मार्ग से अधिक अपने दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मीतल जी यह बताते हैं कि "मध्वाचार्य ने आरंभ से ही एक अद्वैतवादी गुरू से वेदांत की शिक्षा प्राप्त की थी किन्तु उन्हें अद्वैतवाद के सिद्धान्त से संतोष नहीं हुआ। फलतः उन्होंने इसके विरूद्ध 'द्वैतवाद' की स्थापना कर उसके प्रचारार्थ सारा भारत भ्रमण किया।[158] अपने द्वैतवादी सिद्धान्तों के प्रचारार्थ निम्बार्क ने अनेक रचनाऐं कर ड़ाली थीं; जिनमें उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र के भाष्य, गीता तात्पर्य निर्णय, न्याय विवरण, तंत्र सार संग्रह, विष्णुतत्व निर्णय, श्रीकृष्णामृत महर्णव आदि उल्लेखनीय हैं।[159]

द्वैतवाद सिद्धांत : यह कहा जा चुका है कि मध्वाचार्य जी का दार्शनिक सिद्धांत 'द्वैतवाद' कहलाता है, जो शांकर अद्वैतवाद के सर्वथा प्रतिकूल और उसका सबसे प्रबल विरोधी है। यह ध्यान रहे कि शंकर के दार्शनिक सिद्धांत अद्वैतवाद के विरुद्ध उत्पन्न अन्य वैष्णव धर्म के संप्रदायों के दार्शनिक सिद्धातों से माध्व संप्रदाय का दार्शानिक सिद्धांत कुछ अनोखा है। यह इसलिए अनोखा है कि, जहॉ शंकराचार्य ने कर्म प्रधान जगत् को मिथ्या तथा भ्रम ठहराया था, जिससे लोक जीवन में रुचि उत्पन्न होना नामुमकिन था; वहीं उसके विरुद्ध मध्वाचार्य ने जीवन की वास्तविकता यानी यथार्थ को सही रूप में परखकर उसे व्यावहारिक और रुचिपूर्ण बनाने का आधार प्रस्तुत किया । इस संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांतों का समावेश *निम्नलिखित श्लोक के द्वारा हुआ है –*

"श्री मन्मध्वमते हरिः परतरः सत्यं जगत् तत्वतो।
भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभावं गतः।।
मुक्तिनैंजसुखानुभुतिरमला भक्तिश्च तत् साधनं।
ब्रह्मक्षादित्रितयं प्रमाण मखिलाम्नयैकवेद्यो हरिः।"[160]

उपरोक्त पद्य में नौ सिद्धान्तों का उल्लख किया गया है; ये निम्नलिखित हैं ।

1 – हरि परतर : श्री विष्णु ही सर्वोच्च तत्व हैं । वे अनंत तथा दिव्यादि गुणों से परिपूर्ण है। उत्पत्ति, स्थिति, संहार, नियमन, ज्ञान, आवरण, बंध और मोक्ष इन आठ क्रियाओं के वे कर्ता हैं। ये जीव तथा जगत् से विलक्षण हैं। जीव और ईश्वर सच्चिदानंदात्मक हैं, पर जीव मायावद्ध है और ब्रह्म से नितांत भिन्न है।

2 – सत्य जगत् : जगत् को इस संप्रदाय में सत्य माना गया है । भगवान सत्य संकल्प कहे गये हैं। यह जगत् उस सत्य संकल्प ईश्वर का ही परिणाम है। इसीलिए यह मिथ्या, असत्य नहीं हो सकता। यह ध्यान रहे कि जो जगत् शंकर मत के अनुसार मिथ्या है, वही भक्ति के आचार्यों के अनुसार सत्य है ।

3 – तत्वतः भेद : इस संप्रदाय में जीव, जगत् और ईश्वर में तात्विक भेद माना गया है। इस माध्व मत में 'भेद' स्वाभाविक तथा नित्य है। यह भेद निम्नलिखित पॉच प्रकार के हैं।[161]

अ . ईश्वर और जीव भेद :– जीव ईश्वर से तथा ईश्वर जड़ से नित्य भिन्न है।

आ. ईश्वर और जड़ भेद :– जड़ ईश्वर से तथा ईश्वर जड़ से नित्य भिन्न है।

इ . जीव और जड़ भेद :– जीव जड़ से तथा जड़ जीव से नित्य भिन्न है।

ई. जीव–जीव भेद :– एक जीव अपर जीव से भिन्न है।

उ . जड़–जड़ भेद :– एक जड़ दूसरे जड़ से भिन्न है।

4 – **जीवगणा हरेरनुचारा** : समस्त जीव हरि के अनुचर हैं। अर्थात् समस्त जीव और उनकी शक्ति कल्याण के लिए भगवान के अधीन है। भगवान से पृथक् होकर वह सभी कार्यों के संपादन में अक्षम है।

5. **नीचोच्चभावं गतः** – जीव में ऊँच–नीच की भावना रहती है। इस संपद्राय का यह विशिष्ट मत है कि जीव सांसारिक दशा में ही अपनी कर्म भिन्नता के कारण ऊँच–नीच नहीं है। प्रत्युत मोक्ष दशा में भी जीवों में तारतम्य विद्यमान रहता है।[162]

6. **मुक्तिनैंज सुखानुभूति** : इस संदर्भ में सांसारिक मोक्ष की बात की गयी है। यह सवाल उठाया गया है कि मोक्ष क्या है ? उत्तर में यह बताया गया है कि वास्तविक सुख की अनुभूति ही मोक्ष है। इस अवस्था में आनंद का उदय होता है, जिसको परमानंद या ब्रह्मानंद के नाम से नामित किया जाता है। माध्वमत के मुताबिक मोक्ष चार प्रकार के हैं – "कर्मक्षय, उत्क्रान्ति, अचिरादि मार्ग और भोग।"[163]

7. **अमलाभक्ति** : इस संदर्भ में मुक्ति का साधन भक्ति बताया गया है। स्वार्थ का अभाव यानी निष्काम भाव ही भक्त के मन को निर्मल बनाता है। इसे अहैतुकी भक्ति कहा जाता है, जो सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। इसे अनन्या भक्ति भी कहा जाता है। इसे भगवत्गीता में मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन स्वीकार किया गया है।[164]

8 **अक्षादिप्रमाणः त्रितयम्** : माध्वमत में तीन चीजों को प्रामाणिक माना गया है – प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द। इन्हीं तीन प्रमाणों के आधार पर इसके समस्त प्रमेयों की सिद्धि होती है।

9. **आम्नायवेद्यो हरि** : वेद का तात्पर्य विष्णु है। वेद अपने अंगों तथा उपांगों के द्वारा उसी हरि का नाना प्रकार से वर्णन करता है। श्रुति, बहुविध उसी के रूप का गायन करती है। विभिन्न देवताओं की स्तुतियॉं उसी एक की स्तुतियॉं हैं। इसीलिए 'आदावन्ते च मध्ये च हरि सर्वत्र गीयते' का स्पष्ट प्रतिपादन अनेक स्थलों पर उपलब्ध होता है।[165]

अंततः संक्षेप में इस मत के भाव के बारे में यह बता देना जरुरी है कि भाव की दृष्टि से माध्वमत में आरंभ से माधुर्य की उस प्रकार स्वीकृति नहीं है, जिस प्रकार निम्बार्क और वल्लभ संप्रदायों में है। किन्तु बाद में चलकर इसका संबंध महाप्रभु गौरांगसुन्दर के दार्शनिक

उपदेशों के आधार पर आधारित 'गौड़ीय संप्रदाय' से जुड जाने के पश्चात् इस माध्वमत में माधुर्यभाव भी समाविष्ट हो गया।[166]

6 . वल्लभ संप्रदाय

वल्लभाचार्य एक महाभागवत, महा दार्शनिक और भक्ति के महान आचार्य हैं । मध्यकालीन म्लेच्छाक्रांत भारत देश में भक्ति कल्पना का छाया विस्तार करके भागवत धर्म की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखने में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने जो श्रेय प्राप्त किया, उससे उनकी प्रगाढ़ भगवद् भक्ति, मौलिक विचार धारा और विशिष्ट उपासना पद्धति की महत्ता प्रकट होती है। "वेदान्त के रंगमंच पर प्रतिष्ठित आत्मरमणशील ब्रह्म की चिन्तन–नीरसता से प्रभावित जन–मस्तिष्क को भक्ति के अतल रस–सुधा–सागरमें संप्लावन–सुख से संपन्नकर वल्लभाचार्य ने भगवान के श्रीकृष्णरूप की, रस रूप की प्रधानता की पताका फहरायी।[167] ध्यान रखें कि दक्षिण भारत की कृष्ण–भक्ति को प्रमुख रूप में विस्तारित करने वालों में निम्बार्काचार्य प्रमुख थे, जिनकी चर्चा पहले की गई है। किन्तु उत्तर भारत में राधा–कृष्ण की भक्ति का पावन स्रोत बहानेवाले दो मुख्य आचार्य हुए थे – वल्लाभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु। वास्तव में वैष्णव भक्ति आन्दोलन को उपर्युक्त दोनों महात्माओं की शक्ति प्राप्त हुई थी। यह निश्चित है कि "ये दोनों आचार्य निबार्क की भक्ति परंपरा के अंतर्गत आते हैं।"[168] वल्लभ के संप्रदाय को 'पुष्टि संप्रदाय' कहा जाता है। इस 'पुष्टि' नाम की प्रेरणा आचार्य जी को श्रीमद्भागवत से प्राप्त हुई थी। भागवत में उल्लेख है कि भगवान के अनुग्रह से ही जीवात्मा के हृदय में भगवद्भक्ति का संचार होता है और उसी से भगवद् प्राप्ति भी होती है। भागवत में यह कहा गया है कि 'पोषणं तदनुग्रहः ।"[169]

इस संप्रदाय के विकास की बात अगर की जाय तो यह ध्यातव्य है कि "वैष्णव धर्म के चतुः संप्रदायों में यह भक्ति मार्ग विष्णुस्वामी द्वारा प्रवर्तित 'रुद्र संप्रदाय' की परंपरा से विकसित हुआ है और इसका दार्शनिक सिद्धांत भी विष्णुस्वामी संप्रदाय का शुद्धाद्वैतवाद ही है।"[170] इतिहास से यह तथ्य ज्ञात होता है कि लक्ष्मण भट्ट, एक तैलंग ब्रह्मण; जो आचार्य वल्लभ के पिता थे, विष्णुस्वामी संप्रदाय के अनुयायी थे। उन्होंने अपने पुत्र श्री वल्लभाचार्य जी को स्वयं ही मंत्र दीक्षा दी थी। मीतल जी ने 'कांकरोली का इतिहास' के अधार पर यह बताया है कि "स्वयं वल्लभाचार्य जी ने अपने को विष्णुस्वामी का महानुवर्ती बताया है।"[171]

दार्शनिक विचार : दार्शनिक जगत् में श्री वल्लभाचार्य जी का सिद्धांत 'शुद्धाद्वैत' के नाम से प्रसिद्ध है। आचार्य शंकर के अद्वैत से भिन्नता दिखलाने के लिए ही अद्वैत के साथ शुद्ध विशेषण दिया गया है।[172] 'शुद्धाद्वैत दर्शन ' के अनुसार ब्रह्म, जीव, जगत्, माया आदि का विचार अलोच्य विषय हैं।

ब्रह्म : इस संप्रदाय की दार्शनिक विचारधारा के अनुसार ब्रह्म निर्गुण ओर सगुण है। प्राकृतिक धर्मों से असंपृक्त होने की वजह से वह निर्गुण है और आनन्द आदि दिव्य तथा अलौकिक गुणों से युक्त होने के कारण वह सगुण भी है। परंब्रह्म सच्चिदानंदमय है। कृष्ण ही परंब्रह्म स्वरूप है। ब्रह्म के तीन प्रकार माने गये हैं – आधिदैविक (परंब्रह्म), अध्यात्मिक (अक्षरब्रह्म), आधिभौतिक (जगत्)।[173] ब्रह्म अविकृत होने के बावजूद ये भक्तों पर कृपा के द्वारा परिणामशील होते हैं। ब्रह्म के इस त्रिविध रूप पर आचार्यों का विशेष आग्रह रहा है।

"निर्दोष–पूर्ण–गुणविग्रह आत्मतंत्रो
निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्च हीनः।
आनंदमात्र – कर – पाद – मुखोदरादिः
सर्वत्र च त्रिविध –भेद – विवर्जितात्मा।"[174]

जगत् : जगत् परब्रह्म भौतिक स्वरूप है। जगत् के कोण–अनुकोणों में परब्रह्म का निवास स्थान है । इस प्रकार यह समस्त जगत् ब्रह्म–रूप है और ब्रह्म होने से यह सत्य है। जगत् और संसार में एकत्व नहीं है। ज्ञान के उदय से जीव इस मिथ्या संसार से निवृत हो जाता है। किन्तु जगत् की स्थिति ज्यों–की –त्यों बनी रहती है।

जीवः जीव, ब्रह्म का अंश है। इसकी उत्पत्ति में माया का स्पर्श नहीं बल्कि भगवान की इच्छा रहती है। जब तक जीव का माया से संबंध नहीं होता, तब तक ऐश्वर्य आनंद आदि धर्म उसमें रहते हैं । जब ब्रह्म के संकेत से माया से जीव मुक्त होता है तो उसके जीव गुण तिरोहित हो जाते हैं, तब वह दीन ओर पराधीन हो जाता है।[175] जीव के संबंध में वल्लभाचार्य ने यह बताया है कि "अग्नि की चिनगारियों की तरह ब्रह्म में से जीवों की उत्पत्ति होती है । जिस प्रकार अग्नि और चिनगारी दोनों के स्वरूपगत कोई भेद नहीं, उसी प्रकार ब्रह्म और जीव का भी स्वरूपगत अभेदत्व है; अर्थात् मूलरूप में जीव भी उतना ही

सत्य है, जितना स्वयं ब्रह्म ।"[176] वल्लभाचार्य ने जीव की तीन अवस्थाएँ मानी हैं – शुद्ध, संसारी और मुक्त । निष्कर्षतः उन्होंने ब्रह्म को विभु तथा जीव को अणु माना है । इसके कारण ही उनका रचा हुआ 'ब्रह्मसूत्र भाष्य' कुछ विद्वानों के मतानुसार 'अणुभाष्य' कहलाता है।

माया : शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुसार माया ब्रह्म की रूपा शक्ति है । यह परंब्रह्म से सदा वेष्टित रहती है । जिस प्रकार "अग्नि से उसकी दाहकशक्ति और सूर्य से उसका प्रकाश अभिन्न है, उसी प्रकार परंब्रह्म से आत्म–माया भी अभिन्न है।"[177] वल्लभाचार्य जी ने इस के दो रूप बताये हैं – व्यामोहिका ओर करण। जहाँ 'व्यामोहिका' भगवान के चरण की दासी के रूप में रहती है, वहाँ 'करण' माया को स्वीकार करके भगवान जगत् की उत्पत्ति पालन और संहार करते हैं।[178]

<u>वल्लभ और उनके पुष्टिमार्ग</u>

श्री वल्लभाचार्य जी ने अपने दार्शनिक सिद्धांत 'शुद्धाद्वैतवाद' को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए जिस भक्तिमार्ग का प्रचलन किया था, वह 'पुष्टिमार्ग' के नाम से प्रसिद्ध है। पुष्टिमार्गीय भक्ति के विवेचन के लिए उनकी रचनाओं का आधार लिया जा सकता है । यह ध्यातव्य है कि वल्लभाचार्य जी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थीं, जिनमें अणुभाष्य सुबोधिनी, तत्वदीप–निबंध तथा षोड़श ग्रंथ आदि अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । निश्चित है कि वल्लभाचार्य जी ने अपने पूर्वाचार्यों के मर्यादाभक्ति संप्रदाय से भिन्न अपने पुष्टिमार्गीय संपद्राय की स्थापना की थी । जहाँ मर्यादा भक्ति में वेद–शास्त्र विहित साधनों की आवश्यकता और फल की अकांक्षा रहती है, वहाँ पुष्टिभक्ति साधन निरपेक्ष और आकांक्षा रहित होती है । वल्लभाचार्य जी के मतानुसार भगवान के अनुग्रह से ही जीव के हृदय में भक्ति का संचार होकर उसका वास्तविक कल्याण होता है। वल्लभसंप्रदाय के सुप्रसिद्ध व्याख्याता श्री हरिराय जी ने 'पुष्टि मार्ग लक्षणानि' में इसका स्पष्टीकरण दिया है। "जिस मार्ग में लौकिक तथा अलौकिक, सकाम अथवा निष्काम सब साधनों का अभाव ही श्रीकृष्ण के स्वरूप प्राप्ति में साधन है, अथवा जहाँ जो फल है, वही साधन है, उसे 'पुष्टिमार्ग' कहते हैं । जिस मार्ग में भगवद्–विरह अवस्था में भगवान की लीला के अनुभव मात्र से संयोगावस्था का सुख अनुभूत होता है; जिस मार्ग में सब भावों में लौकिक विषय का त्याग है, और उन भावों के सहित देहादि का भगवान को समर्पण है, वह 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है।"[179]

पुष्टिमार्ग में समर्पण अर्थात् ब्रह्म संबंध को बड़ा महत्व दिया जाता है। सच तो यह है कि बिना समर्पण के पुष्टिमार्ग की कल्पना ही नहीं की जा सकती। संसार के मोह–माया को छोड़कर अपने तन, मन, धन कृष्णार्पित करना ही ब्रह्म संबंध है। वल्लभ संप्रदाय में मंत्र–दीक्षा से लेकर कृष्णसेवा करने के अनंतर किसी व्यक्ति को पुष्टिमार्गीय भक्ति करने का अधिकारी माना जाता है। इस पुष्टिमार्गीय भक्ति में आरंभ से अंत तक प्रेम की प्रधानता है। अतः इसे 'प्रेमलक्षणा भक्ति' कहा जाता हैं। आचार्य वल्लभ ने कृष्ण को परब्रह्म माना है, जो उपनिषादि में प्रतिपादित है । किन्तु उनकी प्राप्ति का सरल सुगम साधन शांत–मार्ग की अपेक्षा 'भक्ति–मार्ग' बताया है।"[180] अतंतः वल्लभ संपद्राय की पुष्टिमार्गीय भक्ति का एक मात्र आधार कृष्ण है । जैसे ऊपर बताया गया है कि आचार्य महोदय ने सिर्फ श्रीकृष्ण को ही केन्द्र बिन्दु मानकर ही अपने संपद्राय का वृत्त बनाया है। उन्होंने अपने दार्शनिक और भक्ति सिद्धांत का सार तथा अपने संप्रदाय की रूप रेखा एक ही श्लोक में व्यक्त करते हुए 'तत्वदीप निबंध' में इस प्रकार कहा है–

"एक शास्त्रं देवकी पुत्रगीतं , एको देवो देवकीपुत्र एव।
मंत्रोप्येकस्तस्य नामानि यानि , कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।।"[181]

वल्लभ संप्रदाय के आठ कवि हुए थे, जिन्हें 'अष्टछाप' कहा जाता है । इन आचार्यों की छाप लगी हुई आठ कवियों की वीणा की धुन ने ही भक्ति के संगीत को दूर–दूर तक फैला दिया था, जिससे उस समय के गगन मंडल को भक्ति की शीलत समीर की स्निग्धता की महसूस हो पायी थी। अंततः इन आठ कवियों का योगदान भक्ति आन्दोलन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

7 – सखी संपद्राय

वृन्दावन को केन्द्र मानकर माधुर्य रस की उपासना का जो विकास हुआ उसमें स्वामी हरिदास जी का नाम सबसे पहले आता है।[182] उन्होंने ब्रज के लीलाधाम वृन्दावन में श्रीराधा–कृष्ण की प्रेमाभक्ति और रसोपासना के जिस विशिष्ट 'मत' अथवा 'मार्ग' का प्रचलन किया था, वह उनके नाम पर 'हरिदासी संपद्राय' कहलाता है। इस संप्रदाय की उपासना पद्धति में श्रीकृष्ण के 'नित्य विहार' की प्रधानता है। इस पद्धति के मुताबिक सिर्फ राधा की सखियाँ ही निकुंज में प्रवेश करने की तथा कृष्ण के साथ राधा के नित्य विहार की लीला को

देखने की अधिकारिणी हैं। ठीक उसी प्रकार भक्तजनों को भी सखी भाव से ही उस दिव्य प्रेमलीला रस का अस्वादन कर अपने प्रपंचमय जीवन को मोक्ष दिलाना चाहिए। स्वामी हरिदास जी वृन्दावन में 'सखी सप्रदाय' के प्रथम उपासक माने जाते हैं।[183] उनकी उपासना पद्धति में सखीभाव की प्रधानता स्थापित होने के कारण उनके संप्रदाय को 'सखी संप्रदाय' की मान्यता दी जाती है । यह ध्यातव्य है कि स्वामी हरिदास जी ने सखी संप्रदाय की कोई दार्शनिक पद्धति का निरूपण नहीं किया है । उन्होंने सिर्फ इस संप्रदाय की उपासना पद्धति पर ज्यादा जोर दिया है। नाभादास कृत 'भक्तमाल' से इनकी और इनकी उपासना पद्धति का निम्नोक्त वर्णन प्राप्त होता है–

''आसधीर उद्योतकर , रसिक छाप हरिदास की।
जुगल नाम सौं नेम जपत नित कुंज बिहारी।
अवलोकत रहे कलि सखी सुख को अधिकारी ।
गान कला गन्धर्व स्याम स्यामा को तोषैं।
उत्तम भोग लगाय मोर मरकट तिमि पोषैं
नृपति द्वार ठाढे रहैं दर्शन आसा जसु की।
आसधीर उद्योत कर, रसिक छाप हरिदास की ।।''[184]

उपर्युक्त पद से यह ज्ञात होता है कि स्वामी हरिदास जी को रसिक नाम की छाप से जाना जाता है। इन्होंने आसधीर नाम को प्रकाशित किया था । वे सखी भाव से राधा–कृष्ण की उपासना किया करते थे । वे गान–विद्या में निष्णात थे और उनकी पर्याप्त प्रसिद्धि भी थी । वे एक सखी की तरह सेवा करते हुए स्याम और स्यामा को तुष्ट किया करते थे। भगवान के पास उत्तम भोग लगाकर उसे बन्दर और मोरों को खिलाया करते थे । उनकी महानता से बड़े–बड़े राजा–महाराजा इनके दर्शनार्थ द्वार पर खड़े रहते थे।

मोटे रूप में इस संप्रदाय की यह मान्यता रही है कि ''कृष्ण–राधा के परात्पर प्रेमतत्व 'एक' होते हुए भी 'युगलस्वरूप' धारणकर अपनी दिव्य निकुंज में 'नित्यविहार' रत रहते हैं और उनकी अंगस्वरूपा सखियाँ उस चिरंतन कीडा में योग देती हुई दिव्य–लीला रस का सुखानुभव करती रहती हैं।''[185] उनके गुरु के संबंध में यह तथ्य हमें प्रोफसेर विल्सन के ग्रंथ "Essays on the religions of the Hindus" से उपलब्ध होते हैं कि ''हरिदास जी चैतन्य महाप्रभु के शिष्य थे। ''[186] किन्तु इस संप्रदाय के साहित्य में इसका वर्णन कहीं पर

नहीं हुआ है । इस संप्रदाय की लिखित गुरु परंपरा में चैतन्य महाप्रभु का नाम भी कहीं पर नहीं आया है । इसीलिए दीनदयाल गुप्त ने यह अनुमान लगाया है कि "हरिदास कोई बंगाली भक्त, स्वामी हरिदास जी से भिन्न व्यक्ति रहे होंगे।"[187]

स्वामी हरिदास जी के संप्रदाय के रस को शुद्ध उज्ज्वल रस कहा जाता है, क्योंकि इसमें कुछ भी विकार परिलक्षित नहीं होता है। यह रस कभी भी मंद नहीं होता है। नित्य नवीन बना रहता है। प्रेमाभक्ति ही इस संप्रदाय की साधना है। किन्तु यह सब विरक्त भाव से संयुक्त है। स्वयं हरिदास जी अत्यंत विरक्त थे। विरक्त भाव युक्त अनुरक्ति का रूप स्वामी जी ने इस प्रकार बताया है –

"मन लगाय प्रीति कीजै , कर करवा सौं ब्रजवीथिन दीजैं सौंहनीं।
वृन्दावन सौं बन उपवन सौं गुंजमाल हाथ पोहनीं।
गोगौ सुनत सौं मृगी मृग सुनत सौं , और तन नेकु न जोहनीं ।
श्री हरिदास के स्वामी श्यामा, कुंज बिहारी ज्यों सिर पर दोहनीं।।"[188]

आपने तथा आपके संप्रदाय के आचार्यों ने ब्रज भाषा में ही रचना की है; जो भक्ति भाव के द्योतक होने के साथ–साथ काव्य–गुण भी रखती हैं। हरिदास जी के दो छोटे –छोटे ग्रंथ उपलब्ध होते हैं – ''साधारण सिद्धांत' और 'रास के पद' । साधारण सिद्धान्त ग्रंथ में सिर्फ इस संप्रदाय की भक्ति पद्धति का विवेचन हुआ है न कि दार्शनिक पद्धति का। "इस संपद्राय के प्रसिद्ध कवि श्री बिहारिनी दास जी, श्री भगवत रसिक तथा श्री ललित किशोरी जी हुए हैं।"[189]

8 – राधावल्लभी संप्रदाय

रसिकभक्त शिरोमणि गोस्वामी श्रीहितहरिवंशचन्द्र महाप्रभुजी का जन्म मथुरा के निकट बादग्राम में संवत् 1559 में हुआ था। ब्रज की समृद्ध धार्मिक परंपरा में इस भक्तिमार्गीय विशिष्ट मत का प्रचलन सुविख्यात रसिकाचार्य श्री हितहरिवंश जी ने किया था। वृन्दावन के नित्य निकुंज में अहर्निश क्रीड़ारत राधा–कृष्ण के युगल स्वरूप को उन्होंने 'राधा–वल्लभ' नाम से अभिहित किया। इसके आधार पर धार्मिक जगत् में इनके संप्रदाय को 'राधा–वल्लभ' संप्रदाय कहा जाता है। इस संप्रदाय में श्रीराधा को अत्यन्त प्रधानता दी गयी है। इस संपद्राय के उपास्य तत्व राधा–कृष्ण के निकुंज विहार है। इस निकुंज विहार में यद्यपि

राधा–कृष्ण के समान योग माना गया है, तथापि उनके प्रेम रस की निष्पत्ति के लिए रसेश्वरी श्रीराधा जी को प्रमुखता दी गई है। मीतल जी ने यह बताया है कि – ''श्री निम्बार्काचार्य जी ने भक्ति क्षेत्र में जिस 'राधा–कृष्णोपासना' को प्रचलित किया था, उसी का यह अत्यंत विकसित और माधुर्य मंडित स्वरूप है।''[190] यह निश्चित है कि हितहरिवंश जी के पूर्व आचार्यों श्री वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु और निम्बाकाचार्य जी के संप्रदायों का, जिनमें श्री राधा जी का महत्व प्रतिपादित किया गया है, प्रभाव इन पर पड़ा है।

हितहरिवंश जी का संप्रदाय किसी विशिष्ट दर्शन मार्ग का संप्रदाय नहीं है। भक्ति के मूल तत्व तथा उसके आलम्बन आश्रयादि उपकरणों का सूक्ष्म विवेचन ही इस संप्रदाय का दर्शन कहा जाता है। उन्होंने न 'प्रस्थानत्रयी' पर भाष्यादि की रचना की है, न रस दर्शन के अतिरिक्त किसी शुष्क दार्शनिक प्रपंच से भक्ति को बोझिल किया है। उन्होंने कर्म और ज्ञान के साधनों का खंड़न कर प्रेम–भक्तिमार्ग का प्रचार किया तथा राधा–कृष्ण दोनों की युगल उपासना का उपदेश दिया। ''इन्होंने समाज को यह बताया कि राधा–कृष्ण की प्रेम और आनन्दलीला के ध्यान और मनन में तथा युगल की पूजा ही परमान्नद प्राप्ति का साधन है।''[191] हमने जो रस दर्शन की बात ऊपर की है, इस संप्रदाय में रस दर्शन के अतंर्गत चार चीजें देखी जा सकती हैं। ये हैं – प्रेम, राधा, कृष्ण और सहचरी" या सखी। इस संप्रदाय में प्रेम के संबंध में यह कहा गया है कि राधाकृष्ण के विहार से ज़ो आनन्द होता है, वही रस है यह प्रेम की आस्वाद्य अवस्था है। इस संप्रदाय में भक्ति का परम लक्ष्य नित्य विहारदर्शन ही हैं। निकुंज विहार में राधा की प्रमुखता होने के कारण राधा–प्रेम ही इस संप्रदाय का मूलाधार है। इस संप्रदाय के प्रेम में यह भी एक विशेषता परिलक्षित होती है कि ''प्रेमी ओर प्रेमास्पद अपनी संतुष्टि के लिए प्रेम नहीं करते हैं। एक के लिए दूसरे की संतुष्टि अभीष्ट है।''[192] श्री राधारानी के अनन्य उपासक हित जी की कविता माधुर्यपूर्ण प्रेम का ज्वलंत प्रतीक है। मिलन कुंज में प्रवेश करने से पूर्व श्रीराधिका जी के मधुरदर्शन की एक प्यारी झलक निम्न प्रकार है:

'' आजु नीकी बनी राधिका नागरी।
ब्रज जुवति जूथ में रूप–अरुप चतुराई।।
सील सिंगार गुन सबनि तें आगरी।
कमल दच्छिन भुजा बामभुज अंसु सखि,
गावती सरल मिली मधुर सुरराग री ।

सकल विद्याविदित , रहसि हरिबंस हित,

मिलन नव कुंज बरस्याम बड भाग री ।''[193]

यह सिद्ध है कि प्रेम के संदर्भ में यह संप्रदाय नित्य मिलन के सिद्धांत पर आस्था रखता है। फिर भी इसमें मान और विरह को, सांसारिक दृष्टि से प्रेम तत्व को, हृदयगंम करने का माध्यम कहा गया है। इस संदर्भ में हितहरिवंश रचित 'स्फुट वाणी' के पद द्रष्टव्य हैं –

''चकई प्राण जुघट रहै पिय बिछुरन्त निकज्ज।

सर अन्तर, अरु काल निशि, तरफ–तेज घन कज्ज।।

तरफ तेज घन कज्ज लज्ज तुहि बदन न आवै।

जल बिहुन करि नैन भौर किय भाय बितावै।।

हित हरिवंश विचारि याद अस कौन जु चकई।

सारस यह संदेश: प्राण घट रहै जु चकई।।''[194]

राधा को इस संप्रदाय में परम तत्व माना गया है। इसीलिए नायिका भेद के संदर्भ में स्वकीया तथा परकीया का प्रश्न इस संप्रदाय में नहीं आता है। इस संप्रदाय में राधा–कृष्ण भक्ति की स्थापना अन्य संप्रदायों की तरह ब्रह्म, जीव, प्रकृति आदि के विवेचन के संदर्भ में नहीं की गई है, बल्कि स्वंतत्र रूप में की गयी है । यह ध्यान रहे कि अन्य वैष्णव संपद्रायों में राधा को कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति के रूप में व्यवहार किया जाता है। किन्तु इस प्रकार शक्ति और शक्तिमान का भेद इस संप्रदाय में ग्राह्य नहीं है। यहाँ तो ''राधा स्वयं आनन्द स्वरूपा हैं। निरतिशय आनन्द का नाम ही राधा है। राधा नित्यभाव है । उनका विहार भी नित्य है, रास भी नित्य है।''[195] वह कृष्ण की उपासिका, आराधिका नहीं है, वरन् श्रीकृष्ण की उपास्या तथा आराध्या है । संक्षेप में इस संप्रदाय में राधा के बारे में यह वर्णन प्राप्त होता है कि आराध्या राधा परात्पर तत्व श्रीकृष्ण की भी आराध्या है तथा अन्य आचार्यो द्वारा वर्णित राधा से भिन्न एवं स्वतंत्र हैं। वे एक साधारण गोपी नहीं वरन् रस की अधिष्ठात्री एवं प्रेममूर्ति हैं ।

श्रीकृष्ण को इस संप्रदाय में एक नित्यविहारी पुरुष के रूप में बताया गया है। उनकी परा प्रकृति श्रीराधा है, जो चित्–अचित–विशिष्ट आल्हादिनी निज शक्ति रूपा है । सारे चराचर जगत् को इन्हीं रसिक युगल किशोर का प्रतिनिधित्व माना गया है । यह ध्यातव्य है कि ''अन्य वैष्णव संपद्रायों में कृष्ण को गोपियों का पति न बताकर उनका उपपति बताया गया है

किन्तु राधावल्लभ संप्रदाय में श्रीकृष्ण को उपपति के रूप में ग्रहण नहीं किया गया है ।"[196] आर्यावतार के रूप में श्रीकृष्ण को नित्य–विहारी राधा–वल्लभ के रूप में यहाँ ग्रहण किया जाता है । इस संपद्राय में उस श्रीकृष्ण को ही प्रेम के एकमात्र अधिकारी के रूप में बताया गया है । ऐसे कि इनके बिना और कोई दूसरा प्रेम के रहस्य को जानता भी नहीं है। इस संदर्भ में ध्रूवदास जी कहते हैं–

एक प्रेमी एक रस, श्री राधावल्लभ आहि।
भूलि कहै जौ और ठॉ झूठी जानों ताहि।

अतंतः कृष्ण उपास्य तो हैं ही किन्तु राधा के माध्यम से। प्रधान पद राधा को ही प्राप्त है। सखी शब्द इस सप्रदाय में जीव के निज रूप की परमार्थिक स्थिति का नाम है। इस संप्रदाय में यह मान्यता रही है कि मनुष्य जन्म से केवल सामान्य प्राणी ही रहता है। किन्तु जब उस जीव पर कृष्णवल्लभा राधा की कृपा हो जाती है, तब वह सहचरी रूप को प्राप्त कर भौतिक सुख–दुःख की अनुभूतियों से ऊपर उठकर आनंद को प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है। इसमें सहचरी या सखी लिंगभेदातीत माना जाता है। श्रीहित हरिवंशजी ने सहचरी की परिभाषा निम्न प्रकार दी है "राधा की केलि–कलाओं की साक्षी, उज्ज्वल, अद्भुत रसपूर्ण वृन्दाविपिन में वास करने की कामना करनेवाली, नेत्र–पिंडों में स्थित तेजोमय निकुंज की भावना करने वाली और उसकी भावना के अनुरूप उपयोगी वपु की कामना करनेवाली ही सहचरी है ।"[197] यह सिद्ध है कि अन्य संप्रदायों में सहचरी या सखी को विभिन्न कोटियों में बॉटा गया है, किन्तु राधावल्लभ संप्रदाय में सहचरी को विभिन्न कोटियों में परिणत नहीं किया गया है।

वैष्णव संप्रदायों के उपर्युक्त विवेचन से हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि इनमें भक्ति की भावना उत्तरोत्तर बढ़ती गई साथ–साथ भक्ति के रागात्मक पक्ष को विशेषतः बल मिलता गया । धीरे–धीरे इसके शास्त्रीय पक्ष का ह्रास होता गया । किन्तु भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि के लिए केवल इन वैष्णव संप्रदायों का ज्ञान अपर्याप्त ही न समझना चाहिए। उपर्युक्त वैष्णव संप्रदायों के अलावा महाप्रभु चैतन्य देव का भक्ति आन्दोलन अनूठा है। इसपर विस्तार से दृष्टिपात करना चाहिए।

1 . 6 चैतन्य संप्रदाय का भक्ति आन्दोलन

जिस समय भारतीय भू भाग का विस्तृत अंश विदेशी आक्रान्ताओं के निरन्तर आक्रमणों से ग्रस्त हो रहा था, धर्मोन्मत्तता दिनों दिन बढ़ती जा रही थी, निर्दोष मानवों की हत्याएँ सामान्य बात हो गयी थीं, वर्णाश्रम व्यवस्था छिन–भिन्न होती जा रही थी, प्रतिष्ठित जन अपमानित हो रहे थे, ठीक उसी समय प्रेमावतार रूप में भागीरथी के सुरम्य तटस्थ नवद्वीप में श्रीचैतन्य देव का आविर्भाव हुआ। उनका जीवन बड़ा ही अद्भुद था, जिसके बारे में यथास्थान पर विस्तार से बताया जाएगा । किन्तु अब इस ओर ध्यान आकृष्ट करना है कि उस समय हिन्दू जाति, जातिगत अनेक भेदों में विभाजित थी । उसके एकत्रीकरण के लिए चैतन्यदेव ने हरिनाम संकीर्तन मंत्र स्वरूप अपना लिया था । यह सिद्ध है कि उस समय के भक्ति–आन्दोलन में महाप्रभु का संकीर्तन में व्यवहृत मृदंग, करताल, झांझ आदि ही एक–एक तलवार थे । अंततः इनसे विजय हाथ लगी थी । उस समय महाप्रभु ने घर–घर जाकर बिना किसी वर्गभेद या जातिभेद से हरिनाम का गूंज भर दिया था । संकीर्तन महाप्रभु की ऐसी दवा थी, जिसके माध्यम से महाप्रभु ने समस्त जनों को कलुष मुक्त कर दिया था । जिनके मुख से कभी श्रीकृष्ण नाम नहीं निकलता था उनको भी उन्होंने कृष्ण–नाम का सुधारस पिलाकर उन्मत्त कर दिया था । ऐसे कि नाम के प्रभाव से पर्वतों में स्पन्दन, लताओं में मधु–निर्झरण और हिंसक पशु पक्षियों में जातिगत वैर भाव समाप्त हो गया था तथा वे सब हरि–हरि कहकर नाचने लगे थे ।

जहाँ तक चैतन्य महाप्रभु के साथ भक्ति आन्दोलन का संबंध है, इस संदर्भ में यह पहले बताया जा चुका है कि महाप्रभु ने अपने आचार्यत्व की प्रतिष्ठा नहीं की है । क्योंकि उन्होंने न अन्य आचार्यों की तरह भाष्य की रचना की है, न अपने मत के लिए किसी दार्शनिक आधार का निरूपण कर उसका कहीं स्पष्टीकरण किया है । यह कार्य बाद में कतिपय योग्य अनुयायियों ने किया था। वही 'गौड़ीय संप्रदाय' के सिद्धातों का आधार समझा जाता है। इस संदर्भ में एस. के मैत्रा ने चैतन्य महाप्रभु की तुलना युनान के दार्शनिक सोक्रेटीज से करते हुए कहीं पर यह कहा था कि जिस प्रकार सोक्रेटीज और उनके मत का ज्ञान उनकी अपनी लेखनी से नहीं, बल्कि उनके शिष्य प्लेटो तथा अन्य शिष्यों की लेखनी से होता है, उसी प्रकार चैतन्यमत का ज्ञान हमें उनके योग्य अनुययियों के द्वारा लिखित ग्रन्थों से होता है।

इस संप्रदाय में 'ब्रह्मसूत्र' पर की गई भाष्य–रचना आचार्य बलदेव विद्याभूषण की देन है, जिसे 'गोविंद भाष्य' कहा जाता है। जो भी हो, अन्य संप्रदायों के दार्शनिक मतों को जिस प्रकार शुद्धाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, अद्वैत एवं विशिष्टाद्वैत आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है, उसी प्रकार चैतन्य संप्रदाय के दार्शनिक मत को 'अचिंत्यभेदाभेद' कहा जाता है । महाप्रभु के उपदेशों में अभिव्यक्त प्रमुख तत्व–अचिंत्य व भेदाभेद के आधार पर सर्वप्रथम यह नामकरण जीव गोस्वामी ने 'श्रीमद्भागवत' पर अपने विवेचनात्मक ग्रंथ 'षट् संदर्भ' और 'सर्वसंवादिनी' में निम्न प्रकार किया है –

"शक्ति–शक्तिमतोभेदावेवांगी कृतौ तौ च अचिन्तौ इति।"[198]

अर्थात् भगवान् में स्वरूप आदि शक्तियों के अभिन्न होने के कारण विचार करना शक्य न होने से भेद है और भिन्न होने से विचार करना शक्य न होने से अभेद प्रतीत होता है। इसलिए इन दोनों में भेदाभेद स्वीकार किया है। वे दोनों अचिंत्य हैं । रूप गोस्वामी महाशय ने भी अपनी कृति 'लघुभागवतामृत' में यह लिखा है कि –

"एकत्वंच पृथकत्वंच तथाशत्वमुतांशिता।
तस्मिन्नकेत्र नायुक्तम् अचिन्त्यानन्तशक्तितः।।"[199]

अर्थात पुरूषोत्तम भगवान को विभुचित् और जीव को अणु चित् मानने के कारण दोनों में चेतना है; अतः अभिन्नता है । भगवान विभु और जीव अणु है; अतः भेद है । श्री कृष्णदास कविराज ने भी इसका स्पष्टीकरण अपनी कृति 'चैतन्य चरितामृत' में दिया है ।[200] अचिंत्यभेदाभेद का शाब्दिक अर्थ ग्रहण करते हुए श्री ए.के मजूमदार ने यह कहा है "In comprehensible dualistic monism, that is, an inscrutable relation of difference in non-difference ."[201] अर्थात् अभिन्नता में भिन्नता या दुर्बोध्य द्वैतवाद–अद्वैवाद का संबंध तर्क चिंतन से अगम्य होता। अतंतः डॉ विजेन्द्र स्नातक जी ने यह स्वीकारा है कि " अचिंत्य भेदाभेद को दार्शनिक रूप देते समय रूपगोस्वामी या जीवगोस्वामी के समक्ष माध्व संपद्राय की दार्शनिक मान्यता नहीं थी। द्वैतवाद को दृष्टि में रखकर इस सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया गया।"[202] गौड़ीय संप्रदाय की दार्शनिक विचार धारा, उसकी उपासना पद्धत्ति आदि की चर्चा विस्तार से परवर्ती अध्याय में की जाएगी।

1 . 8 निष्कर्ष

मनुष्य का मन वह शीशा है जिस पर उसके पूरे व्यक्तित्व झलकता है । जैसे शीशा धुंधला होने से मनुष्य अपना मुख नहीं देख पाता है; उसी तरह मनुष्य का मन रूपी शीशा मैल होने से उसके व्यक्तित्व का आकलन नहीं किया जा सकता । ध्यान रहे कि उस मन–रूपी शीशे के धुंधलापन को साफ करती है भक्ति । तदुपरांत मनुष्य स्पष्ट रूप में अपनी आत्मा की छवि को देखने के साथ–साथ परमात्मा की छवि को भी देखने में सक्षम हो पाता है । इस विषय के सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि भक्ति के लिए ज्ञान, कर्म, की भी आवश्यकता होती है जिसके बारे में बहुत से वर्णन चतुः वेदों में पाये जाते हैं ।

भक्ति में जहाँ मनुष्य आत्मिक आनंद की महसूस करता है वहाँ ज्ञान से उसका विकास भी कर पाता है । इस संदर्भ में रामकृष्ण परमहंस कहते हैं " माँ का आँचल भक्ति है और ज्ञान पिता की उँगली है ।"[203] ध्यान रखें कि समय आनेपर पिता की उँगली बच्चे से छूट सकती है किन्तु माँ का आँचल नहीं । माँ के आँचल में उसे कोमलता, निर्भयता मिल पाती है । जब उसे माँ का आँचल छूटने का भय नहीं रहता, तब उसे दुनिया की मेले से उसे छूटने का भय भी नहीं रहता है । अतः भक्ति मनुष्य को निर्भय बना देती है । इसी भक्ति की प्रप्ति के लिए आचार्यो द्वारा भिन्न–भिन्न सांप्रदायिक साधन बताये गये हैं । अंततः यह देखा गया है कि वैदिक काल से ही ज्ञान के साथ भक्ति का बोलबाला रहा है । इसीलिए ऊपर ज्ञान और भक्ति की चर्चा की गई है । दूसरी बात यह देखी गई हे कि आचार्य शंकर से स्थापित अद्वैतवाद के विरोध में उपस्थित समस्त वैष्णव संप्रदायों का दार्शनिक सिद्धांत न्याय संगत परिलखित होता है । अंततः सभी ने भक्ति को मन की उदात्त स्थिति मानते हुए उसकी प्राप्ति के लिए भागवत में वर्णित साधन विधानों को स्वीकार किया है ।

संदर्भ

1 — भक्ति ओर प्रपत्ति का स्वरूपगत भेद पृ —3

2 — नारद भक्तिसूत्र पृ —4

3 — अथातो भक्तिजिज्ञासा पृ —76

4 — अथातो भक्तिजिज्ञासा पृ —83

5 — निरूक्त मूल निघंटु सहितम्, सप्तमोध्याय पृ —343—344

6 — निरूक्त मूल निघंटु सहितम्, सप्तमोध्याय पृ —344

7 — ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत पृ —49

8 — अमर कोष 2/9/48

9 — भक्ति सिद्धांत से उद्धृत पृ —6

10 — गीता — 12/2 श्लोक सं 6,8,9,10

11 — गीता — 9/34

12 — महाभारत, शांति पर्व — 358/9

13 — शांड़िल्य भक्तिसूत्र संख्या — 2

14 — नारद भक्तिसूत्र संख्या — 2

15 — नारद भक्तिसूत्र संख्या — 16

16 — नारद भक्तिसूत्र संख्या — 17

17 — नारद भक्तिसूत्र संख्या — 18

18 — नारद भक्तिसूत्र संख्या — 19

19 — नारद भक्तिसूत्र संख्या — 54

20 — भक्ति मीमांसा, प्रथम अध्याय, प्रथम पाद — 2

21 — भक्ति रसायन — 1/3

22 — भक्तिरसामृत सिंधु — 1/11

23 — भक्तिरसामृत सिंधु, पूर्वभाग, पांचवीं लहरी

24 — भागवत महात्म्य — 12/13 — 19,23

25 – भागवत महात्म्य – 2/76

26 – विवेक चुड़ामणि पृ –31

27 – भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत पृ –18

28 – रामचरित मानस – 2/93

29 – चिंतामणि पृ –26

30 – श्रीमद्भागवत – 2/5/23

31 – भागवत – 5–18–21/1–2–6/1–2–18/5–18–12/11–20–35

32 – शांड़िल्य भक्तिसूत्र संख्या – 10

33 – शांड़िल्य भक्तिसूत्र संख्या – 18

34 – गीता – 7/16

35 –गौणं त्रिविध्यमितरेणस्तुत्यर्थताम् साहचर्यम्,शांड़िल्य भक्तिसूत्र संख्या –72

36 – नारद भक्तिसूत्र संख्या – 56

37 – वेदार्थ संग्रह पृ –149

38 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ –538

39 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय से उद्धृत पृ –521

40 – सूरसागर, तृतीय स्कंध पृ –42–44

41 – सूरसागर, 3/394

42 – सूरसागर, 3/394

43 – भक्तिरसामृत सिंधु – 1/35

44 – भक्तिरसामृत सिंधु – 2/1

45 – भक्तिरसामृत सिंधु – 2/5

46 – भक्तिरसामृत सिंधु – 2/264

47 – भक्तिरसामृत सिंधु – 4/3,4

48 – भक्तिरसामृत सिंधु – 4/11

49 – रामचरित मानस – 3/16

50 – हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य पृ –117

51 – रामचरित मानस,बालकांड़ – 2/5

52 — कल्याण, संकीर्तनांक पृ –18

53 — विस्तार हेतु द्रष्टव्य, कल्याण, संकीर्तनांक,सं –1, वर्ष . 60 पृ –18

54 — विस्तार हेतु द्रष्टव्य, कल्याण, संकीर्तनांक,सं –1, वर्ष . 60 पृ –18

55 — Thus spake sri Ramakrishna पृ –50

56 — भक्तिरसामृत सिंधु, प्रथम लहरी पृ –325

57 — भक्तिरसामृत सिंधु, चतुर्थ प्रेमभक्ति लहरी पृ –109

58 — Culture haritage of India पृ –48

59 — मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का सामाजिक विवेवन पृ –2

60 — संस्कृति का चार अध्याय पृ –28

61 – Vedic age पुस्तक के "pro historic culture" नामक लेख से

62 – " मैं द्रविड में उत्पन्न हुई, कर्णाटक में बड़ी हुई, महाराष्ट्र में कुछ काल तक रही और फिर गुजरात में जाकर वृद्धा हुई, (पद्म पुराण, उत्तर खंड, 50/51)

63 — भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास पृ –216

64 — शुक्ल यजुर्वेद – 31/18

65 — ऋग्वेद – 2,12,5

66 — अथर्व वेद

67 — यजुर्वेद – 25,12

68 — पुराण विमर्श पृ –430

69 — अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्

आनुकूल्येन कृषानूशीलनं भक्ति रूत्तमा

(भक्तिरसामृतसिंधु, पूर्व विभाग,पूर्व लहरी – श्लोक संख्या –11)

70 — भक्ति का विकास पृ –191

71 — Journal of sri Venketeswara University, Tirupati, JULY-DEC. 1950

72 — श्वेताश्वेत्तर उपनिषद् – 6/23

73 — तैतिरीय उपनिषद् – 7/12

74 — छान्दोग्य उपनिषद् – 7/25/2

75 — वृहदारण्यक उपनिषद् – 3/5

76 — श्वेताश्वेत्तर उपनिषद् — 6/18

77 — मुण्ड़ोकोपनिषद् — 1/2/11

78 — कठोपनिषद् — 1/2/9

79 — कठोपनिषद् — 1/2/8

80 — हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव पृ —17

81 — भक्ति का विकास पृ —268

82 — श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनं ।
अर्चनं वदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनं ।।(भागवत — 7/5/23)

83 — कल्याण, भागवत्प्रम अंक पृ —437

84 — भक्ति और शरणागति पृ —86

85 — गीता —12/3/4

86 — गीता —6/30—31

87 — गीता —2/71

88 — गीता —9/29

89 — गीता —15/19

90 — गीता —8/8

91 — गीता —9/26

92 — गीता —4/8

93 — भक्ति का विकास पृ —224

94 — भक्ति का विकास पृ —225

95 — भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास पृ —219

96 — भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास पृ —223

97 — History of Tirupati पृ —73-74

98 — मध्यकालीन भक्तिआन्दोलन का सामाजिक विवेचन पृ —9

99 — मध्यकालीन भक्तिआन्दोलन का सामाजिक विवेचन पृ —47

100 — भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास पृ —223

101 — भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास पृ —225

102 — भागवत संप्रदाय पृ —186

103 — भक्ति काव्य और लोक जीवन पृ —5

104 — भारतीय चिंतन परंपरा पृ —76

105 — भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास पृ —5

106 — मध्ययुगीन याहित्य का लोक तात्विक अध्ययन पृ —95

107 — भारतीय चिंतन परंपरा पृ —335

108 — भक्ति काव्य और लोक जीवन पृ —13

109 —Morden Hinduism and its debt to the Nestorions [Jornals of royal asiatic society] में संगृहित

110 — हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास पृ —59

111 — मध्ययुगीन याहित्य का लोक तात्विक अध्ययन पृ —95

112 — मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति से उद्धृत पृ —179

113 — वैष्णव धर्म पृ —42 — 48

114 — सूर और उनका साहित्य पृ —83

115 — गीता रहस्य पृ —12—13

116 — मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पृ —29

117 — भागवत संप्रदाय पृ —212

118 — ब्रज के धर्मसंप्रदायों का इतिहास पृ —144

119 — भागवत संप्रदाय पृ —212

120 — भागवत संप्रदाय पृ —214

121 — भागवत संप्रदाय पृ —214

122 — मध्यकालीन भक्तिआन्दोलन का सामाजिक विवेचन पृ —56—57

123 — हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ —107

124 — ब्रज के धर्मसंप्रदायों का इतिहास पृ —146

125 — ब्रज के धर्मसंप्रदायों का इतिहास पृ —148

126 — संस्कृति के चार अध्याय पृ —315

127 — ब्रज के धर्मसंप्रदायों का इतिहास पृ —148

128 – भागवत संप्रदाय पृ –207
129 – भागवत संप्रदाय पृ –210
130 – भागवत संप्रदाय पृ –210
131 – श्रीमद् भागवत गीता, 10/19/770
132 – सर्वदर्शन संग्रह पृ –43
133 – ब्रज के धर्मसंप्रदायों का इतिहास पृ –149
134 – ब्रज के धर्मसंप्रदायों का इतिहास पृ –151
135 – सूर और उनका साहित्य पृ –93
136 – वैष्णव धर्म पृ –90
137 – भक्तमाल छप्पय सं. 48
138 – ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास पृ –152
139 – Vaisanavisim, Saivaism and other minor religion system पृ – 110
140 – भागवत संप्रदाय पृ –368
141 – भागवत संप्रदाय पृ –368
142 – भागवत संप्रदाय पृ –313
143 – भागवत संप्रदाय पृ –334
144 – ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास पृ –153
145 – विस्तार हेतु द्रष्टव्य, भागवत संप्रदाय पृ –314
146 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ –43
147 – कल्याण, भक्त चरितांक पृ –331
148 – भागवत संप्रदाय पृ –334–339
149 – विस्तार हेतु द्रष्टव्य, अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, प्रथम भाग पृ –43
150 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, प्रथम भाग पृ –44
151 – हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य पृ –97
152 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ –47
153 – कल्याण, भगवत्प्रम अंक,1 पृ –332
154 – कल्याण, भक्त चरितांक, भाग– 1 पृ –332

155	—	भागवत संप्रदाय	पृ —220
156	—	भागवत संप्रदाय	पृ —220
157	—	सूर और उनका साहित्य	पृ —89
158	—	ब्रज के धर्मसंप्रदायों का इतिहास	पृ —156
159	—	ब्रज के धर्मसंप्रदायों का इतिहास	पृ —156
160	—	भागवत संप्रदाय	पृ —223—224
161	—	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	पृ —49
162	—	भागवत संप्रदाय	पृ —225
163	—	भागवत संप्रदाय	पृ —225—226
164	—	भागवत संप्रदाय	पृ —226
165	—	भागवत संप्रदाय	पृ —227
166	—	हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य	पृ —105
167	—	कल्याण, भक्त चरितांक, भाग— 1	पृ —335
168	—	सूर और उनका साहित्य	पृ —94
169	—	भागवत, द्वितीय स्कंध,दशम अध्याय,श्लोक —4	
170	—	ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास	पृ —213
171	—	ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास	पृ —213
172	—	भागवत संप्रदाय	पृ —377
173	—	भारतीय दर्शन	पृ —516
174	—	भागवत संप्रदाय से उद्धृत	पृ —378
175	—	अणुभाष्य, अध्याय तीन	
176	—	ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास	पृ —231
177	—	ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास	पृ —233
178	—	सुबोधिनी — 10 / 54 / 15	
179	—	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	पृ —395
180	—	ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास	पृ —238
181	—	तत्वदीप निबंध,श्लोक सं.4	

182 – स्वामी हरिदास जी का संप्रदाय और उनका वाणी साहित्य पृ –301

183 – स्वामी हरिदास जी का संप्रदाय और उनका वाणी साहित्य पृ –301

184 – भक्तमाल,भक्ति सुधास्वाद पृ –607

185 – ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास पृ –433

186 – Essay's on the religion of the Hindus पृ –159

187 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ –69

188 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ –69

189 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ –69

190 – ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास पृ –363

191 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ –64–65

192 – हित चौरासी, प्रथम पद

193 – भागवत संप्रदाय से उद्धृत पृ –427

194 – श्री हितहरिवंश रचित स्फुट वाणी, पद सं. 5

195 – राधावल्लभ संप्रदायः सिद्धान्त और साहित्य पृ –210

196 – राधावल्लभ संप्रदायः सिद्धान्त और साहित्य पृ –217

197 – राधासुधनिधि पृ –261

198 – सर्वसंवादिनी पृ –33

199 – हिन्दी भक्तिरसामृत सिंधु की भूमिका से उद्धृत पृ –12

200 – चैतन्य चरितामृत,मध्यलीला, वंशीपरिच्छेद

201 – Chaitanya : His life and Doctorin पृ –270

202 – हिन्दी भक्तिरसामृत सिंधु की भूमिका से उद्धृत पृ –12

203 – जीव संचेतना, अप्रेल 2003 अंक पृ –36

द्वितीय अध्याय

गौड़ीय संप्रदाय : उद्‌भव और विकास

2 . 0 प्रस्तावना

2 . 1 साहित्येतिहास तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में गौड़ीय संप्रदाय

1 . शिवसिंह सरोज 2 . हिन्दुई साहित्य का इतिहास 3 . ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर 4 . मिश्रबंधु विनोद 5 . ब्रजमाधुरी सार 6 . हिन्दी साहित्य का इतिहास 7 . हिन्दी भाषा और साहित्य 8 . हिन्दी साहित्य सुबोध इतिहास

9 . हिन्दी साहित्य की भूमिका 10 . उत्तरी भारत की संत परंपरा

11 . हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

2 . 2 गौड़ीय संप्रदाय का उद्‌भव

2 . 3 गौड़ीय संप्रदाय का विकास

2 . 4 महाप्रभु चैतन्य देव का जीवन तथा व्यक्तित्व

4.1 – महाप्रभु चैतन्य का जीवनारंभ 4.2 – महाप्रभु चैतन्य की बाल्यावस्था

4.3 – महाप्रभु चैतन्य का अध्ययन तथा अध्यापन 4.4 – विवाह 4.5 – भक्ति के प्रति आकर्षण 4.6 – महाप्रभु चैतन्य का सन्यास 4.7 – यात्रा और धर्म प्रचार

4.8 – अंतिम अवस्था और देहावसान

2 . 5 महाप्रभु चैतन्य : एक अवतार

5.1 – अवतार का कारण 5.2 – अवतार का कार्य

5.3 – चैतन्य अवतार का कारण

2 . 6 महाप्रभु चैतन्य देव का शिक्षाष्टक

2 . 7 निष्कर्ष

2 . 0 प्रस्तावना

बंगाल में चैतन्य महाप्रभु के भक्ति आन्दोलन ने एक संप्रदाय का रूप धारण किया, जिसके मूल प्रेरक श्रीचैतन्य महाप्रभु के नाम पर इसे "चैतन्य संप्रदाय" कहा जाता है। महाप्रभु चैतन्यदेव का जन्म गौड़ प्रदेश (बंगाल) में होने के कारण उनके संप्रदाय का नाम "गौड़ीय संप्रदाय" भी रखा गया है । इसके उद्‌भव के क्रम में यह देखा गया है कि यह संप्रदाय माध्व सप्रदाय की परंपरा सें विकसित होने के कारण इसे "माध्व गौड़ीय संप्रदाय" भी कहते हैं।[1]

2 . 1 साहित्येतिहास तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों में गौड़ीय संप्रदाय

कृष्णभक्ति धारा से संबंधित जितने संप्रदाय हैं, उनके बारे में हिन्दी साहित्येतिहास तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों में विभिन्न तथ्य प्राप्त होते हैं। गौड़ीय संप्रदाय (चैतन्य संप्रदाय) के संबंध में जो विचार उपलब्ध हैं उन्हें संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

1 . शिवसिंह सरोज

हिन्दी साहित्येतिहास के क्षेत्र में प्रथम प्रयास ठाकुर शिवसिंह द्वारा किया गया था। उन्होंने शिवसिंह सरोज नामक ग्रंथ की रचना की थी । इसे कविवृत्त संग्रह माना गया है। इसके सप्तम संस्करण में सरोजकार ने केशव काश्मीरी का ब्रज में महाप्रभु से शास्त्रार्थ में पराजित होना बतलाया है।[2] केशव काश्मीरी को महाप्रभु ने शास्त्रार्थ में अवश्य परास्त किया था। इसका उल्लेख अनेक प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है। सरोज में गदाधर भट्ट को गदाधर मिश्र मान लिया गया है और उनका काल सं. 1580 विं. माना गया है। सरोज में प्रियादास, वल्लभ रसिक, भगवान हित रामराय, मनोहर कवि, नील सखी, नाथ भट्ट, माधव दास, हरिदेव आदि चैतन्य संप्रदायी कवियों का नामोल्लेख है। किन्तु इस पुस्तक में चैतन्य संप्रदाय के संबंध में कहीं पृथक् उल्लेख नहीं है।

2 . हिन्दुई साहित्य का इतिहास

विदेशी विद्वान गार्सा द तासी द्वारा लिखित हिन्दी का प्रथम इतिहास है। इसमें सिर्फ हिन्दी के प्रधान कवियों की जीवनियाँ तथा उनकी रचनाओं के उदाहरण मात्र हैं। अलग से इसमें किसी संप्रदाय का विवेचन नहीं हुआ है, फिर भी इसमें चैतन्य संप्रदाय से संबंधित कुछ

कवियों का नामोल्लेख है। इसमें चैतन्य संप्रदाय के संबंध में कुछ भ्रान्तियाँ अवश्य प्राप्त होती है, जो निम्न प्रकार की हैं –

1. इसमें तानसेन को चैतन्य देव का शिष्य बतलाया गया है। इसकी पुष्टि बाद में कहीं पर नहीं हुई है।

2. प्रियादास को 'प्रिय–दास' लिखा गया है तथा उन्हें बंगाल का निवासी बताया गया है।

3. रूप और सनातन को मुसलमान बताया गया है तथा हिन्दी में उनकी रचना उपलब्ध होने की बात कही गयी है। यह ध्यान रहे कि 'दवीरखास' और 'साकर मल्लिक' बादशाह द्वारा दी गयी उपाधि थी। सच तो यह है कि वे कर्णाटक के ब्राह्मण थे।

3 . ए हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर

एफ.ई. के द्वारा लिखित हिन्दी का इतिहास ग्रंथ है। इसमें चैतन्य संप्रदाय की कोई चर्चा नहीं मिलती है। सिर्फ़ गदाधर भट्ट का नामोल्लेख मिलता है, जिसने कृष्णभक्ति काव्य का सुन्दर वर्णन किया है। उनके बारे में यह लिखा गया है कि – "Gadadhar Bhatta was a krishnaite belonging to the sect of chaitanya, and worte verses of considerable merit in Krishna's honour ." [3]

4 . मिश्रबंधु विनोद

मिश्रबन्धुओं के द्वारा लिखित यह हिन्दी का प्रमुख इतिहास ग्रंथ हैं। इसमें चैतन्य संप्रदाय, इसके कवि तथा उनकी रचनाओं का स्वल्प उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ के तृतीय संस्करण में मिश्र बन्धुओं ने चैतन्य संप्रदाय के लिए 'गोर संप्रदाय', 'गोड़ संप्रदाय', 'माध्व संप्रदाय', 'चैतन्य संप्रदाय', 'सखी संप्रदाय' आदि नामों का प्रयोग किया है।[4] उन्होंने हरिदास, हरिवंश तथा चैतन्य की भक्ति को समान बताया हैं।[5] इस ग्रंथ के प्रथम संस्करण में कुछ ऐसे कवियों का नामोल्लेख है जो सही रूप में चैतन्य संप्रदायी नहीं हैं । जैसे गोविन्द प्रभु तथा रूप सखी । इसमें सूरदास मदन मोहन, माध्वदास रसिक अदि कवियों का नाम हैं। किन्तु इनके दीक्षित संप्रदाय की सूचना नहीं है। सूरदास को मदन मोहन का शिष्य बतलाया गया है, किन्तु सच तो यह है कि मदन मोहन उनके सेव्य ठाकुर का नाम है।[6] माधव दास को जगन्नाथ पुरी का बताया गया है और उनका जन्म संवत् 1580 वि. माना गया है। इसमें यह त्रुटि परिलक्षित होती है कि भगवान हरिराम राय को एक कवि मानकर

उन्हें हितानुयायी माना गया है।[7] मिश्रबन्धुओं की सूचना से यह ज्ञात होता है कि छत्रपुर के राज पुस्तकालय में इस संप्रदाय की अनेक हस्तलिखित रचनाएँ उपलब्ध हैं।

5 . ब्रजमाधुरी सार

ब्रजमाधुरी सार वियोगी हरि कृत है, जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित है। इसमें चैतन्य संप्रदाय के संबंध में कोई विशिष्ट सूचनाएँ नहीं मिलती हैं। केवल इसमें इस संप्रदाय के कवि गदाधर भट्ट, सूरदास मदनमोहन, हरिरामव्यास, गुणमंजरी दास और ललित किशोरी जी के संक्षिप्त जीवन परिचय तथा उनकी कविता के कुछ उदाहरण दिये गये हैं। गदाधर भट्ट जी के बारे में यह कहा गया है कि वे चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे। वियोगी हरि जी ने 'गौर संप्रदाय' तथा 'चैतन्य संप्रदाय' का एक अर्थ में उल्लेख किया है।[8]

6 . हिन्दी साहित्य का इतिहास

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी के द्वारा लिखित यह इतिहास ग्रंथ है। उन्होंने अपनी कृति में कृष्ण भक्ति धारा के विवेचन के क्रम में वल्लभ संप्रदाय तथा अष्टछाप की विस्तृत चर्चा की है । उन्होंने कृष्ण भक्ति पर सूफियों के प्रभाव की चर्चा भी की है। विशेषरूप से उन्होंने इस ओर संकेत किया है कि चैतन्य महाप्रभु तथा मीराबाई पर इसका प्रभाव है। सूफी संप्रदाय में वर्णित आभ्यन्तर मिलन, मूर्च्छा, उन्माद आदि का वर्णन आपके अनुसार चैतन्य मतानुयायी रूप गोस्वामी कृत उज्ज्वल नीलमणि, हरि भक्तिरसामृतसिन्धु में प्राप्त होते हैं । आचार्य शुक्ल जी ने गदाधर भट्ट का कविवृत्त देते समय उन्हें चैतन्य महाप्रभु का शिष्य एवं उनके द्वारा उन्हें भागवत सुनाये जाने की बात कही है, जो कि निश्चित रूप में भ्रामक है। शुक्लजी ने 'गौड़ीय संप्रदाय' का उल्लेख चैतन्य संप्रदाय के पर्याय के रूप में किया है।[9] आपने गदाधर भट्ट के कृतित्व के मूल्यांकन के दौरान चैतन्य संप्रदाय के ब्रजभाषा काव्य का महत्व प्रतिपादित किया है। आगे सूरदास मदनमोहन के प्रसंग में उनको 'गौड़ीय संप्रदाय' का वैष्णव बताते हुए उनकी कविता के विषय में यह लिखते हैं कि "इनकी कविता इतनी सरस होती थी कि इनके बनाए बहुत से पद सूरसागर में मिल गये।"[10]

7 . हिन्दी भाषा और साहित्य

श्यामसुन्दर दास के द्वारा लिखित यह ग्रंथ है, जो इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग से प्रकाशित हुआ है । इसमें कृष्ण भक्ति संप्रदाय के अतंर्गत 'चैतन्य संप्रदाय' का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। क्योंकि दासजी के अनुसार कृष्ण भक्ति साहित्य की श्रीवृद्धि में चैतन्य संप्रदाय का कुछ भी योगदान नहीं है।[11] वैष्णव धर्म के तत्कालीन विकास में चैतन्य महाप्रभु का नाम वल्लभाचार्य जी के साथ लेते हुए भी उनका उपदेश क्षेत्र केवल बंगाल ही माना है किन्तु यह गलत है। क्योंकि चैतन्य संप्रदाय के षड् गोस्वामियों ने वृन्दावन को ही अपना कार्य क्षेत्र बनाया था। साथ ही अनेक पांडित्यपूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन भी वृन्दावन में उन्हीं गोस्वामियों से हुआ है। यहाँ तक कि इन गोस्वामियों का प्रभाव भी वृन्दावन के अन्य कृष्ण भक्ति संप्रदायों के कवियों पर पड़ा नज़र आता है।

8 . हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास

हिन्दी के वयोवृद्ध आलोचक बाबू गुलाब राय जी से यह प्रणित है। इसके 23 वें संस्करण में उन्होंने 'भक्तिकाल' के अंतर्गत महाप्रभु चैतन्य के संबंध में यह लिखा है कि ''श्री चैतन्य महाप्रभु तथा निम्बाकाचार्य के संप्रदायों में कृष्णोपासना की मुख्यता रही है। श्री मध्वाचार्य ने द्वैतवाद की स्थापना की। महाप्रभु चैतन्यदेव ने भी अधिकतर उन्हीं के सिद्धान्तों को माना और नाम संकीर्तन पर अधिक बल दिया। उनकी भक्ति में प्रेमोन्मत्तता अधिक थी।''[12] गुलाब राय जी यह मानते हैं कि महाप्रभु ने अधिकतर मध्वाचार्य के सिद्धान्तों को माना किन्तु चैतन्य संप्रदाय का दर्शन तथा भक्ति पद्धति प्रायः मध्व मत से भिन्न है। उन्होंने 'अन्य संप्रदाय के कृष्ण भक्त कवि' शीर्षक के अंतर्गत 'गौडिया संप्रदाय' का उल्लेख करने के उपरांत ''गदाधर भट्ट, ललित किशोरी और ललित माधुरी का वृत्त आचार्य शुक्ल के इतिहास के आधार पर ही दिया है।''[13]

9 . हिन्दी साहित्य की भूमिका

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की यह अनवद्य कृति है। इसमें आपने यत्र–तत्र चैतन्य संप्रदाय के मतवाद की चर्चा की है। आचार्य द्विवेदी ने चैतन्य संप्रदाय को ब्रह्म संप्रदाय के अंतर्गत माना है। उनके अनुसार हिन्दी साहित्य में चैतन्य देव के एक मात्र शिक्षा प्राप्त शिष्य गोपाल भट्ट का महत्वपूर्ण स्थान है। यह तथ्य भी मिलता है कि ''चैतन्य संपद्राय के

सुप्रसिद्ध भक्त जीव गोस्वामी से हिन्दी के अमर भक्त कवि मीराबाई ने दीक्षा ली थी।"[14] द्विवेदी जी यह मानते हैं कि चैतन्य संप्रदाय तथा वल्लभ संप्रदाय में अधिक साम्यता दिखाई देती है किन्तु उन दोनों के दर्शन तथा उपासना विधि में अंतर परिलक्षित होता है। आपके द्वारा लिखित दूसरा इतिहास ग्रन्थ **हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास** में चैतन्य संप्रदाय की भक्ति भावना तथा उनके आचार्यों द्वारा स्थापित रस सिद्धान्त के प्रभाव के संकेत उपलब्ध होते हैं। द्विवेदी जी का कथन है कि "बंगाल के श्रीचैतन्य देव के अनुयायी भक्तों ने भी वृन्दावन को अपना साधना क्षेत्र बनाया था। इनमें रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी और जीव गोस्वामी बड़े भारी शास्त्रज्ञ विद्वान थे। इन्होंने भागवत द्वारा प्रचारित भक्ति को कमबद्ध दर्शन और तर्क संगत शास्त्र का रूप दिया।"[15] अतंतः द्विवेदी जी ने चैतन्य सपदाय के दर्शन तथा उपासना विधि को महान बताया है। कृष्ण भक्ति साहित्य का विवेचन, विश्लेषण तथा परिचय प्रस्तुत करते हुए श्री द्विवेदी जी ने "भगवत मुदित, सूरदास मदन मोहन, हरिराम व्यास, गदाधर भट्ट, आनन्दघन, नागरीदास, गुण मंजरी, ललित किशोरी और प्रियादास का नमोल्लेख तथा इनका कुछ संक्षिप्त परिचय दिया है।"[16]

10 . उत्तरी भारत की संत परंपरा

संत साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान परशुराम चतुर्वेदी का इतिहास ग्रंथ है उत्तरी भारत की संत परंपरा। आपने इस इतिहास ग्रंथ में चैतन्य संप्रदाय की चर्चा करते हुए यह कहा है कि – "चैतन्य देव ने भी 'अचिंत्य भेदाभेद सिद्धांत' के आधार पर अपनी रागानुगा भक्ति का प्रचार किया। चैतन्य संप्रदाय के अनुयायी भी उसी प्रकार भक्ति को वैधी की जगह रागानुगा कह कर आर्तभाव द्वारा भगवान के धाम में प्रवेश पा लेना सर्वोत्तम समझते थे।"[17] उन्होंने अपने ग्रंथ में वैष्णव संप्रदाय की साधना प्रणालियों में भेद बताते हुए चैतन्य संप्रदाय के बारे में बताया है कि "चैतन्य संप्रदाय वाले पूजन–अर्चन प्रणाली को प्रायः उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे और उनका एक मात्र साधन हरि नाम का स्मरण तथा कीर्तन था जिसके द्वारा उन्हें 'महाभाव' की प्राप्ति होती थी।"[18]

11 . हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित यह शोधात्मक कृति है। भक्ति काल की अनुक्रमणिका के अंतर्गत उन्होंने "महाप्रभु चैतन्य को बालकृष्ण की भावना पर बल देनेवाला लिखा है।"[19] डॉ वर्मा ने अपने इतिहास ग्रन्थ में 'चैतन्य संप्रदाय' के बारे में स्वतंत्र रूप से सम्यक चर्चा की है। उन्होंने यह लिखा है कि "चैतन्य ने राधा को मुख्य स्थान दिया और उसकी आराधना में जयदेव, चण्डीदास और विद्यापति के पदों का प्रयोग किया। उन्होंने गान और नृत्य के साथ अपने संप्रदायों में संकीर्तन को भी स्थान दिया। दार्शनिक दृष्टि से उन्होंने माध्व के द्वैतवाद को उतना महत्व नहीं दिया जितना निम्बार्क के द्वैताद्वैत को। उन्होंने अपनी भक्ति का दृष्टिकोण अधिकतर भागवत पुराण से लिया है। उन्होंने जगन्नाथ पुरी जाकर अपने सिद्धान्तों को बहुत लोकप्रिय रूप में रखा।[20] डॉ. वर्मा ने चैतन्य संप्रदाय का परिचय देते हुए इस संप्रदाय में निम्बार्क का द्वैताद्वैत गृहीत माना है, मध्व का द्वैतवाद नहीं। उन्होंने चैतन्य संप्रदाय के माधुर्य भाव की उपासना का फल यह बतलाया कि "चैतन्य महाप्रभु ने माधुर्य भाव से श्रीकृष्ण की उपासना कर कृष्ण के दाम्पत्य प्रेम के चित्रण की सामग्री प्रस्तुत की। इस प्रेम के अलौकिक रहस्य की धारा अपने वास्तविक रूप में अधिक दूर तक प्रवाहित न हो सकी। उसके आध्यात्मिक स्वरूप का ग्रहण सभी भक्तों और कवियों से एक ही रूप में नहीं हो सका। प्रेम के क्षेत्र में प्रेम का ही पतन हुआ और इसमें सांसारिक और पार्थिव आकर्षण की दूषित गंध आ गयी।"[21]

2 . 2 गौड़ीय संप्रदाय का उद्‌भव

गौड़ीय संप्रदाय के उद्‌भव का जहाँ तक प्रश्न है, इस क्रम में यह बताया जा सकता है कि इसका संबंध चैतन्य के भक्ति आन्दोलन से है। यद्यपि स्वयं चैतन्य महाप्रभु ने किसी विशिष्ट धर्मिक संप्रदाय की स्थापना नहीं की थी फिर भी उनके अनुयायियों ने उनके दार्शनिक सिद्धांतों के आधार पर 'चैतन्य संप्रदाय' की स्थापना की थी। महाप्रभु स्वयं एक प्रकाण्ड पंडित एवं शास्त्रज्ञान के परम विद्वान होने के कारण किसी भी ग्रंथ रचना करने में सक्षम थे, किन्तु उनका प्रमुख उद्‌देश्य कुछ और था। यानी उनका प्रमुख उद्‌देश्य अपना पाण्डित्य दिखाना न था बल्कि वे स्वयं भक्ति भाव में विभोर होकर उसी भक्ति का पान जन मानस को कराना चाहते थे। महाप्रभु ने अपने भक्ति रस से पूरे बंगाल को ऐसा रससिक्त

कर दिया जिसके फल स्वरूप बंगाल में एक आंदोलन उपस्थित हो गया। "यह बंगाल का आन्दोलन चैतन्य संप्रदाय का उद्गम स्थल है।"[22] अंततः इसका प्रवाह ब्रज की ओर प्रवाहित हुआ और वहीं जाकर उसने एक सुनिश्चित रूप धारण किया । चैतन्य महाप्रभु ने भागवत पुराण के भक्ति तत्व को ग्रहण कर नृत्य–गीत समन्वित मधुरा वैष्णव भक्ति के अभूत पूर्व प्रचार द्वारा संपूर्ण उत्तर पूर्वी अंचल में एक विराट धार्मिक क्रांति का सूत्रपात किया ।[23] इस प्रकार "सदियों से शैव, शाक्त और तांत्रिक विचार धाराओं से जकड़ी हुई बंगभूमि महाप्रभु के सात्विक जीवन और भक्तिपूर्ण उपदेशों के कारण राधा–कृष्ण की रागानुगा भक्ति के रंग में रंग गयी।"[24] यह ज्ञात है कि भक्ति, महाप्रभु चैतन्य देव की सृष्टि नही है, उनके पहले से ही इसकी जड़ें बंगला के वैष्णव धर्म में उपस्थित थीं । किन्तु यह निश्चित है कि इसका परिवर्तित रूप चैतन्य देव के भक्ति आन्दोलन में प्रस्फुटित हुआ। महाप्रभु की भक्ति इतनी शक्तिशाली तथा प्रभावोत्पादक थी कि इसने स्वयं एक संप्रदाय का रूप धारण कर लिया । जैसे पहाड़ से निकली एक छोटा सा झरना बाद में चलकर एक सरिता बन जाता है और अपने सुशीतल जल से समस्त जनों को आनन्दित करता है, उसी तरह चैतन्य महाप्रभु के हृदय से निर्झरित भक्तिरूपी झरने ने बाद में पूरे भारतवासियों के हृदय पटल को शांति प्रदान की थी। श्री ए.के. मजूमदार के अनुसार "चैतन्य के जादुई प्रभाव से बंगाल में वैष्णव धर्म का लघु पौधा एक विशाल वृक्ष में विकसित हो सका, जिसने न केवल अपनी जड़े भूमि में दृढ़ता से जमायीं, अपितु इसके अनेक पुष्प खिले, जिनकी सुगंध अभी भी विलुप्त नहीं हुई है।"[25] चैतन्यदेव ने बंगाल के वामाचारी व्यक्तियों को उनकी हिंसात्मक और अनाचार पूर्ण तामसी साधना से हटाकर बैष्णव धर्म की सात्विकी उपासना द्वारा कृष्ण भक्ति की ओर आकृष्ट किया था।"[26] उसने अपनी उपासना विधि में नाम संकीर्तन को प्रमुखता दी थी । उनके प्रभुनाम संकीर्तन में वह जादू था, जिससे जनसमूह आकर्षित होकर उनका भक्त बन गया । यह ध्यान रहे कि संकीर्तन भक्ति के अंग में है। कहने का मतलब चैतन्य देव के पहले संप्रदायों में संकीर्तन की विधि थी। किन्तु चैतन्य देव ने उस संकीर्तन को भक्ति का प्रमुख अंग बताते हुए उसे विशिष्ट बना दिया, जिसमें भाव प्रबल से प्रबलतर होते हुए प्रबलतम–महाभाव की स्थिति में अपूर्व भक्ति रस का संचार कर देता था।[27] इस संदर्भ में श्री एम.टी. कैनेडी ने "चैतन्य के महाभाव पूर्ण संकीर्तन को वैष्णव धर्म में एक नवीन तत्व बताया है।"[28]

2 . 3 गौड़ीय संप्रदाय का विकास

हम पहले बता चुके हैं कि गौड़ीय संप्रदाय की स्थापना चैतन्य देव ने नहीं की थी बल्कि उनके सहकारियों एवं अनुयायियों ने की थी। सर्वश्री नित्यानंद एवं अद्वैताचार्य द्वारा बंगाल में एवं रूप–सनातनादि गोस्वामियों द्वारा ब्रज में धर्म प्रचार के कार्य इस संप्रदाय का विधि पूर्वक प्रचलन प्रारंभ हुआ । वृन्दावन में निवास करने वाले गौड़ीय गोस्वामियों ने इसका शास्त्रीय एवं लोक सम्मत स्वरूप निर्धारित किया; जिसमें रूप, सनातन, गोपाल भट्ट, जीव गोस्वामी एवं कृष्ण दास कविराज का योगदान महत्वपूर्ण है। रूप गोस्वामी ने अपने ग्रंथ 'श्री भक्तिरसामृत सिन्धु' एवं 'उज्ज्वल नीलमणि' में चैतन्य देव के भक्ति तत्व का साहित्यिक रसशास्त्रीय दृष्टि से निरूपण करके अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया। सनातन गोस्वामी ने 'श्री हरिभक्ति विलास' की रचना कर उस भक्ति तत्व को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। रूप एवं सनातन गोस्वामियों ने अपने काल में ब्रज एवं बंगाल दोनों प्रदेशों के चैतन्य संप्रदायी भक्तों का बौद्धिक नेतृत्व एवं मार्गदर्शन किया था । कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित 'चैतन्य चरितामृत', चैतन्य महाप्रभु के चरित्र एवं सैद्धांतिक विचारों के लिए चैतन्य सप्रदाय में सर्वमान्य है। सिद्धांत ग्रन्थों के अतिरिक्त गौड़ीय संप्रदाय में साहित्यिक ग्रन्थ भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। इनके अलावा जीवनी, नाटक, चम्पू काव्य आदि अनेक प्रकार की विधायें उपलब्ध हैं। गोपाल भट्ट गोस्वामी तथा रघुनाथ भट्ट गोस्वामी दोनों ने संप्रदाय में लोगों को दीक्षा देने का कार्य बहुलता से किया। गोपाल भट्ट गोस्वामी के परिकर में ब्रज भाषा के अनेक विख्यात भक्त कवि हुए हैं। आज तक इनकी जो परंपरा चली आ रही है, उसमें जिन गोस्वामियों ने योगदान दिया है, उससे भी चैतन्य संप्रदाय के प्रचार व प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान मिला है। इसके अतिरिक्त जीव गोस्वामी की सर्वतोन्मुखी प्रतिभा वैष्णव शास्त्र की सभी शाखाओं में अभिव्यक्त हुई। ब्रज एवं इससे बाहर से भी भक्त जन आकर इनसे उपदेश एवं शिक्षा ग्रहण कर अपने–अपने स्थानों में चैतन्य संप्रदाय का प्रचार करने लगे हैं। इन सभी महानुभावों ने अपनी समस्त रचनाओं में संगीत का विशेष रूप से सहारा लिया है। क्योंकि संगीत ही एक ऐसा माध्यम है, जिससे समस्त मन को आकर्षित किया जा सकता है। इसीलिए चैतन्य संप्रदाय में अत्यन्त भावावेग पूर्ण संगीतात्मक कीर्तन मान्य है। उन्होंने

अपने पदों की रचनाओं में काव्य को संगीत की विभिन्न राग–रागनियों में बांधकर ही गायन द्वारा प्रस्तुत किया है।

यह पहले कहा जा चुका है कि ब्रज क्षेत्र के अतिरिक्त बंगाल और उड़ीसा में चैतन्य संप्रदाय का प्रारंभिक प्रचार कार्य सर्व श्रीनित्यानंद और अद्वैताचार्य के द्वारा संपन्न हुआ था। जिन्होंने जगन्नाथ पुरी में रहकर भक्ति तत्व का उपदेश दिया था। 17 वीं शताब्दी के मध्यकाल में सर्वश्री श्रीनिवास, श्यामानंद और नरोत्तम दास चैतन्य संप्रदाय का विशेष ज्ञान प्राप्त करने हेतु ब्रज आए थे। उस काल में वृन्दावन के सभी भक्ति संप्रदायों में भी विभिन्न पद्धतियों का धार्मिक संगीत प्रचलित था। इस प्रकार ये सब संगीत की शास्त्रोक्त विधि की शिक्षा प्राप्त कर कृष्ण संकीर्तन करने में बड़े निपुण हो गए थे। गौड़ीय संप्रदाय के संबंध में जो इतिहास विदित है, इससे हमें ये तथ्य उपलब्ध होते हैं कि गौड़ीय गोस्वामियों के प्रयत्न से यह संप्रदाय जिस चरम उत्कर्ष की स्थिति में पहुंचा था, वह इनके गोलोक धाम पधारने पर अवनति की ओर जाने लगा। तदुपरांत औरंगजेब के अत्याचार एवं दमन नीति ने चैतन्य संप्रदाय के नभ में भक्ति भावना एवं विद्वता का प्रकाश विलुप्त कर इसे और भी अंधकार के गर्त में ढ़केल दिया । औरंगजेब के आदेशानुसार जब ब्रज के देवालय नष्ट–भ्रष्ट किये जाने लगे, तब भक्त जनों को अपने देव–विग्रहों की चिंता हुई। इसी संकट काल में अनेक कठिनाइयों को सहन करते हुए गौड़ीय भक्तजनों ने देव–विग्रहों को हिन्दू राजाओं के संरक्षण में पहुँचाने का कार्य किया। इस प्रकार अनेक मन्दिर भी नष्ट हुए और उनका प्रभाव क्षीण होने से चैतन्य संप्रदाय के संगठन में शिथिलता आई।[29]

ऐसी विषमावस्था में बंगाल से विश्वनाथ चकवर्ती ने वृन्दावन आकर अपनी विद्वता एवं भक्ति भावना से नष्ट होते हुए संप्रदाय के गौरव को संजीवनी प्रदान कर पुनर्प्रतिष्ठित किया। वृन्दावन में उन्होंने रूप गोस्वामी के दुर्बोध ग्रंथों व अन्य धार्मिक ग्रन्थों तथा शास्त्रों की सरल रसमयी व्याख्याएँ एवं टीकाएँ लिखकर उनके सुबोध संस्करण प्रस्तुत किये और इस तरह वैष्णव एवं गौड़ीय संप्रदाय ग्रन्थों के अध्ययन एवं प्रचार का नवीन मार्ग प्रशस्त किया। "जीव गोस्वामी के पश्चात् संप्रदाय के संगठन में जो शिथिलता आ गयी थी, उसे विश्वनाथ चकवर्ती ने अपने अपूर्व पांडित्य एवं महान व्यक्तित्व के बल पर इस संप्रदाय की पुनर्प्रतिष्ठा की।"[30] विश्वनाथ चकवर्ती के योग्यतम शिष्य बलदेव विद्याभूषण ने गौड़ीय भक्ति–तत्व एवं रस तत्व का विशेष अध्ययन कर उनके द्वारा विकसित परकीयावाद तथा

अन्य दार्शनिक तत्वों पर अपने विद्वता पूर्ण विचार विद्वत समाज के सम्मुख रखे। उनके द्वारा लिखित 'ब्रह्मसूत्र भाष्य' के रूप में 'गोविन्द भाष्य', सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ। इस भाष्य ने चैतन्य संप्रदाय की प्रामाणिकता ही सिद्ध नहीं की अपितु इसके सम्मान में भी वृद्धि की। गौड़ीय संप्रदाय में दार्शनिक सिद्धांतों के विवेचन के रूप में यह सर्वमान्य रहा है।

विश्वनाथ चकवर्ती एवं बलदेव विद्याभूषण के काल में ब्रज के गौड़ीय विद्वानों का बंगाल–उड़ीसा के भक्त जनों पर धार्मिक अनुशासन कायम होने से इस संप्रदाय की एक सूत्रता दृढ़ रही, परंतु इनके पश्चात् नादिरशाह एवं अहमदशाह के आकमणों ने इस संप्रदाय के महत्व को पुनः हानि पहुँचाई। बलदेव विद्याभूषण के अतिरिक्त ब्रज में कोई ऐसा महत्वपूर्ण विद्वान नहीं रहा जो ब्रज व बंगाल की एक सूत्रता कायम रख सकता है। अंततः चैतन्य मतानुयायी भक्तों पर ब्रज का अनुशासन समाप्त होने से इस संप्रदाय की संगठनात्मकता भंग होकर वैचारिक मत भेद उत्पन्न हुए। "इसका प्रत्यक्ष परिणाम तब सामने आया जब बंगाल के बौद्ध शाक्त तंत्रवाद के प्रभाव से जनित परकीया वाद पर ब्रज के स्वकीया भाव का अंकुश उठने से धार्मिक वातावरण असुन्तलित होकर परकीयावाद ने जोर पकडा और ब्रज के गौड़ीय गोस्वामियों की मान्यता के विरुद्ध बंगाल में वासनामयी परकीया भक्ति के प्रचार में चैतन्य संप्रदाय के महत्व को वैचारिक लोगों की नजर में गिरा दिया।"[31] इस अधः पतन से निकालकर पुनरूद्धार का कार्य भी बंगाल की अपेक्षा ब्रज में ही हुआ। इस कम में ब्रज के सिद्धबाबा और उनके सुयोग्य शिष्य सिद्ध कृष्णदास बाबा के निर्मल आचरण और निष्काम सेवा–भावना से किये गये सद् प्रयत्नों से चैतन्य संप्रदाय की उखडी हुई ख्याति की जड़ फिर से जमने लगी। इसके अलावा चैतन्य जी के अस्तित्व काल से ही इस संप्रदाय के विद्वान भक्त समय–समय पर अनेक ग्रन्थों की रचना विविध भाषाओं में करते रहे; किन्तु उनका प्रचार सीमित भाषा में ही हो पाता था।

जहाँ तक ब्रज का संबंध है, यहाँ सिद्ध कृष्णदास बाबा के काल में और उनके पश्चात् भी अनेक गौड़ीय महात्मा हुए; जिन्होंने अपनी उपासना–भक्ति, त्याग–वृत्ति और सेवा भावना से चैतन्य संप्रदाय के गौरव को बनाये रखा। किन्तु प्रचार के नवीन साधनों के अभाव में इस संप्रदाय की यथोचित प्रगति नहीं हो सकी।

2 . 4 महाप्रभु चैतन्यदेव का जीवन तथा व्यक्तित्व

4. 1 – महाप्रभु चैतन्य का जीवनारंभ

श्रीचैतन्य महाप्रभु का जन्म भगवती भागीरथी के तटपर नवद्वीप के एक ब्राह्मण कुल में सन् 1542 की फाल्गुन पूर्णिमा को सायंकाल चंद्रग्रहण के अवसर पर हुआ था। उन्होंने पं. श्रीजगन्नाथ मिश्र को पिता तथा परम भाग्यवती श्रीमती शचीदेवी को माता बनने का गौरव प्रदान किया। ये नीम के नीचे जन्म होने से निमाई और गौर अंग (वर्ण) होने से गौरांग कहलाये ।[32] 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की उक्ति उन पर पूर्णरूपेण चरितार्थ हुई है । चैतन्य महाप्रभु की जीवनी से यह तथ्य मिलता है कि जिस समय महाप्रभु का जन्म हुआ, उस समय नदिया निवासी 'हरिबोल' के तुमुल उद्घोष के साथ पूण्य भागीरथी स्नान में संलग्न थे। जन्म के समय श्री गौरसुन्दर अत्यन्त सुन्दर बालक थे । नगर की स्त्रियॉ उपहार लेकर उनके दर्शनार्थ आयीं । उनके नाना, प्रसिद्ध ज्योतिषी पंडित नीलाम्बर मिश्र चकवर्ती ने भविष्यवाणी की कि बालक युग–पुरुष होगा। इसीलिए उनका विश्वम्भर नामकरण हुआ।[33]

4.2 महाप्रभु चैतन्य की बाल्यावस्था

बाल्यावस्था में विश्वम्भर की प्रकृति चंचल और विनय रहित थी । चैतन्य की सभी लीलाएँ दिव्य हैं । अन्य साधारण बालकों की भॉति वे चंचलता और चपलता तो करते हैं किन्तु इनकी चंचलता में एक अलौकिक भाव की आभा दृष्टिगाचर होती है। जिसके साथ ये चंचलता करते हैं, उसे किसी भी दशा में उनके ऊपर गुस्सा नहीं आता, बल्कि उसे आनन्द सा अनुभव होता था। ये चंचलता की हद कर देते हैं, जिस बात के लिए मना किया जाए उसे ही ये हठ पूर्वक बार–बार करते थे , यही उनकी विशेषता थी।[34]

4.3 महाप्रभु चैतन्य का अध्ययन तथा अध्यापन

विद्या के बारे में भर्तृहरि के नीतिशास्त्र में यह कहा गया कि –

> "विद्यानाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो
> धेनु: कामदुधा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं चसा।
> सत्कारा यतनं कुलस्य महिमा रत्नैविना भूषणं
> तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याधिकारं कुरु।।"[35]

अर्थात् विद्या मनुष्य की अतुलनीय कीर्ति स्वरूपा है । भाग्य क्षय होने पर विद्या ही एकमात्र आश्रयदात्री है। विद्या संपूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाली कामधेनु है, विरह में रति है और मनुष्य के तृतीय नेत्र के समान है। विद्या सत्कार की रानी, कुल की महिमा को बढ़ाने वाली और बिना ही रत्नों के सर्वोतम भूषण है। इसीलिए संपूर्ण विषयों की उपेक्षा करके एक ही विद्या में ही अधिकार करने का प्रयत्न करना चाहिए। किन्तु यहाँ ध्यान रहे कि चैतन्य देव के बड़े भ्राता विश्वरूप के संन्यासव्रत ग्रहण के पश्चात् चैतन्य के पिताजी ने उन्हें ज्यादा पढ़ाने–लिखाने का आग्रह न रखा। उनके मन में यह शंका घर कर गई थी कि यदि विश्वरूप की तरह निमाई भी घर छोड़ कर चला जाएगा, तो हम वृद्ध पिता–माता किसके होंगे । पुत्र स्नेह भी संसार में कितनी विलक्षण वस्तु है ? जिस समय माता–पिता का ममत्व पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, उस समय वे कर्तव्य ज्ञान को खो बैठते हैं । स्वयं जगन्नाथ मिश्र ने, पंडित होने के बावजूद, निमाई को उच्च शिक्षादान करने का आग्रह नहीं किया किन्तु आरंभिक शिक्षा के लिए उन्हें नवद्वीप के विख्यात पंडित गंगादास की पाठशाला में भेजा । वहाँ पर उन्होंने व्याकरण और न्याय शास्त्र में शीघ्र ही अद्भुत योग्यता प्राप्त कर ली।

चैतन्य देव के पिताजी का देहांत मात्र उनकी 11 वर्ष क़ी अवस्था में हो गया। वे उस समय विद्याध्ययन कर रहे थे। सन् 1556 में जब उनकी आयु केवल 14 वर्ष की थी, तब ही उन्होंने कलाप व्याकरण की टीका लिख ड़ाली थी। सन् 1557 में, अपनी 15 वर्ष की आयु में उन्होंने न्यायशास्त्र पर पांडित्यपूर्ण टिप्पणी की रचना की थी । उस ग्रंथ की रचना को देखते हुए उस समय के न्यायशास्त्री रघुनाथ पंडित को अत्यन्त ईर्ष्या हुई। उनको यह आशंका हुई कि उस नवीन रचना के कारण अपने ग्रन्थों का महत्व कम हो जावेगा। जब चैतन्य देव को इस बात की जानकारी मिली, तब उन्होंने रघुनाथ के संतोष केलिए अपनी रचना गंगा में बहा दी।[36]

उन दिनों नवद्वीप विद्या का और विशेषकर न्यायशास्त्र का प्रधान केन्द्र समझा जाता था। भारत वर्ष में उसकी ख्याति सर्वत्र थी । वहाँके नामी प्रकाण्ड विद्वान पाठशालाऐं खोलकर छात्रों को न्यायशास्त्र की शिक्षा दिया करते थे । तब तक गौरांग भी न्यायशास्त्र के

महान विद्वान के रूप में ख्यात हो चुके थे । अतः उन्होंने भी नवद्वीप में एक पाठशाला की स्थापना की, जिससे उन्हें प्रचुर धन और अतुल यश की प्राप्ति होने लगी ।

4.4 विवाह

निमाई पंडित अपने पांडित्य के लिए ख्याति प्राप्त कर चुके थे। एक दिन पाठशाला से पढ़कर अपने घर जाते हुए रास्ते में उन्होंने पं वल्लभाचार्य जी की तनया लक्ष्मी देवी को देखा। वल्लभाचार्य निमाई के सजातीय ब्राह्मण थे। निमाई ने लक्ष्मी देवी को पहले कई बार देखा था, किन्तु आज के दर्शन में कुछ अलग विशेषता नजर आ रही थी । लक्ष्मी देवी को देखते ही परम सदाचारी निमाई के 'भावस्थितानि जननान्तरसौहृदानि' इस न्याय के अनुसार पूर्व जन्म के संस्कार जाग्रत हो उठे । अंततः निमाई का विवाह उनके साथ हुआ। किन्तु खेद की बात यह है कि निमाई की प्रियतमा लक्ष्मी देवी का देहावसान विवाह के एक वर्ष उपरांत हो गया । निमाई की माता को पुत्र वधू से रहित युवक–पुत्र को देखकर अत्यंत कष्ट होता था। इसीलिए उनकी माता ने पुनश्च चैतन्य का विवाह परम सुन्दरी तथा सुशीला विष्णुप्रिया से कराया । उस समय तक निमाई की आयु 20 वर्ष की हो चुकी थी। बड़े–बड़े दिग्गज विद्वान उसके पांडित्य का लोहा मानते थे । इसीलिए उन्हें अपने विद्या वैभव का गर्व था। वे सुख पूर्वक गृहस्थ धर्म का पालन कर रहे थे। निमाई की वृद्धा माता को अपने प्रिय पुत्र के उत्कर्ष पर अत्यंत आनन्द अनुभव हो रहा था।[37]

4. 5 भक्ति के प्रति आकर्षण

जिस प्रकार चुम्बक लोहे को आकर्षित करता है उसी प्रकार निमाई के मन रूपी लोहे को भक्ति रूपी चुम्बक ने आकर्षित किया । इस संदर्भ में यह तथ्य मिलता है कि 16 वर्ष की आयु में निमाई ने अपने स्वर्गीय पिता के श्राद्ध और पिंड़दान के लिए गया धाम की यात्रा की। वहॉं प्रख्यात भक्त श्री माधवेन्द्र पुरी पाद के शिष्य एवं वैष्णव सन्यासी श्री ईश्वरपुरी से उन्हें मिलने का सुयोग मिला। उस विद्वान और भगवद्भक्त संन्यासी के आध्यात्मिक ज्ञान और भक्ति भाव से वे इतने प्रभावित हुए कि उनके शिष्य बन गये । पुरी जी के उपदेश तथा सत्संग ने ही उनके जीवन को नया रूप दिया। उनका उद्धत स्वभाव तथा चंचलता सब नम्रता तथा पांडित्याभिमान स्वभाव में परिवर्तित हो गया। वे भगवत् प्रेम पथ के पथिक बन गये। तत्पश्चात् उनके परिवर्तित स्नेह भाव ने मात्र बंग प्रदेश को ही नहीं, बल्कि पूरे भारत वर्ष की भक्ति–धारा को प्रखर तथा अमृतमय बना दिया।

गया से नदिया लौट आने के पश्चात् निमाई पंडित भागवत धर्म प्रचारक बन गये। उनका भक्त रूप इतने प्रबलतापूर्वक प्रकट हुआ कि अद्वैत प्रभु और श्रीवासदि, जिन्होंने उनके, प्राकट्य से पूर्व ही वैष्णव धर्म अंगीकार कर लिया था, नवयुवक श्री गौरसुन्दर में ऐसा परिवर्तन देखकर विस्मित हो गये। अब वे तर्करत नैयायिक, शास्त्रार्थ करने वाले स्मार्त और आलोचक काव्यवेत्ता नहीं रहे। प्रत्यक्ष–दर्शी श्री मुरारी गुप्त ने वर्णन किया है कि "श्रीवास के घर में अपने शत–शत भक्तों के मध्य, जिनमें मुख्यतः विद्वान थे, उन्होंने अपनी भगवत्–शक्तियों का प्रकाश किया ।"[38] उनके भक्तिभाव और निर्मल चरित्र से आकर्षित होकर नवद्वीप के अनेक व्यक्ति उनके अनुगामी बन गये । आरंभ में एक वर्ष तक इस भक्ति मंडली का कीर्तन श्रीवास पंडित के निवास में घर के किवाड़ बंदकर होता रहा । पहले–पहल उन्हें कुछ लोगों से दुश्मनी का भाव मोल लेना पड़ा किन्तु धीरे–धीरे नवद्वीप की अधिकांश जनता ने उनके नवीन प्रेम मार्ग को अपना लिया। उन्होंने गली–गली और घर–घर में हरि कीर्तन का आयोजन किया और समस्त नवद्वीप को नाम ध्वनि से गुंजायमान कर दिया। उनकी भक्ति का प्रचार दूर–दूर तक फैलने लगा। उसी समय नित्यानंद प्रभु भी उनसे आकर मिले। अनेकानेक निष्ठावान वैष्णव उपदेशक बंगाल के विविध भागों से उनके संग में आए। इस प्रकार नदिया नगर ऐसे अनेक वैष्णवाचार्यों का नित्य निवास स्थल बन गया। जिनका उद्‌देश्य वैष्णव धर्म के सर्वोच्चित प्रभाव द्वारा मानवता को भगवत्पाराण बनाना था। इसका एक अच्छा मिसाल हम जगाइ–मधाई के मन परिवर्तन के संबंध में देख सकते हैं। यह निश्चित है कि साधुओं का दर्शन ही कूर मानव के मन को परिवर्तन कर देता है। इस संदर्भ में एक उक्ति मिलती है कि–

"साधुनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ।"[39]

अर्थात् साधुओं का शरीर ही तीर्थ स्वरूप है । उनके दर्शन से ही पुण्य प्राप्त होता है। साधुओं में और तीर्थो में एक बड़ा भारी अंतर है । तीर्थों में जाने का फल जहाँ कालान्तर में मिलता है वहाँ साधुओं के समागम का फल तत्काल ही मिल जाता है। अतः सच्चे साधुओं का सत्संग तो दूर की बात है, उनका दर्शन ही कोटि तीर्थों से अधिक होता है।

सचमुच जिसका हृदय कोमल है, जो सभी प्राणियों को प्रेम की दृष्टि से देखता है, जिसकी बुद्धि घृणा और द्वेष से रहित है, परोपकार करना जिसका व्यसन ही बन गया है, ऐसा साधु–पुरुष यदि सच्चे हृदय से किसी घोर पापी से पापी का कल्याण चाहे तो उसके धर्मात्मा बनने में किंचित मात्र का संदेह नहीं । इस तरह भी इतने घोर पापी दोनों भाई जगाई–मधाई के ऊपर नित्यांनद जी की कृपा हो गयी। उनके हृदय में इन दोनों के उद्धार के निमित चिंता हो उठी जिससे इन दोनों के पापों का अंत ही हो गया। वे शीघ्र ही महाप्रभु चैतन्य के भक्त बन गये। इस घटना ने नदिया वासियों को आश्चर्य चकित कर दिया था । सब कहने लगे कि "निमाई पंडित केवल महान विद्वान ही नहीं अपितु निश्चित रूप से सर्वसमर्थ श्री भगवत् दूत हैं।"[40]

4.6 महाप्रभु चैतन्य का संन्यास

वैराग्य में कितना आनंद है । इसे वही पुरुष जान सकता है, जिसके हृदय में प्रभु के पादपद्मों में प्रीति होने की इच्छा उत्पन्न हो गयी हो। जिसे संसारी विषय भोग काटने के लिए दौड़ते हों, इसी प्रकार के वैराग्य में महान सुख का अनभुव होता है । यद्यपि गौरांग को ईश्वरपुरी से दीक्षा लिये चार वर्ष हो चुके थे, किन्तु दीक्षा लेने के पश्चात् भी वे गृहस्थ रहे थे। यथार्थ में वे संसार से विरक्त और श्रीकृष्ण की ओर अनुरक्त हो चुके थे। यह ध्यान रहे कि उनकी माँ और पत्नी को इस बात का संतोष था कि उनका प्यारा गौरांग उनके पास है । अतंतः कुछ दिन पश्चात् उनकी आशा निराशा में बदल गयी । पिंजरे में बंद पक्षी पिंजरा तोड़कर आखिर मुक्त अकाश में विचरण करने चला गया ।

"चैतन्यदेव ने चौबीसवें वर्ष की आयु में कटवा में वहाँ के केशव भारती से संन्यासाश्रम ग्रहण किया ।"[41]उनके संन्यास का नाम कृष्णचैतन्य रखा गया।[42] संन्यास ग्रहण के पश्चात् उन्हें शांतिपुर में अद्वैत प्रभु के घर जाने के लिए प्रेरित किया गया। श्री अद्वैत ने नदिया से उनके सब मित्रों और भक्तों को दर्शनार्थ निमंत्रित किया । पुत्र के दर्शनार्थ शचीमाता को भी साथ ले लिया गया । जब उनकी माँ ने उनके मुंडे हुए सिर और कषाय वस्त्र देखे तब उनका हृदय विषाद मग्न हो गया। अपनी स्नेहमयी जननी के चरणों में दण्डवत् प्रणाम कर पावन पुत्र ने कहा – "जननी यह देह आपकी है, इसलिए मैं आपकी आज्ञा–पालन में बाध्य हूँ। भगवत् प्राप्ति के लिए मुझे श्रीधाम वृन्दावन गमन करने की आज्ञा दीजिए ।"[43] आखिर सोच–विचार के पश्चात् शचीमाता सहित सब लोगों की यह सम्मति हुई

कि चैतन्य महाप्रभु जगन्नाथ पुरी में रहें, जिससे समय समय पर उन्हें उसकी खबर मिल सके । माँ तथा अन्य भक्तजनों से अनुमति प्राप्तकर चैतन्य ने नीलाचल के लिए प्रस्थान किया। उस समय नवद्वीप की स्थिति अवर्णनीय है । सब की आँखो से प्रेमाश्रू की धारा बह रही थी। चैतन्य ने सभियों से यह कहा कि आप लोगों को मैं कभी नहीं भूलूँगा । आप सब का प्यार भरी छवि मेरे हृदय पर बसी रहेगी । इसलिए आप सबसे यह भिक्षा माँगता हूँ कि सब अपने–अपने घरों में कृष्ण का नाम संकीर्तन करें, कृष्ण का गुण–गान करें और कृष्ण की आराधना करें । यह जीवन का परम कर्तव्य है। चैतन्य के साथ नित्यानंद गोस्वामी, जगतानंद पंडित, दामोदर पंडित और मुकुन्ददत्त नामक चार भक्तजन भी निलाचल की ओर चले। अद्वैताचार्य रोते हुए घर पर रह गये ताकि वह शचीमाता तथा अन्य लोगों को धैर्य तथा सांत्वना प्रदान करते रहें।

4.7 यात्रा और धर्म प्रचार

नीलाचल में निवास करते समय चैतन्य ने सार्वभौम भट्टाचार्य नामक एक प्रकांड पंडित को अपने शास्त्रीय ज्ञान से प्रभावित किया। सार्वभौम भट्टाचार्य विद्वान थे, पंडित थे, शास्त्रज्ञ थे और वर्णाश्रम धर्म में श्रद्धा रखते थे । शास्त्रोक्तं वैदिक कर्मों को भी यथाशक्ति करते थे और घर पर आते हुए साधु अभ्यागतों का प्रेम पूर्वक आदर– सत्कार करते थे । 'अतिथि देवोभवः' उक्ति पर उनका अटूट विश्वास था । उनके मन में भगवत् प्राप्ति की अदम्य इच्छा थी । अंदर ही अंदर प्रभुप्राप्ति के लिए छटपटाते थे। कहा जाता है कि सार्वभौम के ही उद्धार के लिए प्रभु वृन्दावन न जाकर पुरी पधारे और सब से पहले सर्वभौम के घर को ही अपनी पदधूलि से परम पावन बनाया। सार्वभौम ने महाप्रभु चैतन्य की स्तुति निम्नप्रकार की है –

"संसार कूपे पतिते ह्यगाधे,
मोहान्धपूर्णं विषयातिसक्त ।
करावलम्बं मम देही नाथ,
गोविन्द दामोदर माधवेति ।"[44]

जब महापंडित सार्वभौम प्रभु के पादपद्मों के शरणापन्न हुए तब लोगों का झुकाव प्रभु की ओर होने लगा। यह निश्चित है कि इस प्रपंचमय संसार के लोगों का स्वभाव जहाँ तक

हो सके, दूसरों को बढ़ने न देना होता है । दूसरों की बुराई करना होता है। किन्तु जब तक वे पूर्णरूप से विवश नहीं हो जाते तब तक किसी की मान प्रतिष्ठा नहीं करते ।

नीलाचल में प्रभु रहते समय जन संसद से पृथक् एकांत में, बिना किसी प्रदर्शन के गोप्य भाव से भक्तों के सहित रहते थे। किन्तु कूड़े के अंदर छिपी हुई आग कब तक अप्रकट रह सकती है ? धीरे–धीरे लोग महाप्रभु के दर्शन के लिए आने लगे तभी महाप्रभु ने दक्षिण के तीर्थों में भ्रमण करने का विचार किया। उनका विचार था कि संन्यासी के धर्म के अनुसार हमें कुछ काल तक देश–विदेशों में भ्रमण करना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में चैतन्य देव ने नित्यानंद गोस्वामी को नीलाचल से घर भेज दिया ताकि वे गृहस्थ जीवन स्वीकार कर बंग देश में कृष्ण भक्ति और नाम संकीर्तन का प्रचार करें। नीलाचल में तीन माह निवास करने के उपरांत उन्होंने देशाटन करने का विचार ठान लिया। इस प्रकार के विचार को सुनते ही सारे भक्त जनों ने उनसे प्रार्थना की कि हम लोगों को भी अपने साथ लें, हमारा परित्याग न करें। यह सुनते ही प्रभु ने गंभीरता पूर्वक कहा– ''मेरे साथ कोई नहीं चल सकता । मैं भीड़–भाड़ के साथ यात्रा में न जा सकूँगा। अकेले ही तीर्थ भ्रमण करुँगा।''[45] अततः नित्यानंद गोस्वामी की प्रार्थना यह थी कि ''आप अकेले ही यात्रा में जायेंगे, इससे हमें असह्य दुःख होगा। हममें से किसी को आप साथ ले जाना न चाहें तो ये कृष्णदास नामक ब्राह्मण है, कटवा के समीप ही इनका जन्मस्थान है, ये स्वाभ्व के बड़े ही सरल है, सेवा करने में बड़े प्रवीण है, प्रभु के पाद–पद्मों में इनका दृढ़ अनुराग हैं; ये आप के साथ रह कर सब सेवा कर पायेगें। आप जब भावावेश में आकर नृत्य करने लगेंगे, तो वस्त्र को कौन सम्हालेगा, दोनों हाथों से ताली बजा–बजाकर तो आप रास्ते में कीर्तन करते हुए चलेंगे फिर जलपात्र, कथरी और लंगोटियों को कौन सम्हालेगा ? अतः आप दया पूर्वक कृष्णदास ब्राह्मण को साथ में ले जावें।''[46] नित्यानंद जी के अंतिम आग्रह को प्रभु ने न टाल पाते हुए कृष्ण दास को साथ चलने की अनुमति दे दी तथा अन्यों को नीलाचल में रहने का आदेश दिया।

महाप्रभु चैतन्य देव दक्षिण की ओर पैदल यात्रा करते समय संकीर्तन का जयघोष करते रहते थे । जिस ग्राम में होकर निकलते उस गॉव के लोग इन घोषों को सुनकर प्रभु को घेर लेते थे । महाप्रभु उनके बीच में खड़े होकर यह कहते रहते कि –

"हरि हरि बोल, बोल हरि बोल
मुकुन्द माधव गोविन्द बोल"

दक्षिण की ओर यात्रा में आंध्र प्रदेश के गंजाम जिले के किसी गाँव में कुष्ठ से पीड़ित एक वासुदेव नामक ब्राह्मण, जिसकी साधु–महात्माओं के चरणों में अत्यधिक प्रीति थी, को प्रभुने अपने प्रेमालिंगन से सुन्दर बना दिया। इसका संकेत 'चैतन्य चरितामृत' में मिलता है –

"धन्यं तं नौमि चैतन्यं वासुदेवं दयार्द्रधीः
नष्टकुष्टं रूपपुष्टं भक्तितुष्टं चकार यः।।"[47]

जो अधिकार पाकर प्रमाद नहीं करता और धन पाकर जिसे अभिमान नहीं होता, वह साधारण मनुष्य नहीं है। वह तो कोई अलौकिक महापुरुष ही है। महाभागवत राय रामानंद जी ऐसे ही वन्दनीय महानुभावों में से एक थे। महाप्रभु चैतन्य के साथ राय रामानंद की भेंट गोदावरी तट पर हुई थी । उनके साथ चैतन्य की बड़ी मार्मिक आध्यात्मिक चर्चा होने का तथ्य मिलता है । जो अग्रलिखित है –

प्रभुने पूछा – राय महाशय! मुझे संपूर्ण विद्याओं में श्रेष्ठ परा विद्या बताइये, जिससे बढ़कर दूसरी कोई विद्या ही न हो।

रामानंद जी ने कहा– प्रभो ! मैं क्या बताऊँ । श्रीकृष्ण भक्ति के अतिरिक्त और सर्वोत्तम विद्या हो ही नहीं सकती है ? उसी के लिए परिश्रम करना सार्थक है, शेष सभी व्यर्थ है।

प्रभु ने पूछा – सर्वश्रेष्ठ कीर्ति कौन सी कही जा सकती है ?

रामानंद ने कहा – प्रभो ! श्रीकृष्ण के संबंध से लोगों में परिचय होना, यही सर्वोत्तम कीर्ति है।

प्रभु ने पूछा – अच्छा ! ऐसी संपत्ति कौन सी है, जिसके सामने सभी संपत्तियाँ तुच्छ समझी जा सकें ?

राय ने कहा– श्रीनिकुंजविहारी राधावल्लभ की अविरल भक्ति जिसके हृदय में विद्यमान है, वही सर्वश्रेष्ठ संपत्तिशाली पुरुष है। उसके समान पुरुष त्रिभुवन में कोई नहीं हो सकता।

प्रभु ने पूछा – आप मुक्त जीवों में सर्वश्रेष्ठ किसे समझते हैं ?

राय ने कहा– प्रभो! जिसकी संपूर्ण चेष्टाएँ श्रीकृष्ण की प्रेम–प्राप्ति के ही निमित्त हों, जो सतत श्रीकृष्ण के ही मधुर नामों का उच्चारण करता हुआ उन्हें ही पाने का प्रयत्न करता है , वही सर्व श्रेष्ठ मुक्त पुरुष है।

प्रभुने पूछा – आप किस गान को सर्वश्रेष्ठ गान समझते हैं ?

राय ने कहा – श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे !

हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !

इस सुमधुर नामों के गायन को में सर्वश्रेष्ठ गायन समझता हूँ।

प्रभुने पूछा– आप जीवों के कल्याण के निमित्त सर्वश्रेष्ठ कार्य किसे समझते हैं ?

राय ने कहा– प्रभो! महापुरुषों के पादपद्मों की पावन पराग से अपने मस्तक को अलंकृत बनाये रखना और उनके मुख निसृत अमृत वचनों का कर्णरंध्रों से निरंतर पान करते रहना, इसे ही मैं जीवों के कल्याण का मुख्य हेतु समझता हूँ।

प्रभुने पूछा– प्राणीमात्र के लिए सर्वश्रेष्ठ स्मरणीय वस्तु क्या है?

राय ने कहा –

"श्रीकृष्ण ! गोविन्द! हरे! मुरारे!

हे नाथ! नरायण! वासुदेव!"

बस, यही गान सर्वश्रेष्ठ स्मरणीय है ।

प्रभुने पूछा – आप ध्यान में सर्व श्रेष्ठ ध्यान किसे समझते हैं ?

राय ने कहा– श्रीवृन्दावन विहारी की बॉकी झांकी का ही निरंतर ध्यान बना रहे– बस, यही सर्वश्रेष्ठ ध्यान है ।

प्रभुने पूछा– आप जीवों के लिए सर्वश्रेष्ठ जगह कौन सा समझते हैं, जहाँ सर्वस्व के मुख में धूल देकर निवास किया जाय ?

राय ने कहा – प्रभो ! सरबसु के मुख धरि दै सरबसु कै ब्रज धूरि।

वृन्दावनं परित्यजं पादमेकं न गच्छति ।

प्रभु ने पूछा – आप श्रवण में सर्व श्रेष्ठ श्रवणीय क्या समझते हैं ?

राय ने कहा –

"श्रीकृष्ण ! गोविन्द! हरे! मुरारे!

हे नाथ! नरायण! वासुदेव!"

प्रभुने पूछा – आप उपासना में सर्वश्रेष्ठ उपासना किसे समझते हैं ?

राय ने कहा – युगल सरकार के सिवा और उपासना किसकी ही की जा सकती है। असल में तो वृन्दावन विहारी ही परम उपास्य हैं ।

प्रभु ने पूछा – आप भक्ति और मुक्ति में किसे अधिक पसंद करते है ?
राय ने कहा – प्रभो! मुक्ति के नीरस फल को तो कोई विचारप्रधान दार्शनिक पुरुष ही पसंद करेगा। मुझे तो प्रभु के पादपद्मों में निरंतर लोट लगाते रहना ही सबसे अधिक पसंद है। मैं अमृत के सागर में जाकर अमृत बनना नहीं चाहता । मैं तो उसके समीप बैठकर उसकी मधुरिमा के रसास्वादन करने को ही सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ।[48]

इस यात्रा के दौरान चैतन्य देव अपने भाव विह्वल संकीर्तन नृत्य और दर्शनों से लोगों को सुख पहुँचाते हुए आषाढ़ मास में श्रीरंगक्षेत्र में पहुँचे । वहाँ परम भाग्यवान श्री वेंकट भट्ट नामक एक वैष्णव ब्राह्मण के अनुरोध से प्रभु ने चातुर्मास्य व्यतीत किया। वेंकट भट्ट के पुत्र श्री गोपाल भट्ट ने महाप्रभु की रूप माधुरी से विमुग्ध होकर उन्हें आत्म समर्पण कर दिया। अतंतः वेंकटभट्ट का संपूर्ण परिवार श्रीकृष्ण भक्त बन गया। चातुर्मास्य बिताकर महाप्रभु वेंकट भट्ट से विदा लेकर श्रीरंगम् होते हुए ऋषभ पर्वत पर गये । वहाँ पर स्वामी परमानंद पुरी महाराज से मिले।[49] यहाँ से कामकोष्ठी पुरी होते हुए वे दक्षिण मथुरा पहुंचे । दक्षिण मथुरा से चलकर महाप्रभु ने कृतमाला तीर्थ में स्नान किया और महेन्द्र पर्वत पर जाकर परशुराम भगवान के दर्शन किये। वहाँ से सेतुबंध रामेश्वर के दर्शन करते हुए वे धनुस्तीर्थ पहुंचे और उस तीर्थ में स्नान करके श्रीरामेश्वरम् में पहुँचे । दक्षिण में कन्याकुमारी तक अनेक स्थलों का परिभ्रमण कर श्रीचैतन्य महाप्रभु भीमा नदी में स्नान करके कृष्णवीणा नदी के किनारे आये । वहाँ पर स्थित ब्राह्मणों से प्रभु ने श्रीं विल्वमंगल कृत 'कृष्णकर्णामृत' नामक अपूर्व रसमय ग्रंथ का संग्रह किया।[50]

बड़ौदा से चलकर महाप्रभु अहमदाबाद आये। वहाँ पर दो बंगाली बैष्णवों से नवद्वीप का समाचार पाकर प्रभु की पूर्व स्मृति पुनः जागृत हो उठी। तत्पश्चात् उसने द्वारका के लिए प्रस्थान किया। तदुपरांत समुद्र के किनारे होते हुए सोमनाथ में शिवजी के दर्शन करते हुए गोदावरी के किनारे–किनारे होते हुए पुनः विद्यानगर पहुँचे। यात्राकाल में उन्होंने अनेक स्थानों पर बौद्ध, जैन और मायावादियों से शास्त्रार्थ कर उन्हें वैष्णव धर्म में दीक्षित कराया।

श्री मन्महाप्रभु के पुरी लौटे आने पर राजा प्रतापरुद्र देव और उनके पंडित ब्राह्मण महाप्रभु के अनुयायी भक्त हो गए। इस समय वे सत्ताईस वर्षीय हो चुके थे। अट्ठाईसवें वर्ष में वे मालदा में गौड़ तक गये वहाँ उन्हें रूप–सनातन नामक दो महापुरुषों की प्राप्ति हुई। कर्णाटक ब्राह्मण वंशी होने पर भी गौड़ के तत्कालीन शासक हुसेन साह के संसर्ग में

दोनों भाई प्रायः मुस्लिम हो गये थे। बादशाह ने उनके नाम तक बदलकर दवीर खास और साकर मल्लिक रख दिया था। वे फारसी , अरबी और संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे।

श्रीचैतन्य शांतिपुर में स्नेहमयी जननी से भेंटकर पुनः पुरी धाम लौट आये। पुरी में अल्प काल निवास करके उन्होंने श्रीधाम वृन्दावन के लिए पुनः प्रस्थान किया। इस अवसर पर उनके साथ बलभद्र भट्टाचार्य नामक सेवक थे। श्रीधाम वृन्दावन का दर्शन करके और कुरान के आधार पर अनेक मुस्लिमों को वैष्णव बनाकर वे प्रयाग पधारे । "उन वैष्णवों के वंशज आज तक पठान–वैष्णव कहलाते हैं।"[51] पुनश्च प्रयाग में श्रीरूप गोस्वामी की उनसे भेंट हुई। दस दिन तक भक्ति विषयक शिक्षा प्रदान करके श्रीचैतन्य ने उन्हें अपने प्रयोजन की पूर्ति के लिए श्रीधाम वृन्दावन जाने की आज्ञा दी। उनका पहला प्रयोजन शुद्ध प्रेमाभक्ति का युक्तिसंगत प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थों की रचना करना था । दूसरा प्रयोजन भक्त समाज के कल्याणार्थ उन स्थलों का पुनरुत्थान, जहाँ द्वापर युग के अंत में श्रीकृष्ण चन्द्र ने विविध दिव्य लीलाएँ की थीं । इस लक्ष्य को सफल बनने की आशा लेकर रूप गोस्वामी ने वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया । वहाँ उन्होंने श्रीचन्द्रशेखर के घर पर निवास किया तथा श्रीतपन मिश्र के घर नित्य भीक्षा की । इसी तरह रूप गोस्वामी महोदय ने उनके सान्निध्य में दो मास तक भक्ति शिक्षा प्राप्त की। इस संदर्भ में प्रमुख चैतन्य जीवनीकार कृष्णदास कविराज ने चैतन्य देव से रूप सनातन को प्राप्त शिक्षा का विस्तृत वर्णन किया है।

काशी में श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपनी अपार विद्वत्–शक्ति से सन्यासियों के प्रमुख प्रकाशानन्द सरस्वती को तर्क से हराया। विद्वान पंडित भी अधिक समय तक श्रीगौर सुन्दर का विरोध नहीं कर सके । प्रभु में ऐसी वशीकरण शक्ति थी, जो उनके हृदयों का स्पर्श कर भक्ति प्राप्ति के लिए विवश कर देती थी । काशी के सन्यासियों ने शीघ्र ही श्रीचैतन्य के चरणारविन्द में गिरकर उनसे कृपा की याचना की। महाप्रभु ने शुद्ध भक्ति का उपदेश देकर उन्हें आनन्दमय बना दिया और सांप्रदायिक संकीर्णता से मुक्त कर दिया।

इस समय, अर्थात् इकतीसवें वर्ष से लेकर टोटा गोपीनाथ मंदिर में संकीर्तन करते हुए अड़तालीसवें वर्ष में तिरोभाव तक महाप्रभु पुरी में निरंतर काशी मिश्र के निवास पर ही रहे । इन अट्ठारह वर्षों में उनका जीवन स्थिर भक्तिमय था। उनके परिकर में ऐसे अनेक परम–वैष्णव थे, जो शुद्धतम चरित्र, विद्वत्ता, दृढ धर्म निष्ठा तथा श्रीराधा माधव के दिव्य प्रेम में जन–साधारण से विलक्षण थे। चैतन्य देव में सिर्फ यह लक्षण दिखाई दिये थे कि – वे

सिर्फ नाचते, गाते, अपना कुछ भी विचार नहीं करते और प्रायः भक्ति माधुर्य में तन्मय हो जाते। "उनके दर्शनार्थ आनेवाले सभी श्रद्धालु उन्हें मानवता के कल्याण के लिए अधःलोक में अवतरित सर्व माधुर्य पूर्ण स्वयं भगवान मानते थे।"[52]

4.8 अंतिम अवस्था और देहावसान

अपने जीवन के अंतिम कुछ समय महाप्रभु चैतन्य देव संज्ञा हीन हो गये थे। अर्थात् वाह्य ज्ञान शून्य होकर श्रीकृष्ण के विरह में विह्वल रहा करते थे। इस समय उनके अनुचर खासकरके स्वरूप दामोदर महाप्रभु के प्रिय कवि जयदेव, विद्यापति और चंडीदास कृत राधा–कृष्ण की प्रेम लीलाओं का गायन कर उनको सान्त्वना देते रहते थे। यह माना जाता है कि एक दिन महाप्रभु चैतन्य देव दिव्योन्माद की दशा में दौड़कर पुरी स्थित समुद्र में प्रवेश कर गये, जिससे उनका देहावशान सन् 1590 में 48 वर्ष की उम्र में हो गया।[53]

2 . 5 चैतन्य देव : एक अवतार

5.1 अवतार का कारण

"अजोअपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।
यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणायसाधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।
जन्म कर्म च में दिव्यमेवं यो वेति तत्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन।। (गीता 4/6–9)

भारत वर्ष के लोग प्राचीन काल से ही यह विश्वास करते आ रहे हैं कि भगवान वास्तव में अवतार लिया करते हैं । ईश्वर तो अरूप हैं; फिर भी समाज की रक्षा तथा लोगमंगल के लिए वे अरूप से रूप में अवतरित होते हैं। "मनुष्य–रूप में मुनष्य जाति के बीच प्रकट हुआ करते हैं।"[54] गीता, जो भारतीयों की आत्मा है, जिसमें अर्जुन को श्रीकृष्ण के उपदेश सर्वोपरि हैं, इसमें अवतार के बारे में स्वयं कृष्ण यह कहते हैं कि "यद्यपि मैं अजन्मा हूँ, आत्म स्वरूप में अव्यय (अविनश्वर) हूँ, सभी भूतों का ईश्वर (स्वामी) हूँ, फिर भी अपनी

निजी प्रकृति पर अधिष्ठित होकर अपनी आत्म–माया के द्वारा जन्म करता हूँ । साथ–साथ यह भी कृष्ण ने उपदेश दे रखा है कि जब–जब धर्म में ग्लानि आ जाती है और अधर्म का उत्थान हो जाता है, साधुओं की रक्षा करने तथा पापियें को विनाश करने और धर्म की स्थापना करने के लिए मैं युग–युग में जन्म लेता हूँ। यह माना जाता है कि चैतन्य देव श्रीकृष्ण के अवतार पुरूष हैं।

5.2 अवतार का कार्य

भगवान के जन्म के समान ही उनके उस कर्म का भी, जिसके लिये उनका अवतार हुआ करता है, द्विविध भाव से और द्विविध रूप होता है। अवतार अवतरण केवल किसी महान वाह्य कर्म के लिये नहीं होता है, जैसे कि कर्म प्रवण मनुष्य समझा करते हैं। कर्म और वाह्य घटना स्वयं अपना कोई मूल्य नहीं रखते, उनका मूल्य उस शक्ति पर आश्रित है जिसकी ओर से वे होते हैं और उस भाव पर आश्रित हैं, जिसके कि वे प्रतीक होते हैं; और उस भाव को सिद्ध करना ही उस शक्ति का काम होता है।[55] जिस संकट की अवस्था में अवतार का आविर्भाव होता है, वह बाहरी नजर में वाह्य घटनाओं और जड़ जगत् में महत् परिवर्तन करनेवाले कार्यों के होने का एक असाधारण सा काल प्रतीत होता है। परंतु इसके वास्तविक मूल अभिप्राय को देखें तो यह मालूम होगा कि यह संकट मानव–चेतना में तब आता है, जब उस चेतना का कोई महान परिवर्तन या कोई नवीन विकास होनेवाला होता है। इस परिवर्तन को सिद्ध करने के लिए किसी दिव्य शक्ति की आवश्यकता होती है; किन्तु शक्ति का यह नियम है कि जिस कोटि की चेतना को लेकर वह काम करती है, स्वयं भी उसी प्रकार की बन जाती है।

अवतार के वाह्य कर्म का वर्णन गीता में ''धर्मसंस्थापनार्थाय'' कहकर किया गया है। अर्थात् जब–जब धर्म की ग्लानि या ह्रास होता है, उसका बल क्षीण हो जाता है और अधर्म सिर उठाता है, प्रबल होता और समाज में अत्याचार फैलाता है, तब–तब भगवान अवतार ग्रहण कर धर्म की रक्षा करते हैं। यहाँ पर यह बता देना उचित होगा कि अवतार की जो अवधारणा है, उसके गुढ़ार्थ को समझने के लिए धर्म शब्द के अत्यन्त पूर्ण, गंभीर तथा व्यापक अर्थ को ग्रहण करें। इस संदर्भ में श्री अरविंद स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि – ''भारतीय धारणा के अनुसार धर्म वह है जिसे हम धारण करते हैं फिर वह भी है जो हमारी सब अंतर और वाह्य कियाओं को एक साथ धारण किये रहता है।''[56] धर्म शब्द का प्राथमिक अर्थ

हमारी प्रकृति का वह मूल विधान है, जो गुप्त रूप से हमारे सब कर्मों को नियंत्रित करता है। इसलिए इस दृष्टि से प्रत्येक जीव, प्रत्येक वर्ण, जाति और समूह का अपना–अपना एक विशिष्ट धर्म होता है। इस संदर्भ में दूसरी बात अरविन्द ने यह कही है कि हमारे अंदर जो भागवत प्रकृति है उसे भी हमारे अंदर विकसित और व्यक्त होना है। इस दृष्टि से धर्म अंतः क्रियाओं का वह विधान है, जिस के द्वारा भगवत प्रकृति हमारी सत्ता के अंदर विकसित होती है। फिर तीसरी दृष्टि से धर्म वह विधान है, जिससे हम अपने बहिर्मुखी विचार, कर्म और पारस्परिक संबंधों को नियंत्रित करते हैं ताकि भगवत आदर्श की ओर उन्नत होने में हमारी और मानव जाति की अधिक से अधिक सहायता हो। अवतार के कार्य में ऊपर कथित तीन बातें अवश्य घटित होती हैं। अवतार आत्मानुशासन का एक धर्म बतलाते हैं, जिससे कि मनुष्य निरंतर जीवन से निकलकर उच्चतर जीवन में संवर्धित हो।[57]

मोटे रूप में कहें तो अवतार वह है जो अपने अंदर जन्म ग्रहण किये हुए, अपने अंदर अवतरित हुए तथा भीतर से अपने संकल्प जीवन और कर्म को संचालित करते हुए भगवान की उपस्थिति और शक्ति के विषय में सचेतन होता है। वह अपने भीतर इस भागवत उपस्थिति और शक्ति के साथ तादात्म्य अनुभव करते हुए उसके निर्देशानुसार समाज में धर्म की स्थापना करता है।

5.3 चैतन्य अवतार का कारण

चैतन्य संप्रदाय में परंपरा एवं इतिहास से महाप्रभु चैतन्य देव को श्रीकृष्ण का अवतार तथा नित्यानंद प्रभु को बलराम का अवतार माना जाता है। गयाधाम से प्रत्यावर्तित होने पर ही इसकी प्रथम घोषणा अद्वैताचार्य ने की थी। तत्पश्चात उनके मानवोत्तर आचरणों को लक्षित कर नवद्वीप के भक्तों को यह विश्वास हो गया था कि वे अवतारी हैं। चैतन्य देव सन्यास दीक्षा ग्रहण कर नीलाचल में स्थायी निवास के समय–उनकी उत्कट कृष्ण विरहानुभूति के कारण उन्हें राधा का अवतार ही माना जाने लगा था। मुरारी गुप्त, वासुदेव घोष, मुकुन्द दत्त, रूप, सनातन, राय रामानन्द, सार्वभौम भट्टाचार्य, प्रकाशानंद सरस्वती आदि सहचरी अनुगत भक्तों ने उन्हें अपने ग्रन्थों, स्तोत्रों आदि में उनके अवतारीत्व का उल्लेख किया है। नरहरि सरकार के अनुसार "रस राजरूप श्रीकृष्ण से चैतन्य देव अभिन्न होते हुए भी परमतत्व हैं और वे ही पूजार्ह हैं।"[58] चैतन्य देव के समकालीन कवियों में से

उनके अंतरंग पार्षद स्वरूप दामोदर ने उन्हें राधा–कृष्ण का मिलित अवतार माना है। सार्वभौम भट्टाचार्य ने उनकी वन्दना निम्न शब्दों में की है –

''वैराग्य विद्या निजभक्ति योगे, शिक्षार्थमेक पुरूषः पुराणः
श्रीकृष्ण चैतन्य शरीर धारी, कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये।।''

लोचन दास ने श्रीचैतन्य देव को राधा का अंश यानी राधा के वर्ण तथा उनके भावरस को धारण करते हुए अवतार लेने की बात कही है जो उनकी उक्ति से स्पष्ट होता है –

''राधा वरणे अंग गौरांग हइया
राधिकार भावरस अंतरे धरिया।''[59]

चैतन्य की अवतार विषयक धारणा को शास्त्रीय उद्धरणों से भी पुष्ट किया गया है। मसलन 'भागवत भारतशास्त्र आगम पुराण' से कृष्ण चैतन्य के अवतार प्रकट होने का प्रमाण सिद्ध किया गया है। संप्रदाय में इस मान्यता के पोषक आचार्यों ने शास्त्रान्वेषण से यह सिद्ध कर दिया है कि चैतन्य देव निश्चय ही एक अवतार हैं। कवि कर्णपूर रचित 'गौरगणोद्देशदीपिका' में ब्रज के परिकर महाप्रभु चैतन्य देव की लीला में जिस–जिस परिकर के रूप में अवतरित हुए हैं उनका इस रचना में ललित वर्णन किया गया है। इस प्रकार विविध रूपों से यह बात सिद्ध की गयी है कि स्वयं भगवान् ही श्री गौर सुन्दर रूप में वर्तमान कलि के उपास्यावतार हैं।

यह ध्यान रहे कि चैतन्य देव की जीवितावस्था में ही लोगों ने उनकी पूजा करना शुरू कर दिया था। ''नरहरि सरकार ने ही सर्व प्रथम चैतन्य पूजा का विधान और एतदर्थ वैष्णवाचार तथा मंत्र भी निर्मित किये, जिसे कुछ ही समय में बंगाल के वैष्णवों ने स्वीकार कर लिया।''[60] अनेक स्थानों पर भी आज उनके विग्रह पूज्य हैं। ''राज बहादुर दिनेशचंद्र सेन ने अपने प्रख्यात व्याख्यानों में महाप्रभु के प्राचीन विग्रह की चर्चा की है।''[61]प्रभुपाद शील भक्ति सिद्धान्त ठाकुर ने श्रीगौर और श्रीकृष्णोपासना का वैशिष्ट्य समझाते हुए अपना निष्कर्ष इस प्रकार बताया है कि ''साधक की श्रीकृष्णोपासना का पूर्वाभास ही गौरोपासना है।''[62] अंततः सिद्ध किया कि गौरोपासना ही कृष्णोपासना है ।

चैतन्य महाप्रभु के अवतार के कारणों का विशेष विवरण कृष्णदास कविराज ने विस्तृत रूप से अपनी स्वरचित कृति 'चैतन्य चरितामृत' में दिया है । उन्होंने चैतन्य देव को कृष्ण

का अवतार माना है तथा इस अवतार ग्रहण करने के कई कारण बताये हैं। ये कारण बहिरंग और अंतरंग दो प्रकार के हैं, जो इस प्रकार स्पष्ट है –

"सत्य एइ हेतु किन्तु एहो बहिरंग
आर एक हेतु शुन आछे अंतरंग।"[63]

इन्हीं कारणों के लिए कृष्ण ने फिर से चैतन्य रूप अपना लिया था। ये कारण निम्नोक्त हैं।

1 – बहिरंग कारण

प्रेम–भक्ति प्रसार

संकीर्तन प्रचार

अपनी भक्ति देना

2. अंतरंग कारण

अ .. जिस प्रकार राधा कृष्ण–प्रेम का आस्वादन करती थीं, उसी प्रकार स्वप्रेम आस्वादन करने के लिए।

आ. अपनी रूप माधुरी का आस्वादन उसी प्रकार करने के लिए जैसे राधा करती थीं।

इ .. राधा के महाभाव का वास्तविक रूप समझने के लिए।

बहिरंग के कारण के संबंध में कृष्णदास जी यह कहते हैं कि यह कारण मुख्य कारण नहीं है। यह भी सत्य है कि द्वापर युग के अंत में अठ्ठाइस चतुर्युग जब हो गये, तब कृष्ण ने अवतार लिया। ब्रजलोक और भक्त सबको लेकर प्रकाशित हुए। "वे दास्य, सख्य, वात्सल्य, श्रृंगार चारों भावों के भक्तों के वश में रहते हैं ।"[64] कृष्ण ब्रज में माता–पिता, सखा, गोपी, प्रेयसी सभी के साथ कीड़ा करते थे। यथेच्छ विहार करके अंतर्ध्यान भी हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने सोचा कि मैंने चिर काल से प्रेम–भक्ति का दान नहीं किया और प्रेम भक्ति के बिना जगत् का कल्याण असंभव है। समस्त संसार वैधी भक्ति कर रहा है। वैधी भक्ति से ब्रजभाव को शक्ति नहीं मिलती ।[65] अतः मैं शुद्ध भक्ति को सिखाने के लिए जन्म लूँगा। इस संदर्भ में यह कहा गया है कि –

"एई शुद्धभक्ति लये करिनु अवतार
करिव विविध विधि अद्भुत विहार ।।"[66]

चैतन्य स्वयं कृष्ण थे, परन्तु वे स्वयं कृष्ण भक्ति क्यों करते थे, यह सवाल उठना स्वाभाविक है ? इसका समाधान देते हुए कविराज जी यह बताते हैं कि अपने आप न करें तो संसार में कोई कुछ सिखा नहीं सकता। अतः मैं स्वयं वैसा आचरण करूंगा; मैं अपने भक्तगणों को साथ लेकर धरती पर अवतरित होऊँगा और नाना प्रकार की लीला करूंगा। ऐसा सोचकर कलिकाल की प्रथम संध्या को आप नदिया में अवतरित हुए।[67] मोक्ष प्राप्ति के लिए भिन्न–भिन्न युग में भिन्न–भिन्न माध्यम बताये गये हैं । कलियुग में नाम ही मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र माध्यम है। इस नाम के प्रचार के लिए चैतन्य ने अवतार लिया था। कहा गया है कि –

"कलियुग युग धर्म नामेर प्रचार
तथि लागि पीतवर्ण चैतन्यावतार।।"[68]

चैतन्य अवतार के अंतरंग कारण के संबंध में यह कहा जा सकता है कि वह एक मात्र प्रेम–रस का आस्वादन है। चाहे वह राधा भाव में हो, चाहे गोपी भाव में । प्रश्न यह उठता है कि क्या कृष्ण ने ब्रज अवतार में इस प्रेम का अनुभव नहीं किया था जो अब करने आए? अंततः इस प्रेमास्वादन को कृष्णदास मूल कारण बताते हैं।[69] भगवान के अन्य अवतारों से, रसिक शेखर कृष्ण का अवतार तो प्रेम रस का आस्वादन और राग–मार्गी भक्ति का प्रचार है। चैतन्य अवतार का समय संयोग से युगधर्म प्रचार का भी समय था। अतः कृष्ण जो प्रेम रस का आस्वादन करने आये थे, युग धर्म नाम संकीर्तन का भी प्रचार करने लगे थे।[70] कहा जाता है, द्वापर युग में राधा–कृष्ण के प्रेम में राधा, प्रेम का आश्रय थी और कृष्ण उनके प्रेम का विषय। कृष्ण ने द्वापर युग में विषय जाति का सुख अनुभव किया था आश्रय जाति का नहीं । अतः कृष्ण ने राधा भाव जानने के लिए चैतन्य अवतार लिया था। चैतन्य देव के अवतारों के अंतरंग कारणों ने एक नई भावना उत्पन्न कर दी है। यदि कृष्ण राधा भाव से कृष्ण के प्रेम का आस्वादन करना चाहते हैं ; तब कृष्ण होकर आने से क्या होगा, ऐसा तो वृन्दावन में हो ही चुका है। आश्रय जाति का सुख कैसे प्राप्त हो । उसके लिए मन दौड़ता है, पर उपाय क्या है ! विचार करके कृष्ण देखते हैं कि यदि कोई उपाय है तो वह राधा का स्वरूप लेकर अवतार लेना ही है।[71] अतः राधा कृष्ण का स्वरुप और कांति लेकर चैतन्य रूप में आये। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि चैतन्य देव अकेले स्वयं कृष्ण न होकर कृष्ण–राधा का संयुक्तावतार है। यह उनके गौर–वर्ण से स्पष्ट पता चलता है। अतः

प्रेमभक्ति प्रचार करने के लिए जब कृष्ण धरती पर आये, तब राधा का भाव और वर्ण दोनों लेकर आये। चैतन्य देव का अंतर का वर्ण तो कृष्णमय है और बाहर का वर्ण श्रीराधा की अंगकांति है। कृष्णदास जी एक स्थान पर भागवत से उद्धरण लेकर यह भी कह देते हैं कि "चैतन्य का अवतार भागवत में वर्णित है कि भगवान का जो अवतार कलियुग में होता है वह पीतवर्ण होता है । अतंतः वे यह मानते हैं कि चैतन्य देव ही कृष्ण हैं । वे ही राधा हैं। उसमें तर्क करने की आवश्यकता नहीं है। तर्क से भगवान को जाना नहीं जा सकता है। जो चैतन्यदर्शन का मूल संदेश है –

"सेइ कृष्ण सेइ गापी परम विरोध।
अचिंत्य चरित्र प्रभु अति सुदुर्व्बोध।।
इये तर्क करि केह ना कर संशय।
कृष्णेर अचिंत्य शक्ति एइमत हय।।
आचिंत्य उद्भुत कृष्ण चैतन्य विहार।
चित्र भाव चित्र गुण चित्र व्यवहार।।"[72]

2 . 6 महाप्रभु चैतन्य देव का शिक्षाष्टक

महाप्रभु चैतन्य देव ने सन्यास लेने के उपरांत न किसी ग्रन्थ की रचना की, न किसी संप्रदाय की स्थापना । ऐसा प्रसिद्ध है कि चैतन्य ने अपने प्रारंभिक जीवन में 'कलाप व्याकरण' की टीका और न्याय शास्त्र पर टिप्पणी लिखी थी। उनकी व्याकरण–टीका इस समय अप्राप्त है और न्याय टिप्पणी की मूल प्रति स्वयं उन्होंने ही रघुनाथ शिरोमणि के संतोष के लिए गंगा में बहाकर नष्ट कर दी थी।[73] यह निश्चित है कि सन्यास दीक्षा के पश्चात् उन्होंने शिक्षा देने के अलावा किसी ग्रंथ की रचना नहीं की । उन्हें इतना अवकाश ही कहाँ था । वे तो सदा प्रेमवारुणी पान करके पागल से बने रहते थे। ऐसी दशा में पुस्तक प्रणयन करना उनके लिए अशक्य था। अन्य विद्वान महापुरुष जैसे व्यास, वाल्मीकि, शंकर, रामानुज आदि ने अपनी अमर कृति से अंधे हुए संसार को दिव्यलोक प्रदान किया है तथा दत्तात्रेय, ऋषभदवे और अजगरमुनि आदि ने अपने आचरणों द्वारा ही संसार को त्याग, वैराग्य और भोगों की अनित्यता का पाठ पढ़ाया है।[74] किन्तु चैतन्यदेव ने अपने जीवन को ही अपनी कृति माना है। उन्होंने अपने जीवन को ही प्रेम का साकार स्वरूप बनाकर मनुष्यों के सम्मुख रख

दिया। चैतन्य देव ने किसी नये धर्म की रचना नहीं की है; बल्कि सन्यास धर्म या त्याग धर्म जो ऋषियों का सनातन धर्म है, उसी के शरणापन्न हुए और संसार को त्याग का यथार्थ मर्म सिखा कर, ज्ञान मार्ग में फैली शुष्कता दूर की।

भगवान श्रीगौरसुन्दर चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिष्यों को श्रीकृष्ण तत्व–विषयक ग्रन्थों की रचना करने की आज्ञा दी, जिसका पालन उनके अनुयायियों ने किया । यद्यपि भगवान श्री गौरसुन्दर महाप्रभु अपनी युवावस्था में ही परम विद्वान के रूप में प्रसिद्ध हो गये; किन्तु उन्होंने हमें केवल आठ श्लोक ही प्रदान किये हैं । वैष्णव मंडली में ये आठ श्लोक 'शिक्षाष्टक' के नाम से ही प्रसिद्ध है। इन आठ श्लोकों का मूल पाठ सहित अर्थ आगे प्रस्तुत है[75] –

(1)

चेतोदर्पण मार्जनं भवमहादावाग्नि निर्वाणणं
श्रेयः कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनं ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्।।

अर्थ : जो चित्त रूपी दर्पण के मैल को मार्जन करने वाला है तथा बारम्बार जन्म–मृत्यु रूपी महादावानल को शांत करने वाला है, प्राणियों के लिए मंगल दायिनी कैरव चन्द्रिका को वितरण करने वाला है। समस्त अप्राकृत विद्या रूपी वधू का यही जीवन है। यह आनन्द के समुद्र की वृद्धि करने वाला है और यह श्रीकृष्ण नाम हमारे द्वारा नित्य वांछित पूर्णामृत का हमें आस्वादन करना है।

(2)

नाम्नानकारि बहुधा निजसर्वशक्ति –
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः।।

अर्थ : हे भगवन् ! आपका नाम ही जीवों का सब प्रकार से मंगल करने वाला है। भला देखो तो सही, तुमने 'नन्दनंदन', 'ब्रजनंदन', मुरलीमनोहर, राधारमण आदि कितने

सुन्दर–सुन्दर कानों को चंदन सा शीतल करने वाले मनोहर नाम प्रकट किये हैं, इन नामों का स्मरण और कीर्तन करने में देश कालादि का कोई भी नियम नहीं है। कोई भी यानी स्त्री हो, पुरूष हो, द्विज हो, अन्त्यज हो, शूद्र हो, अनार्य हो सभी प्राणी शुचि–अशुचि तथा स्थान, काल, पात्र का विचार न करते हुए उन नामों का संकीर्तन कर सकते हैं। किन्तु मैं इतना दुर्भाग्यशाली हूँ कि आपके ऐसे सुमधुर नाम में भी मेरा अनुराग उत्पन्न न हो पाया।

(3)

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ।।

<u>अर्थ</u> : हरिनाम संकीर्तन करने वाले व्यक्ति को; स्वयं को मार्ग में पड़े हुए तृण से भी छोटा समझना चाहिए, यानी अपना बड़प्पन न दिखाना चाहिए। उसको वृक्ष से सहिष्णुता की शिक्षा लेनी चाहिए। सुन्दर वृक्ष का जीवन परोपकार के लिए होता है। जैसे वृक्ष अपना फल और छाया को दान देकर संसार के लोगों को आनन्दायित करता है तथा भेद–भाव शून्य होकर समान भाव से सभी की सेवा करता रहता है। अर्थात् दुष्ट स्वभाव वाले पुरूष उसे खूब फलों से समृद्ध देखकर ड़ाह करने लगते हैं और ईर्ष्यावश उसके उपर पत्थर फेंकते हैं किन्तु वह उन दुष्टों के प्रति रोष भाव न रखकर उनको सबसे पहले अपना मीठा फल दान करता है। यदि उसके पास मीठा फल नहीं हो तो वह कच्चा फल देकर अपनी अपकारी के प्रति प्रेम प्रदर्शित करता है। अंततः संकीर्तन प्रेमी को सहनशील होकर, मिथ्यामान की भावना से सर्वथा शून्य रहकर एवं दूसरों को सदा ही पूर्ण मान देने वाला होकर ही अहर्निश हरिनाम को तोता की तरह विनम्र भाव से जप करना चाहिए।

(4)

न धनं न जनं न सुन्दरी कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनी जन्मनीश्वरे भगताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि।।

<u>अर्थ</u> : संसार में सब सुखों की खान धन है। धनी पुरूष के पास गुणी, पण्डित तथा भाँति–भाँति की कलाओं में कोविद स्वयं ही आ जाते हैं । धन से भी बढ़कर जन–संपत्ति है। उस जन–संपत्ति से बढ़कर आकर्षक सुन्दरी है । सुन्दरी संसार में किसके मन को आकर्षित न कर सकती हैं ! हजारो वर्षों की संचित हुई तपस्या को तपस्वीगण उस सुन्दरी की टेढ़ी भौंह के उपर बार देने को बाध्य होते हैं। वह अपनी मुस्कान के जादू से सबको वश

में ले लेती है। तभी तो राजर्षि भर्तृहरि ने कहा है –"कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः।"[76] किन्तु यह ध्यान रहे कि उस सुन्दरी से भी बढ़कर कविता है। जिसको कविता कामिनी ने अपना कांत कहकर वरण किया, उसके मन त्रैलोक्य की संपत्ति से भी तुच्छ है । वह धनहीन होने पर भी शहंशाह है। किन्तु "हे सर्वसमर्थ जगदीश! मुझे धन एकत्र करने की कोई कामना नहीं है, न मैं अनुयायियों, सुन्दरी स्त्री अथवा अलंकारपूर्ण कविता का ही इच्छुक हूँ। मेरी तो एक मात्र कामना है कि जन्म–जन्मान्तर में आपकी अहैतुकी भक्ति मेरे मन में बनी रहे।"[77]

(5)

अयि नन्दतनुज किंकरं पतितं मां विषमें भावाम्बुद्यौ
कृपया तब पाद पंकजस्थितधूलीसदृशं विचिन्तय।।

अर्थ : यह संसार सागर सदृश है। तुमने मुझे इसमें फेंक दिया है । मेरी कोई आपत्ति नहीं। मैं अपने कर्मो के अधीन होकर ही इसमें गोते लगा रहा हूँ। किन्तु हे कोमल प्रकृति मल्लाह ! इसमें गोते लगाते–लगाते थक गया हूँ। मुझे अपना नौकर समझकर कहीं बैठने का स्थान दे दो। तुम्हारे ये अरूण वर्ण के जो कोमल चरण कमल हैं, ये तो जल में ही रहने के आदी हैं। हे नन्दजी के लाड़ले लाल ! मुझे उस चरण–कमल की धूल का कण बना लीजिए।

(6)

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्‌गदरूद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति।।

अर्थ : प्यारे ! मैंने सुना है कि आँसुओं के भीतर जो सफेद–सफेद काँच का सा छोटा सा घर दीखता है, उसी के भीतर तुम्हारा घर है। तुम सदा उसी में वास करते हो। मेरी आँखें तो आँसू बहाती ही नहीं और तुम तो भीतर ही छिपे बैठे हो । बोलना–चालना तो वाचालता का लक्षण है। शायद तुम मौनियों से प्यार करते होगे। हे प्रभु ! मैं मौन रहूँ तो कैसे ? यह वाणी तो अपने आप फूट निकली है। वाणी को रोक दो, गले को रूद्ध कर दो, जिससे एक शब्द भी स्पष्ट रूप में न निकल पाए। मुझे ऐसी शक्ति दो जिससे तुम्हारा नाम सुनते ही दोनों नेत्र लबालब अश्रु से भर आयें। अंततः इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि हे प्रभो! आपका नाम कीर्तन करते हुए कब मेरे नेत्र अविरल प्रेमाश्रुओं की धारा से विभूषित

होंगे? कब आपके नामोच्चारण करने मात्र से ही मेरा कंठ गद्‌गद वाक्य से रूद्ध हो जाएगा और मेरा शरीर रोमांचित हो उठेगा ?

(7)

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्

शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्दविरहेण में।।

<u>अर्थ</u> : हे प्राणनाथ ! जरा मेरी दशा की ओर देखो। तुम्हारे बिना मेरी दशा दिनों दिन कैसी बदतर होती जा रही है। जिसे लोग निमेष कहते हैं, पलक मारते ही जिस समय को व्यतीत हुआ बताते हैं, वह मेरे लिए एक युग सा लग रहा है। इसका कारण है तुम्हारा विरह । कहते हैं वर्षा चार महीने होती है किन्तु मेरे जीवन को तुमने वर्षामय बना दिया है। कभी भी मेरे नेत्रों से वर्षा की धाराएँ छूटना बंद नहीं होती हैं। हे प्रभु! आपके बिना मुझे संपूर्ण शून्य सा दीख पड़ता है।

(8)

अश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा

मदर्शनान्मर्महतां करोतु वा।

यथा तथा वा विदधातु लम्पटो

मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ।।

<u>अर्थ</u> : ईश्वर चाहे दयामय हो या धोखेबाज, प्रेमी हो या निष्ठुर; मैंने तो मेरा सब कुछ यानी तन, मन, धन उन्हें अर्पण कर दिया है । अब सोचने से क्या होगा, जो होना था हो चुका है । वह इस शरीर का स्वामी बन चुका है। अब कोई इस पर नजर उठाकर देख नहीं सकता। अर्थात् कृष्ण ही मेरे सब कुछ हैं, वे मेरे नित्य प्रतिबंध रहित आराध्य प्राणेश्वर हैं।

2.7 निष्कर्ष

भक्ति ने जिसके मन में बसेरा बना लिया है, भागवान के प्रकाश से जो प्रकाशमय बन गया है, उसके जीवन के संबंध में जितना भी कहा जाए, कम है । बिल्कुल इसी प्रकार का जीवन था चैतन्य महाप्रभु का । इनके बाल्यावस्था से लेकर देहावसान तक का वर्णन, विस्तार से इस अध्याय में किया गया है। इनके जीवन दर्शन के अध्ययन के दौरान यह देखने को मिलता है कि यह दर्शन बड़ा ही निराला तथा अनूठा है । दर्शनों में वैराग्य के लिए दी हुई परिभाषाएँ इनके जीवन के संदर्भ में बिल्कुल खरी उतरतीं हैं । सचमुच कल्पना

करें; तो क्या थे चैतन्य महाप्रभु और क्या था उनका जीवन ! यह अनुभव की चीज है वर्णन की नहीं। नारद जी ने कहा है कि प्रेम अनिर्वचनीय है उसी प्रकार 'प्रेममय' जीवन भी अवर्णनीय होता है। जिनके प्रेममय संकीर्तन से सारी प्रकृति झूम उठती थी, उनके जीवन को इतिहासकार क्या अपनी छोटी सी पुस्तक में शब्द बद्ध कर पाएगा !

कृष्ण क्या इस संसार में उपभोग हेतु पधारे थे। नहीं, बिल्कुल नहीं । चाहे कौन क्या माने यह हम स्वीकारते नहीं हैं। ठीक उसी प्रकार का अवतार लिये इस मोह, माया बंधन संसार में अवतीर्ण हुए थे महाप्रभु चैतन्य । उन्होंने अपनी अप्रतिम शिक्षा से मानव मात्र को कलिकाल के कलुष पंक से उद्धार किया है । अंततः रूप, सनातन तथा जीव गोस्वामी को दी हुई शिक्षा के आधार पर आज विद्यमान अचिन्त्य भेदाभेद दर्शन समस्त जीवात्मा को परमात्मा का दर्शन करता है और कराता रहेगा भी । आगे हम देखेंगे कि महाप्रभु के दर्शन में दर्शाये गये मार्ग पर कितने कवि उतर कर मनुष्य के कलुषित जीवन को अपनी कलम से पुनीत बताया है।

संदर्भ

1. ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास पृ – 303
2. शिवसिंह सरोज पृ –396
3 A history of Hindi litereture पृ –78
4. मिश्रबंधु विनोद, तृतीय संस्करण पृ – 257
5 मिश्रबंधु विनोद ,द्वितीय संस्करण पृ – 258
6 चैतन्य संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य पृ –6
7 मिश्रबंधु विनोद, द्वितीय खण्ड पृ – 538
8. मिश्रबुध विनोद, सप्तम संस्करण पृ –76
9. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ –182
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ –187
11. हिन्दी भाषा और साहित्य पृ –214
12. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास पृ –62
13. चैतन्य संप्रदायः सिद्धान्त और साहित्य पृ –13
14. हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ –52
15 हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास पृ –94
16. चैतन्य संप्रदायः सिद्धान्त और साहित्य पृ –17
17 उत्तरी भारत की संत परंपरा, प्रथम संस्करंण पृ –85
18 उत्तरी भारत की संत परंपरा, प्रथम संकरण पृ -86
19. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,चतुर्थ संस्करण,पृ –206
20.हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चतुर्थ संस्करण, पृ –210–211
21. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चतुर्थ संस्करण पृ – 618
22. चैतन्य संप्रदाय का ब्रजभाषा काव्य पृ – 9
23. मधुर रसः स्वरूप और विकास, भाग–2 पृ –122
24 रीति कविता और श्रृंगार रस का विवेचन पृ – 211
25 Chaitanya :His life and Doctorin पृ – 79
26. ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास पृ – 308

27. चैतन्य संप्रदाय का ब्रजभाषा काव्य पृ – 2
28. The Chaitanya movement पृ – 54
29. चैतन्यमत और ब्रज साहित्य पृ – 82
30. ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास पृ – 340
31 ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास पृ – 341
32. कल्याण–भगवत्प्रेम अंक 2003 पृ –65
33. भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत पृ –6
34. श्री चैतन्य चरितावली पृ – 92
35 भर्तुहरि नीतिशतक, श्लोक संख्या–20 पृ –35
36 चैतन्यमत और ब्रज साहित्य पृ – 4
37. विस्तार के लिए देखिए, श्रीचैतन्य चरितावली, खंड़–1 पृ –157–163
38 भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत पृ –9
39. श्रीचैतन्य चरितावली पृ – 209
40 भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत पृ –9
41 भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत पृ –10
42 चैतन्य मत और ब्रज साहित्य पृ – 6
43 भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत पृ –11
44. इस संसार रूपी अगाध समुद्र में डूबते हुए विषयासक्त मुझ अधम को अपने हाथों का सहारा देकर हे नाथ! आप उबार दीजिए। हे गोविन्द! हे दामोदर!! हे माधव!! हे माधव!!! मैं आपकी शरण हूँ।(श्रीचैतन्य चरितावली, भाग तीन) पृ –176
45. श्रीचैतन्य चरितावली, भाग तीन पृ –193
46. श्रीचैतन्य चरितावली, भाग तीन पृ –196
47 चैतन्य चरितामृत, मध्यम लीला 7/1
48 श्री श्रीचैतन्य चरितावली, चतुर्थ भाग से उद्धृत पृ –232–235
49 श्री श्रीचैतन्य चरितावली, चतुर्थ भाग पृ –249
50 श्री श्रीचैतन्य चरितावली, चतुर्थ भाग पृ –257
51. भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत पृ – 14

52. विस्तार के लिए देखिए, चैतन्य शिक्षामृत पृ – 15
53 चैतन्यमत और ब्रज साहित्य पृ – 10
54. अवतार पृ – 9
55. अवतार पृ – 20
56 अवतार पृ – 22
57 विस्तार के लिए देखिए अरविन्द की पुस्तक, अवतार, पृ –9–24
58 चैतन्य संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य पृ –42
59 चैतन्य मंगल, आदि खण्ड
60 Chaitanya and his companion पृ –102–103
61 Chaitanya and his companion पृ – 228–230
62 चैतन्य संप्रदायः सिद्धान्त और साहित्य पृ –45
63 चैतन्य चरितामृत, आदि लीला पृ –22
64 चैतन्य चरितामृत, आदि लीला पृ –17
65 चैतन्य चरितामृत, आदि लीला पृ –17
66 चैतन्य चरितामृत, आदि लीला पृ –22
67 चैतन्य चरितामृत, आदि लीला पृ –18
68 चैतन्य चरितामृत, आदि लीला पृ –18
69 हिन्दी और बंगाली कृष्ण कवि पृ –183
70 चैतन्य चरितामृत, आदि लीला पृ –22
71 आश्रय जातीय सुख पेते मन धाय
यत्ने नारि आस्वादिने कि करि उपाय ।
(चैतन्य चरितामृत, आदिलीला) पृ –27
72 चैतन्य चरितामृत, आदिलीला पृ –89
73 चैतन्यमत और ब्रज साहित्य पृ –12
74. श्री श्रीचैतन्य चरितावली पृ –254
75 श्री श्रीचैतन्य चरितावली पृ –255
76. श्री श्रीचैतन्य चरितावली पृ –261
77. भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत पृ –18

तृतीय अध्याय

गौड़ीय संप्रदाय के विकास में सहायक आचार्य और कवि

3 . 0 प्रस्तावना

3 . 1 गौड़ीय संप्रदाय के मान्य षड् गोस्वामी

1 . सनातन गोस्वामी 2 . रूप गोस्वामी 3 . गोपाल भटट् गोस्वामी 4 . रघुनाथ गोस्वामी 5 . रघुनाथ भटट् गोस्वामी 6 . जीव गोस्वामी

3 . 2 गौड़ीय संप्रदाय के विकास में सहायक कवि

1. माधवदास जगन्नाथी 2. आनंदघन 3. रामराय 4. सूरदास मदनमोहन 5. गदाधर भटट् 6. चंद्रगोपाल 7. भगवान दास 8. गरीब दास 9 . विष्णु दास 10. जुगल दास 11. राधिका नाथ 12. किशोर दास 13. मनोहर दास 14. लाखा दास 15. मधुसुदन दास 16. हरि दास 17. तीर्थराम 18. रसिक मोहन राय 19. हरिराम व्यास 20. प्रिया दास 21. भगवंत मुदित 22. कृष्ण दास 23. माधुरी दास 24. वल्लभ रसिक 25. ललित किशोरी और ललित माधुरी 26. गुणमंजरी दास 27. ललित लड़ैती 28. बांकेपिया

3 . 3 गौड़ीय संप्रदाय के विकास में सहायक विद्वान

1. सार्वभौम भटट्ाचार्य 2. प्रकाशानंद सरस्वती 3. कृष्णदास कविराज 4. नारायणभटट् 5. विश्वनाथ चकवर्ती 6. बलदेव विद्याभूषण 7. नरोत्तम दास

3 . 4 निष्कर्ष

3 . 0 प्रस्तावना

गौड़ीय संप्रदाय चैतन्य देव के द्वारा स्थापित संप्रदाय नहीं है बल्कि उनके अनुयायियों के द्वारा स्थापित संप्रदाय है। यह निश्चित है कि चैतन्य मत के प्रधान थे स्वयं महाप्रभु चैतन्य, नित्यानन्द और अद्वैताचार्य। किन्तु चैतन्यदेव के अनन्तर तीन व्यक्तियों का इस धर्म के प्रचार में विशेष हाथ रहा 1. श्रीनिवास आचार्य 2. श्री नरोत्तम दास 3.श्यामानंद दास। "जहाँ श्यामानन्द ने इस मत का प्रचार–प्रसार उड़ीसा में किया, वहीं अन्य दोनों ने बंगाल में इस मत का प्रचार किया।"[1] किन्तु चैतन्य मत का शास्त्रीय रूप, विधि–विधानों की व्यवस्था, भक्तिशास्त्रों के सिद्धान्तों का निर्माण बंगाल में न हो कर सुदूर वृन्दावन में विद्वान गोस्वामियों के द्वारा किया गया। ये ही लोग इस मत की प्रतिष्ठा तथा सिद्धान्तों की व्यवस्था में नितांत प्रयत्नशील तथा कृतकार्य थे। बाद में चलकर कुछ कविगणों ने भी उनके आदर्शों से अनुप्राणित होकर अपनी कलम चलाई थी। अंततः चैतन्य देव के जिन अनुयायी भक्तों ने ब्रज मंडल में रहकर तथा ब्रज मंड़ल के बाहर रहकर गौड़ीय संप्रदाय के प्रचार–प्रसार के साथ ही साथ गौड़ीय संप्रदाय की धार्मिक प्रगति तथा सांस्कृतिक समृद्धि के लिए अपना योगदान दिया था उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

3 . 1 गौड़ीय संप्रदाय के मान्य षड् गोस्वामी

1 . सनातन गोस्वामी

सनातन गोस्वामी रूप गोस्वामी के भाई थे। उनके पूर्वज कर्णाटक देश के निवासी ब्राह्मण थे। वे किसी कारणवश बंगाल में आकर बस गये थे। इनके पिता कुमार देव थे तथा उनके दो छोटे भाई रूप और अनुपम थे। सनातन का जन्म सं.1545 में हुआ। सनातन तथा अनुज रूप साथ–साथ अध्ययन करते रहे। वे अपनी अध्ययनशीलता के द्वारा समस्त शास्त्रों में पारंगत होकर गौड़ देश के मुसलमान शासक हुसैनसाह के राजकर्मचारी के रूप में नियुक्त हुए। वे स्वभाव से विद्या–प्रेमी तथा भगवद् भक्त थे। अतः अवकाश मिलते ही वे विद्वानों का सत्संग और शास्त्र चर्चा करते थे तथा हरि चिंतन में मन लगाते थे। जिस दिन

चैतन्य के हरिनाम संकीर्तन से बंग भूमि झूम उठी थी; उसी समय उन्होंने चैतन्य देव से मिलने की इच्छा की तथा गुप्त रूप में पत्र द्वारा उन्हें रामकेलि आने की प्रार्थना की ।

प्रेम की पुकार ही भक्ति की पुकार है। भगवान भक्त की आंतरिक पुकार को सुन लेते हैं । चैतन्य देव ने उनके मन की बात को हृदयगंम कर लिया तथा वृन्दावन यात्रा के विचार से शांतिपुर होते हुए गौड़ देश में पहुँचे । वहाँ सनातन तथा रूप को दर्शन देने के लिए रामकेलि में ठहर गये । तत्पश्चात् उन दोनों भाइयों को दर्शन देते हुए नवद्वीप लौट गये । कुछ समय उपरांत जब सनातन तथा रूप ने सुना कि महाप्रभु वृन्दावन के लिए पुनः प्रस्थान कर चुके हैं तब उनके मन में महाप्रभु से मिलने तथा ब्रजधाम देखने की लालसा हुई। कुछ अत्यन्त ज़रूरी राजकीय कार्य के हेतु सनातन जा न सका। किन्तु रूप ने ब्रज यात्रा की और लौटते वक्त प्रयाग में महाप्रभु से मिले। चैतन्य ने रूप को वृन्दावन जाने का आदेश दिया। "रूप–सनातन चैतन्य मत के शास्त्रकर्ता माने जाते हैं। रूप ने उस मत के लिए भक्ति शास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों की विवेचना की और सनातन ने इस मत के आदरणीय नियमों तथा आचारों का विस्तृत विवरण उपन्यस्त किया।"[2] दोनों भाइयों ने मिलकर चैतन्य मत के अनुसार भक्ति के अतंरतत्व आध्यात्म तथा व्यवहार, सिद्धान्त तथा कर्मकांड का नितांत प्रामाणिक रूप प्रस्तुत किया।

सनातन गोस्वामी चैतन्य के प्रमुख पार्षद थे। वे वृन्दावन के सुप्रसिद्ध छः गोस्वामियों में प्रधान थे। उन्होंने अपने छोटे भाई रूप के साथ वैष्णव धर्म ग्रन्थों की रचना और कृष्ण भक्ति के प्रचार में अपना जीवन अर्पित कर दिया था। उन्होंने संस्कृत भाषा में कई महान ग्रन्थ रचना कर चैतन्य संप्रदाय के विकास में अनमोल योगदान दिया है। आपके रचित ग्रन्थ गौड़ीय भक्ति साहित्य की अमूल्य निधियाँ हैं। आपका सर्वमान्य ग्रन्थ है 'हरिभक्ति विलास'। इसमें चैतन्य मत के आचार–व्यवहार और कर्तव्य कर्म संबंधी आवश्यक विधान का विवेचन है। इसमें मूर्तियों का निर्माण, प्रतिष्ठा तथा पूजा का विधान है तथा वैष्णवों की जीवन चर्या का मनोरंजक वर्णन है। महाप्रभु के उपदेशों को सुनकर ही सनातन ने इस ग्रन्थ की रचना की थी । इसमें वैष्णवों की जीवनचर्या वर्णन होने के कारण इसे 'वैष्णव स्मृति' ग्रन्थ कहना उचित होगा। इनके अन्य ग्रन्थों में 'वैष्णव तोषिणी' एक है, जिसमें भागवत की मार्मिक व्याख्या है। भागवत के दशम स्कंध की टिप्पणी रूप में इसकी रचना की गई है। 'बृहत् भागवतामृत' भी आपकी अनुपम कृति है। इसमें श्रीमद्भागवत की विद्वतापूर्ण एवं सरस

व्याख्या की गई है। आपका और एक भक्ति संबंधित ग्रंथ है 'श्रीकृष्ण लीलास्तव', जिसमें भागवत के दशम स्कंध में वर्णित कृष्ण लीलाओं का संक्षिप्त कथन करते हुए श्रीकृष्ण का स्तवन किया गया है।

2 . रूप गोस्वामी

रूप गोस्वामी सनातन गोस्वामी के अनुज थे। वे भक्ति तथा विद्वता के जाज्वल्यमान प्रतीक थे। उन्होंने महाप्रभु चैतन्य देव की विपुल ख्याति तथा भगवन्निष्ठा की कथा सुनकर ऊँचे पद को लात मारकर सन्यास ग्रहण कर लिया था। सनातन की जीवनी में इस बात की ओर संकेत किया जा चुका है कि रूप ने सनातन के साथ चैतन्य देव का सर्व प्रथम दर्शन रामकेलि में किया था। इसके पश्चात् वे पुनः उनसे प्रयाग में मिले थे। "चैतन्य देव ने भली भाँति भक्ति तत्व, रस तत्व और कृष्ण तत्व की शिक्षा देकर रूप को ब्रज–वृन्दावन जाने तथा वहाँ कृष्ण–भक्ति का प्रचार तथा तीर्थों का उद्धार करने का आदेश दिया था।"[3] कुछ समय के बाद सनातन रूप के पास ब्रज आ गये। उन दोनों भाइयों ने महाप्रभु के आदेशानुसार कृष्ण भक्ति के प्रचारार्थ विविध ग्रन्थों की रचना की । चैतन्य देव से प्राप्त शिक्षा को उन दोनों ने स्व प्रणीत कृति में गुंफित कर दिया। इन दोनों का महिमा गान हमें हरिरामव्यास की वाणी से प्राप्त होता है –

"जै जै मेरे प्रान सनातन–रूप
अगतिन की गति दोऊ भैया, जोग–जज्ञ के जूप।।
वृन्दाबन की सहज माधुरी प्रेम सुधा के कूप।
करुना–सिन्धु अनाथ बंधु, जय भक्त–सभा के भूप।।"[4]

रूप गोस्वामी भक्ति तत्व और रस शास्त्रों के महान पंडित थे। उनके द्वारा रचित महान ग्रन्थों की सहायता से चैतन्य संप्रदाय का वास्तविक रूप समाज में बन सका है। उस समय की भक्त मंडली के ये शिरोमणि थे। ये कवि तथा आचार्य दोनों थे। इन्होंने रूचिर नाटकों की रचना कर भगवान श्रीकृष्ण की ललित लीलाओं का बड़ा ही भव्य तथा मधुर वर्णन प्रस्तुत किया है। आपके सुप्रसिद्ध नाटक हैं 'ललित माधव' और 'विदग्ध नाटक'। ललित माधव नाटक में संध्याकालीन विहार, शंखचुड बध, श्रीकृष्ण का मथुरा गमन और राधिका एवं सखियों का विरह, राधाभिसार, चंद्रावली लाभ, ललिता उपलब्धि नववृन्दावन संगम,

नव–वृन्दावन विहार, चित्र दर्शन और पूर्ण मनोरथ नामक 10 अंक हैं। यह कृष्ण विरह का मुख्य ग्रंथ है। 'विदग्ध नाटक' में वेणुवादन विलास, मन्मथ लेख, राधिका संगम, वेणुहरण, राधिका प्रसाधन, शरद विहार और गौरी तीर्थ नामक सात अंक हैं। यह हर्ष की बात है कि स्वयं चैतन्यदेव ने इसकी सराहना करते हुए इसका रसास्वादन करने के लिए राय रामानंद, स्वरूप गोस्वामी आदि पार्षदों से कहा था। 'भक्तिरसामृतसिन्धु' सचमुच वर्तमान भक्ति साहित्य को आपकी अनुपम देन है। यह भक्ति संबंधित विवेचन का सिंधु ही है। जिस सिंधु में एक बार डुबकी लगाने के पश्चात् भक्ति रूपी मोती ही हाथ लगता है। इसमें "इन्होंने भक्ति का रस रूप से शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है।"[5] 'लघुभागवतामृत' ग्रंथ के दो खंड हैं – कृष्णामृत और भक्तामृत। पूर्वखंड में कृष्णावतार का सविस्तार वर्णन मिलता है तथा उत्तर खंड में भक्तों की श्रेणी भेद का प्रतिपादन है। इनके द्वारा रचित 'हंसदूत' तथा 'उद्धवदूत' काव्य की दृष्टि से अत्यंत मधुर काव्य हैं। जिनमें गोस्वामी जी का भक्तिमय हृदय सर्वत्र झलकता है। कहा जाता है कि "मीराबाई के दीक्षा गुरु आप ही थे।"[6] 'मथुरा महिमा' में आपने विविध पुराणों के आधार पर मथुरा मंडल की महिमा का वर्णन किया है। इससे प्रेरणा प्राप्त कर बाद में ब्रज संबंधी अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है।

3 . गोपाल भट्ट गोस्वामी

चैतन्य देव की जीवनी के आधार पर यह ज्ञात होता है कि चैतन्य महाप्रभु की दक्षिण यात्रा के समय महाप्रभु ने आपके घर में चातुर्मास्य बिताया था। ये दक्षिण के श्रीरंगम् क्षेत्र के वेंकट भट्ट के पुत्र थे। चैतन्य के इनके घर में चातुर्मास्य बिताने के समय में महाप्रभु के द्वारा संकीर्तन तथा भगवद्चर्चा से उनके घर में समस्त लोगों के मानस ने भक्ति सरोवर में शुद्धस्नान कर लिया था। अंततः गोपालभट्ट महाप्रभु से अनुप्राणित होकर तभी से उनके भक्त बन गये थे। गोपाल भट्ट गोस्वामी वैष्णव धर्मग्रन्थों के ज्ञाता, परम विद्वान और विरक्त भक्त थे। उनके एक शिष्य श्रीनिवासाचार्य थे, जो सुप्रसिद्ध विद्वान और भक्त थे। उनके अन्य शिष्य गोपीनाथ थे, जो राधारमण जी की सेवा करते थे। गोपीनाथ विरक्त वैष्णव थे।

गोपालभट्ट जी की प्रमुख रचना 'हरिभक्ति विलास' है। यह वैष्णव स्मृति ग्रन्थ सनातन गोस्वामी द्वारा रचित है। किन्तु इसका विस्तार गोपाल भट्ट ने किया है।[7] जीव गोस्वामी कृत 'षट् संदर्भ' की कारिका भी गोपालभट्ट जी के द्वारा रचित है। 'कृष्ण कर्णामृत' की

कृष्णवल्लभा टीका भी उनके द्वारा रची हुई कही जाती है। "किन्तु उसके रचयिता कोई अन्य गोपालभट्ट कहे जाते हैं।"[8]

4. रघुनाथ गोस्वामी

रघुनाथ गोस्वामी षट् गोस्वामियों में दास गोस्वामी नाम से प्रसिद्ध हैं। ये जाति में कायस्थ थे किन्तु अपनी उत्कट भक्ति तथा दिव्य चरित्र के कारण ब्राह्मण वंशी गोस्वामियों में भी अग्रगण्य माने जाते थे।[9] उनके परिवार वाले कोई वैष्णव न होने के बाद भी वैष्णवों के प्रति श्रद्धा की भावना रखा करते थे। उनके परिवार के कुल पुरोहित अद्वैत प्रभु की शाखा के यदुनंदनाचार्य थे। उनसे ही आपने दीक्षा ली थी। रघुनाथदास गोस्वामी की जीवनी से यह तथ्य उपलब्ध होता है कि शांतिपुर में अद्वैताचार्य के घर पर चैतन्य महाप्रभु से मुलाकात होने के पश्चात् उन्होंने चैतन्य देव को ही अपना सर्वस्व समझ लिया था। वे चैतन्य के प्रेम में पागल प्रायः हो गये थे। किन्तु घर वालों ने उनका बाहर जाना बंद कर दिया था। अवसर पाते ही उन्होंने छिपकर महाप्रभु के निवास स्थान नीलाचल को प्रस्थान कर दिया था। नीलाचल में महाप्रभु ने उनके वैराग्य से परिचित होकर अपने सहकारी भक्त स्वरूप गोस्वामी को उनका अभिभावक नियुक्त कर उन्हें आदेश दिया था कि वे रघुनाथ को यथोचित शिक्षा दें और उनकी देख–रेख करें। नीलाचल में 16 वर्ष रह कर रघुनाथ दास ने चैतन्य की अनन्य भाव से सेवा की थी । उनकी निष्ठा से प्रसन्न होकर चैतन्य ने अपनी 'गोवर्द्धन शिला' और 'गुंजामाला' प्रसादी रूप में उनको प्रदान की थी। चैतन्य महाप्रभु तथा स्वरूप दामोदर के तिरोधान के पश्चात् वे अत्यंत. निस्सहाय होकर नीलाचल से ब्रज आ गये थे। यहाँ पर ये "ब्रजवासियों को चैतन्य देव की नीलाचल लीलाओं की वार्ता सुनाया करते थे।"[10] आपके द्वारा प्रोत्साहित होकर कृष्णदास कविराज ने वृद्धावस्था में 'चैतन्य चरितामृत' जैसे महान ग्रन्थ की रचना कर ड़ाली थी। इनकी रचनाएँ स्तोत्र रूप में ही अधिक पाई जाती हैं। जिनमें विलाप कुसुमांजली, राधाष्टक, नामाष्टक, उत्कंठ दशक, अभीष्ट प्रार्थनाष्टक, अभीष्ट सूचना, शचीनंदन शतक आदि मुख्य हैं।

5 . रघुनाथभट्ट गोस्वामी

रघुनाथ भट्ट काशी के सुप्रसिद्ध भक्त तपन मिश्रजी के सुपुत्र थे । इन्हीं तपन मिश्र के घर पर महाप्रभु ने काशी में निवास किया था । तपन मिश्र जी चैतन्य महाप्रभु के

समाधिक भक्त अनुयायी थे। रघुनाथ भट्ट जी का हृदय भी अपने पिता जी के समान नवनीत सा कोमल था। वे चैतन्य महाप्रभु के काशी प्रवास के समय उनसे अत्यंन्त प्रभावित होकर उनके परम भक्त बन गये थे। पुनश्च नीलाचल में अपको चैतन्य महाप्रभु की संगति प्राप्त हुई थी। इस समय उन्होंने महाप्रभु के साथ रहने की अत्यंत इच्छा की । किन्तु वृद्ध माता–पिता का देखभाल करने के लिए महाप्रभु ने उन्हें आदेश दिया । कुछ समय के बाद उनके माता–पिता का देहांत हो गया । तदोपरांत वे पुनः संसार से विरक्त होकर चैतन्य महाप्रभु की सेवा में उपस्थित हुए । उस समय उन्होंने चैतन्य मंडली में रहकर वैष्णव शास्त्रों का अध्ययन कर साध्य–साधन तत्व की भली प्रकार शिक्षा प्राप्त की ।[11] तत्पश्चात् चैतन्यदेव ने उन्हें वृन्दावन जाने की आज्ञा दी । उन दिनों वृन्दावन में रूप–सनातन भक्ति ग्रन्थों की रचना कर पंडितों में गौड़ीय भक्ति तत्व का प्रचार कर रहे थे। किन्तु साधारण जनता में कृष्णभक्ति के प्रचार का कार्यभार रघुनाथ भट्ट को दिया गया। कृष्णदास कविराज ने 'चैतन्य चरितामृत' में रघुनाथ भट्ट की कथा–शैली के संबंध में लिखा है कि –

"पिक कंठस्वर ताने रागरे विभाग।
एक श्लोक पठित फिराय तीन–चारी राग।।"[12]

यद्यपि इनके द्वारा रचा हुआ कोई भी ग्रन्थ प्रसिद्ध नहीं है, फिर भी इन्होंने अपनी राग–रागिनी के सुमध स्वर से चैतन्य संप्रदाय के दार्शनिक तत्वों को लोगों में बाँटा है। उस समय वृन्दावन के समस्त लोग रघुनाथ भट्ट की मधुर कंठ सें कही हुई कथा का रसास्वादन कर अपने–अपको धन्य मानते थे।

6. जीव गोस्वामी

जीव गोस्वामी रूप–सनातन के अनुज अनूप के पुत्र थे। 'दुर्गम संगमनी' टीका के आरंभ में इन्होंने अपने पितृव्यों का निर्देश दिया है –

"सनातनसमो यस्य ज्यायान् श्रीमान् सनातनः
श्रीवल्लभोऽनुजो योऽसौ श्रीरूपो जीवसद्गतिः।।"[13]

रूप–सनातन की वैरागी छाप उनके भतीजे जीव पर पड़ी थी । अर्थात् जीव गोस्वामी उन दोनों से अत्यन्त प्रभावित हुए थे । रूप–सनातन के अपूर्व वैराग्य और भक्ति पूर्ण जीवन का उज्ज्वल आदर्श आरंभ से ही जीव के सम्मुख था । इससे प्रेरित होकर उन्होंने अल्पायु में

वैराग्य जीवन बिताना शुरू कर दिया था। उस समय चैतन्य महाप्रभु का देहांत हो चुका था; फिर भी वे चैतन्य महाप्रभु से इतने पाभावित थे कि उनके जन्म स्थान के दर्शन हेतु नवद्वीप चल दिये थे। वहाँ पर उनकी भेंट नित्यानंद प्रभु से हुई थी । नित्यानंद ने उन्हें यह सलाह दी कि वे वृन्दावन में अपने पितृव्यों के साथ रहकर उनका अनुगमन करें। आदेश पाते ही वे ब्रज की ओर चल दिये । रास्ते में उन्होंने कुछ दिन ठहरकर सार्वभौम भट्टाचार्य के शिष्य मधुसूदन वाचस्पति के पास वेदान्तादि विविध शास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। तत्पश्चात् वृन्दावन पधार कर अपने पितृव्य रूप गोस्वामी से दीक्षा ली और उन्हीं के साथ रहकर श्रीमद्भागवतादि वैष्णव भक्तिग्रन्थों का विशेष रूप से अध्ययन किया । उन्होंने आजीवन ब्रह्मचारी रहकर निष्ठापूर्ण जीवन व्यतीत किया तथा अपने यशस्वी पितृव्यों के सुयोग उत्तराधिकारी के रूप में भक्ति के विकास में पूर्ण योगदान दिया । जिसकी झलक हमें नाभादास कृत 'भक्तमाल' से प्राप्त होती है –

"संदेह–ग्रन्थि छेदन समर्थ, रस–रास–उपासक परम धीर।
रूप–सनातन–भक्ति जल, जीव गुसाईं सर गंभीर।।"[14]

रूप–सनातन गोस्वामियों की मृत्यु के पश्चात् जीव गोस्वामी ने ही गौड़ीय वैष्णव धर्म के प्रचार–प्रसार में अशेष योगदान दिया था । ये चैतन्य मत के महान विद्वान और व्याख्याता माने जाते हैं । उन्होंने अपनी महत्वपूर्ण रचनाओं के आधार पर इस संप्रदाय के मतों को तात्विक रूप से सुदृढ़ किया । उन्होंने कुछ स्वतंत्र रूप से रचनाएँ भी की हैं तथा कुछ अपने पितृव्य रूप–सनातन कृत रचनाओं पर टीकाएँ लिखी हैं । भजन और भक्ति–ग्रंथ प्रणयन ही इनके जीवन का महान व्रत था । इनके ग्रन्थ गौड़ीय वैष्णव संपद्राय के सिद्धान्तों के प्रकाश स्तंभ हैं । जिनमें इनकी दार्शनिक विद्वता पाठकों को पद–पद पर आश्चर्य चकित करती हैं।[15] 'षट् संदर्भ' आपका विद्वतापूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें भागवत विषयक छः निबंधों का सुन्दर वर्णन किया गया है। इन निबंधों का नाम है – तत्व संदर्भ, भगवत्संदर्भ, परमात्म संदर्भ, कृष्णसंदर्भ, भक्ति संदर्भ और प्रीति संदर्भ । 'सर्व संवदिनी' ग्रन्थ षट् संदर्भ की अनुव्यख्या है। 'कम संदर्भ' ग्रन्थ गौड़ीय वैष्णव सिद्धांतानुकूल समस्त भागवत की विद्वतापूर्ण टीका है । 'दुर्गम संगमनी' उनके पितृव्य रूप गोस्वामी कृत 'भक्तिरसामृतसिन्धु' की महत्वपूर्ण टीका ग्रंथ है तथा 'लोचन रोचनी' भी रूप गोस्वामी कृत दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'उज्ज्वलनीलमणि' की टीका है। उपरोक्त ग्रथों के अलावा जीव गोस्वामी जी की अन्य रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं।

लघु तोषिणी, धातु संग्रह, हरिनामामृत व्याकरण, सूत्र मालिका, राधाकृष्ण चैनदीपिका, गोपाल विरुद्धावली, माधव महोत्सव, संकल्प कल्पद्रुम, गोपालचंपु, भक्तिरसामृत शेष, गोपाल तापिनी टीका और योगसार स्त्रोत्र टीका आदि उनकी अमर रचनाएँ हैं ।[16] यह निःसंदेह है कि छः गोस्वामियों में से जीव गोस्वामी प्रौढ़तम विद्वान थे।

अतंतः इन छः गोस्वामियों के बारे में यह कहा जा सकता है कि गौड़ीय संप्रदाय में उपरोक्त छः गोस्वामियों का वही स्थान है जो वल्लभ संप्रदाय में अष्टछाप कवियों का है। सिर्फ अंतर इनमें इतना ही है कि ''जहाँ गौड़ीय गोस्वामियों ने अपनी रचना संस्कृत भाषा में की थी वहाँ अष्टछाप के कवियों ने देशी भाषा में की थी।''[17]

3 . 2 गौड़ीय संपद्राय के विकास में सहायक कवि

चैतन्य देव की कृपा से उनके पार्षद गोस्वामियों ने ब्रज को अपनी साधना भूमि बनाकर राशि–राशि ग्रन्थों का प्रणयन किया तथा मधुरा भक्ति के विविध आयामों में ब्रज प्रदेश को रसमय कर दिया । अतंतः चैतन्य मत के आधार पर रचित ब्रज साहित्य के सिंहावलोकन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि ''इसका सर्वोत्तम भाग माधुर्य भक्ति की वे सरस पदावलियाँ हैं; जिनकी रचना सर्वश्री रामराय, सूरदास मदनमोहन, गदाधर भट्ट, माधुरी जी, बल्लभ रसिक तथा रामराय जी के शिष्य भगवान दास; उनके अनुज चंद्रगोपाल और उनके वंशज राधिकानाथ, ब्रह्म गोपाल आदि भक्त कवियों ने की हैं।''[18] यह ध्यान रहे कि बाबा कृष्णदास ने सर्वप्रथम चैतन्य संप्रदाय के ब्रज भाषा काव्य ग्रन्थों को खोजकर प्रकाशित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया था ।[19] चूंकि बाबा कृष्णदास का ध्येय चैतन्य संप्रदाय के अधिकाधिक ग्रन्थों को प्रकाश में लाना था और इसके लिए वे ग्रन्थों की पांडुलिपियों को मुद्रित कराने में लगे रहे ।

जिस प्रकार चैतन्य देव के आरंभिक भक्तों के शिष्यों–प्रशिष्यों द्वारा चैतन्य मत का विस्तार हुआ, उसी प्रकार इसके साहित्य का भी सृजन हुआ। ''इस मत के ब्रज भाषा साहित्य की सबसे अधिक रचनाएँ श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी और श्री नित्यानन्द जी के तथाकथित शिष्य श्री रामराय जी के परिकर द्वारा वृन्दावन में हुई हैं।''[20] 'चैतन्य संप्रदाय' का ब्रजभाषा काव्य–साहित्य मात्रा में विपुल है । अतः सबका विस्तृत परिचय देना यहाँ संभव

नहीं है । इसी कारण प्रमुख कवियों तथा उनके ब्रजभाषा काव्य–साहित्य का परिचय संक्षिप्त में यहाँ दिया गया है ।

यह ध्यातव्य है कि हमारे शोध विषय का संबंध मध्यकाल के हिन्दी कृष्ण काव्य के साथ है । इसकी अवधि सं .1900 तक मानी गयी है। इसीलिए यहाँ कवि परिचय के संदर्भ में ब्रजभाषा के सं .1900 तक के कवियों का परिचय विशेष उल्लेखनीय है। ध्यातव्य है कि इस समय के पूर्व तक इस संप्रदाय के साहित्य का भाव तथा भाषा दोनों ही दृष्टियों से अधिक महत्व है । इसमें भी सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी का साहित्य भावोन्मेष की दृष्टि से अधिक गंभीर प्रतीत होता है । युग प्रवाह के साथ भक्ति का उन्मेष जैसे–जैसे क्षीण होता गया उसकी वाग्धारा भी वैसे–वैसे रसाभिषेक न कर सकी । उपरोक्त विश्लेषण के उपरांत चैतन्यमत के ब्रजभाषा साहित्य का सृजन करने वाले कवियों के संक्षिप्त जीवन वृत्त और उनकी रचनाओं के कतिपय उदहारण यहाँ प्रस्तुत हैं ।

1 – माधवदास जगन्नाथी

जगन्नाथी छाप से यह स्पष्ट होता है कि ये जगत् के नाथ नीलाचल निवासी प्रभु जगन्नाथ का अनन्य भक्त थे । चैतन्य संप्रदाय के आरंभिक ब्रजभाषा कवियों में माधवदास जगन्नाथी का प्रमुख स्थान है । नाभादासजी के 'भक्तमाल' से इनका परिचय प्राप्त होता है । इनके अनुसार ''संस्कृत साहित्य में जो स्थान महर्षि द्वैपायन वेदव्यास का है, वही स्थान ब्रजभाषा साहित्य में माधवदास का है ।''[21] इनके जन्म स्थान तथा देहावसान के समय का सिर्फ अनुमान लगाया जा सकता है । उन्हें चैतन्य महाप्रभु के समकालीन माना जाता है । ये चैतन्य महाप्रभु के दादागुरु श्री माधवेंन्द्र पुरी के शिष्य थे।[22]

माधवदास जगन्नाथी के जीवन वृत्तान्त के संबंध में कुछ सूत्रों का उल्लेख प्रियादास जी ने 'भक्तमाल टीका' में किया है । उनके अनुसार ये द्विज कुलोत्पन्न थे और इनके स्त्री पुत्रादिक थे। पत्नी की असमय मृत्यु होने से वे संसार के प्रति वरिक्त होकर पुरी जगन्नाथ के आश्रित हुए थे । नाभाजी ने 'भक्तमाल' में उनके जीवन वृत्तान्त की अपेक्षा उनकी विद्वता, भक्ति और वैराग्य–वृत्ति का कथन किया है । अपने अंत समय में ये नीलाचल पुरी में थे। उनके संबंध में यह बात मिलती है कि वे चैतन्य महाप्रभु के गुरु, ईश्वर पुरी के गुरुभाई होने के नाते महाप्रभु चैतन्य के गुरू समान थे। किन्तु जिस प्रकार ईश्वर पुरी जी के अन्य गुरुभाई

सर्वश्री नित्यानंद और अद्वैताचार्य बाद में स्वयं चैतन्यदेव के अनुगत हो गये थे; तो ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि माधवदास भी हुए होंगे ।[23] इसीलिए उन्हें चैतन्य संप्रदाय के अतंर्गत स्थान दिया जाता है । यह भी तथ्य उपलब्ध होता है कि जगन्नाथ पुरी में अनेक दिनों तक रहने के कारण चैतन्य संप्रदायियों के संसर्ग में आकर उन्होंने स्वयं भक्ति पूर्ण रचनाएँ कर ड़ाली थीं । इन्होंने अपनी रचनाओं में जगन्नाथ के महत्त्व का प्रतिपादन करने के साथ–साथ चैतन्य संप्रदाय की भक्ति के प्रधान तत्व 'संकीर्तन' के महत्व का भी प्रतिपादन किया है। इससे इनके चैतन्य संप्रदायी होने की धारणा पुष्ट होती है ।

रचनाएँ : कहा जाता है कि इन्होंने संपूर्ण 'महाभारत' और 'इतिहास कथा सार समुच्चय' जैसे विशाल संस्कृत ग्रन्थों का ब्रजभाषा में अनुवाद किया था । "ब्रज साहित्य मंडल के प्रयत्नों द्वारा इसका एक खंडित अंश खोज निकाला गया हैं ।"[24] बाबा कृष्णदास ने माधवदास जी की रचनाओं का प्रकाशन 'माधवदासजी की वाणी' के नाम से सं. 2020 में किया हैं, जिसमें उनके जीवन परिचय के साथ–साथ उनकी रचनाएँ सम्मिलित हैं – बाललीला, जनराय लीला, जनम–करम लीला, रथ लीला , ध्यान लीला, स्वयंवर लीला, रघुनाथ लीला, नारायण लीला, परतीति लीला, ग्वालिनी झमरों एवं कुछ स्फुट पद । इनकी समस्त रचनाओं में 'माधवदास जगन्नाथी' नाम की छाप प्रयुक्त हुई है ।[25] माधवदास की वाणी में संकलित इनकी रचनाओं का सक्षिप्त परिचय आगे दिया जा रहा है ।

बाललीला में कृष्ण की बाल क्रीडाओं के बारे में विशद वर्णन मिलता है। यह अत्यन्तसरल, मधुर ब्रजभाषा में लिखित है । इसमें बालक कृष्ण की चपलताओं, गोपियों का उपालंभ तथा माता यशोदा की वात्सल्यता की सुन्दर एवं स्वाभाविक व्यंजना हुई है। **जनराय लीला** में श्रीमद्‌भागवत में वर्णित कृष्ण लीलाओं को अति संक्षिप्त में बताया गया है । **जनम करम लीला** कृष्ण के जन्म से लेकर द्वारका राज्य पर्यन्त सारे विषयों से संबद्धित है। इसमें हरिनाम तथा हरिलीला को ही कर्म बताया गया है । संकीर्तन तत्व का महत्व इस रचना में निम्नलिखित रूप में प्रतिपादित हुआ है –

"हरि कीर्तन बिना भव समूह को नाहीं निसतारा।
जिह्वा पाई नर सरीर जे हरि कीरतन न करहीं ।
श्री वैकुंठ नसैनि पाई मूरख खिसि परहीं ।।"[26]

रथलीला में जगन्नाथ जी की रथयात्रा करते समय की लीला का वर्णन है। गुण्डिचा मार्जन तथा रथयात्रा का चैतन्य संप्रदाय में विशिष्ट महत्व है। इससे माधवदास का चैतन्य संप्रदायी होना व्यंजित होता है। इसमें जगन्नाथ जी की रूप–शोभा का संस्कृत गर्भित पदावली में बड़ा मनोहरी चित्रण हुआ है। **ध्यान लीला** उपासना से संबंधित रचना है। इस रचना में ध्यान निष्ठा और वृन्दावन भावना का बड़ी सुललित पदावली में संप्रदाय की धार्मिक भावना के अनुरूप वर्णन किया गया है। इसमें गदाधर भट्ट की प्रांजल पदयोजना के सदृश योगपीठ का वर्णन है। **स्वयंवर लीला** भागवत, पुराण आदि कृष्ण लीला से संबंधित ग्रंथों पर आधारित है । इसमें कृष्ण और रुक्मिणी की स्वयंवर कथा है। **रघुनाथ लीला** में वाल्मीकि रामायण, विष्णु पुराणादि पर समाधृत रामकथा है। रघुनाथ लीला की पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं –

"हा लछमन हा रामचंद्र, आवहु किन धाई
हे वन पर्वत कहियो, जब आवहिं रघुराई।।
हे गोदावरि तुम्हारे, पायन परि लागौं ।
है खग मृग जीवजिते , तुम पै यह मागौं।
हे हे वनासपंति कहियों राम रावण हरि लीनो ।
ए सब बचन बिलाप सुनत पंछी धुन कीनी।।"[27]

नारायण लीला में जगन्नाथ नारायण की रूप शोभा व लीला का चित्रण है। जगन्नाथ जी की एक स्तुतिपरक रचना जगन्नाथ महात्म्य के नाम से उपलब्ध होती है, जिसका देखने पर नारायण लीला एवं जगन्नाथ महात्म्य एक ही पुस्तक के दो नाम जान पड़ते हैं। **परितीति लीला** में राधा–कृष्ण की मधुर लीला का वर्णन अत्यन्त सरस रूप में किया गया है । माधुर्य के विस्तार के लिए छद्म लीलाओं की प्रसंगोद् भावना चैतन्य संप्रदाय की विशेषता है, जिसका निर्वाह इस रचना में हुआ है । इसे 'प्रीति परीक्षा' के नाम से भी जाना जाता है । इस रचना का विषय मधुर रति है। **ग्वालिन झगरौ** में श्रीकृष्ण के बाल–विनोद का चलती ब्रज भाषा में सहज–स्वाभाविक वर्णन हुआ है.। इसमें कृष्ण–गोपियों के मध्य मधुर झगड़ा, गोपियों की शिकायत एवं यशोदा द्वारा गोपियों को फटकारना आदि विषय वर्णित हैं । उदाहरणार्थ एक छंद द्रष्टव्य है –

"या लीला है कहत सुनत कछु वनि नहीं आवत,
पढ़ै गुणै चित लाय वास वृन्दावन पावै ।
कुंज कुंज लीला करी जहा जहा धरि पाय,
उन कुंजन की झलक पै माधोदास बलिजाय तुम्हारै ही राज है।।"[28]

उपर्युक्त रचनाओं के अलावा और कुछ रचनायें अभी–अभी प्रकाश में आयी हैं, जो पहले 'माधव दास जी की वाणी' में सम्मिलित नहीं थीं । ये निम्न लिखित हैं – "जयजय व जयति, हनुमान जयति, नृसिंह जयति, स्फुट पद आदि ।"[29]

2 . 2 आनंदघन

ब्रज साहित्य के इतिहास से यह बात ज्ञात होती है कि आनंदघन नाम के तीन कवि हुए हैं । किन्तु जिस आनंदघन की बात चैतन्य संप्रदाय में की गई है यह वही आनंदघन है, जो नंदगाँव के मंदिर के देवविग्रहों का सेवक था । "ब्रज–वृन्दावन की यात्रा के दौरान चैतन्य महाप्रभु उस मन्दिर में देव दर्शन के लिए पधारे थे। तब वह महाप्रभु से अनुप्राणित होकर उनके अनुगत हो गये थे।"[30] श्री विश्वनाथ प्रसादजी मिश्र ने चैतन्यदेव से आंनदघन के मिलने का समय सवंत् 1563 लिखा है।[31] पहले यह बताया गया है कि आनंदघन नाम के तीन कवि थे । इनमें रीतिकाल के प्रमुख कृष्ण प्रेमदिवाने कवि घनानंद भी आते हैं। यह घ्यातव्य है कि आनंदघन के नाम से बहुत से पद उपलब्ध होते हैं। उनमें अधिकांश रीतिकालीन कृष्णकवि घनानंद के माने जाते हैं। ऐसे 1057 पदों का संकलन श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने किया है।[32] मिश्र जी के अनुसार वे समस्त पद सुजान प्रेमी घनानंद के हैं । किन्तु प्रभुदयाल मीतल जी ने अनुमान पर बताया है कि इनमें से कुछ पद आनंदघन के भी मिलते हैं।[33] उन्होंने यह भी खोज निकाला है कि आनंदघन के रचे हुए कुछ पदों का गायन भी नंदगाँव के मंदिर में किया जाता है। जिससे चैतन्यदेव की वंदना की सूचना मिलती है । ऐसे ही एक पद यहाँ प्रस्तुत है –

"श्री चैतन्य दयानिधि धीर।
कलि कालीन मलीन दीन जन, पावन करन परम गंभीर ।।
पूरन चंद नंदनंदन कौ उदै, सदा उमगन की भीर ।
बोहित नाव चढ़ाये बहुजन, प्रेम मगन करि पठाये तीर ।।

भाव–तरंग अभंग–भंग गति, महा मधुर रस रूप सरीर ।
निज जन रतन जाल युत राजत, धुन–हूंकार उसाँस समीर ।।
त्रिविध ताप तें जरे जीव जे , सीतल किये परस पद–नीर ।
करुना दृष्टि वृष्टि सों सींचे, जय–जय–जय 'आनंदमुदीर'।।"[34]

यह ध्यान रहे कि उपरोक्त पद सुजान प्रेमी घनानंद की पदावली में कुछ पाठ भेद के कारण संकलित मिलता है। तब इस आधार पर हम निःसन्देह कह सकते हैं कि रीतिकाल के घनानंद भी चैतन्य संप्रदाय के अतंर्गत हो सकते हैं। अथवा संकलन कर्ता की द्वन्द्वात्मक समझदारी से इस तरह की स्थिति उपजी होगी । अतंतः वे पद जो कि चैतन्य संप्रदाय की भावना के अनुकूल हैं और नन्दगाँव–बरसाने लीला और उत्सवों से संबंधित हैं वे नन्दगाँववासी आनंदघन की रचनाएँ मानी जा सकती हैं ।

2 . 3 रामराय :

रामराय जी ब्रजभाषा के एक उत्कृष्ट वाणीकार थे। वृन्दावनस्थ चैतन्यमतानुयायी श्री यमुनावल्लभ जी गोस्वामी की वंश–सामग्री के अनुसार रामराय जी उनकी वंश परंपरा में 'गीतगोविन्द' के रचयिता श्री जयदेव की 11 वीं पीढ़ी में हुए थे। नाभाजी कृत 'भक्तमाल' में उन्हें सारस्वत्व ब्राह्मण, भक्त, ज्ञानी, विरक्त योगी और कथा कीर्तन में मग्न रहने वाला साधु सेवी बतलाया गया है। इस संबंधित पंक्तियाँ निम्न लिखित हैं – "भक्ति, ज्ञान, वैराग, जोग अंतरगति पाग्यौ।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मतसर सब त्याग्यौ।
कथा, कीरतन, मगन, सदा आनंद–रस झूल्यौ ।
संत निरखि मनमुदित , उदित रबि पंकज फूल्यौ।।"[35]

'दो सौ बावन वैष्णवन की बार्ता' के अंत में 'रामराय हित भगवानदास' की बार्ता है । इससे यह मालूम होता है कि रामराय, गोस्वामी विट्ठलनाथ के सेवक और चैतन्यमतानुयायी भगवानदास के पुरोहित थे।[36] रामराय जी पहले वल्लभ मतानुयायी थे पर बाद में वे चैतन्य मत की ओर आकर्षित हो गये थे।[37] चैतन्य मत में उन्हें श्री नित्यानन्द जी का शिष्य और श्रीचैतन्यदेव का अनुगामी माना जाता है। संप्रदाय में नित्यानंद जी को अनंग मंजरी का

अवतार माना जाता है। रामराय ने अपनी रचनाओं में अनंग सखी का उल्लेख एवं मंगल स्मरण किया है । उदाहारणार्थ द्रष्टव्य है –

"बंदौ श्री गुरु गौर पद, जगमग जोति अभंग।
मिल अनंग मंजरि सहित, एक अंग दो रंग ।।"[38]

अपने पद में उन्होंने स्वयं नित्यानन्द से भेंट का उल्लेख करते हुए अपने हृदय सरोवर के पंकजों का नित्यानन्द रूपी रवि से खिलाना बताया है। 'सेवाप्रणालिका' में "रामराय जी को चैतन्य महाप्रभु का पार्षद कहा गया है।"[39] यमुनावल्लभ जी द्वारा प्रकाशित 'आदिवाणी' के मंगला चरण में ही रामराय जी ने चैतन्य महाप्रभु और उनके सहकारी पार्षद – नित्यानंद, अद्वैत, गदाधर आदि भक्तों की वंदना की है, जो निम्न प्रकार है –

"मंगल जय श्री गौर किशोर ।
मंगल श्री वृन्दावन भूषण राधाभाव रसिक सरोबर।।
मंगल नवद्वीप पंडितवर जगन्नाथ आनंद विभोर।
श्री नित्यानन्द अद्वैत गदाधर श्रीवासादि चतुर चितचोर ।
श्री रामराय जग धंधे त्यागे मंगल भयौ लग्यौ इन ओर ।।"[40]

उपर्युक्त विवेचन के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचना शायद द्वन्द्वात्मक हो जाता है कि रामराय जी वल्लभसंप्रदायी थे या चैतन्य संप्रदायी । यह निःसंदेह है कि भले ही वह वल्लभ संप्रदाय की ओर आकृष्ट हुए हों; फिर भी उन्हें सच्चा चैतन्य संप्रदायी मानना चाहिए । रामराय जी के अनेक शिष्य हैं, जिनमें भगवान दास सहित 12 मुख्य बतलाये जाते हैं । रामराय जी वृन्दावन में राधा–माधव वाटिका में निवास करते थे । आप निश्चित रूप में संस्कृत के एक महान विद्वान हैं जो आपकी रचनाओं से स्पष्ट होता है। नीचे आपकी रचनाओं का संक्षिप्त परचिय दिया जा रहा है –

आदि वाणी रामराय जी की पहली रचना है । यह न सिर्फ उनकी पहली रचना है बल्कि चैतन्य संप्रदाय की पहली या आदि रचना होने से इसका नामकरण 'आदि वाणी' किया गया है। इसमें माधुर्यभाव परक पदों की विविधता पाई जाती है। मसलन राधाकृष्ण की अष्टकालिक नित्य सेवा–लीला, वसंत आदि के विभिन्न उत्सव, सांझी, रथयात्रा, भक्ति सिद्धांत, प्रिया–प्रियतम का मधुर मिलन, रस केलि, मान और निकुंज विहार लीला आदि हैं ।

गीत गोविंद भाषा : जयदेव कृत 'गीत गोविंद' का ब्रजभाषा में यह सरस पद्यानुवाद है। "रामराय जी ने गीत गोविंद को निजकुल की रचना कहा है।"[41]

स्वप्न लीला रामराय कृत एक छोटी रचना है । जिसको यमुनावल्लभजी ने प्रकाशित किया है। श्रीराधिकानाथ कृत 'महावाणी' में यह संकलित है। इसमें राधा के स्वप्न में कृष्ण का आगमन तथा लीला रस का वर्णन है ।

2 . 4 सूरदास मदनमोहन

चैतन्य संप्रदाय में जिन–जिन कवियों की चर्चा हुई है, उनमें सूरदास मदनमोहन सूर ही साबित हुए हैं । 'भक्तमाल' एवं प्रियादास कृत 'भक्तिरस बोधिनी टीका' में उनके विषय की प्राथमिक सामग्री मिलती है । यह ध्यातव्य है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास के भक्तिकाल में अनेक सूरदास नाम के कवि मिलते हैं पर यह निश्चित है कि अष्टछापी सूरदास का स्थान जिस तरह वल्लभ संप्रदाय में मान्य है उसी तरह चैतन्य संप्रदाय में सूरदास मदनमोहन का । "वे सनातन गोस्वामी के शिष्य थे तथा उनके सेव्य–ठाकुर श्री मदनमोहन की पूजा किया करते थे। जिसके लिए उनके नाम के साथ मदन मोहन की छाप लगी हुई है । ये सुप्रसिद्ध कवि अष्टछापी सूरदास की तरह नेत्र हीन नहीं थे।"[42] वे राजा अकबर के राजकीय नौकर थे फिर भी उनकी रुचि भगवत् भक्ति में थी । प्रियादास कृत 'भक्तिरस बोधिनी टीका' में इनके बारे में यह कहा गया है कि वह ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे । इनका नाम सूरध्वज था –

"सूरध्वज द्विज निज महल टहल पाय,
चहल पहल हिय जुगल प्रकास है ।"[43]

रचनाएँ : सूरदास मदनमोहन ने श्रृंगार भक्ति रस के अनेक सरस पदों की रचना की हैं । नाभादास जी ने अपनी रचना 'भक्तमाल' में इनकी प्रशंसा करते हुए यह लिखा है कि "नव रसों में प्रधान श्रृंगार रस को उन्होंने पूरी तरह आत्मसात् कर अपनी तुलिका से सुरुपायित कर दिया है ।"[44] सूरदास मदनमोहन ने किसी ग्रंथ की रचना न कर कुछ स्फुट पद ही रचे थे । ऐसा माना जाता है कि उन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध का ब्रजभाषा अनुवाद भी किया है, किन्तु यह ज्ञात नहीं है कि इसको संपूर्ण किया गया है या नहीं। इनके कुछ सरस पदों

की रचना उनके जीवन काल में भी ब्रज के मंदिरों में गाये जाते थे । आपके पद विभिन्न संप्रदायों की कीर्तन पोथियों में संकलित हैं । बाबा कृष्णदास ने सूरदास मदनमोहन के कुछ पदों का संकलन 'श्री सूरदास मदनमोहन की सुहृद वाणी' नाम से प्रकाशित किया है । इसकी रचना शैली अत्यंत सरस एवं मधुर है । इसमें राधा-कृष्ण की केलि-कीडाएँ, दान, मान, खंडिता, अभिसारिका, विरह, अनुराग, बसंत, होली, रास, वर्षा विषयक लीलाओं का सरस वर्णन हुआ है । ये सभी विषय चैतन्य संप्रदाय की स्वीकृत भावोपासना के अनुरूप तथा 'अष्टयाम' सेवा उपासना के अनुकूल हैं।[45]

सर्व प्रथम राधारमण गोस्वामी जी ने सूरदास मदनमोहन के 14 पद श्री वियोगी हरिजी को भेज कर इनके पदों की पृथकता का परिचय दिया है। जो स्वयं वियोगी हरिजी ने अपनी कृति 'ब्रजमाधुरीसार' में स्वीकारा है ।[46] इनकी रचनाओं में श्रृगांर की उद्दाम सरिता प्रवाहित होती नज़र आती हैं । "डा. शरणबिहारी गोस्वामी ने इनकी रचनाओं में सखीभाव की उपासना व अभिव्यंजना लक्षित की है ।"[47] डा. सरयू प्रसाद अग्रवाल ने "किसी वर्षोत्सव पोथी से इनके 14 पदों का संपादन अपने शोध प्रबंध में किया है।"[48] अतंतः हम उनकी सारी रचनाओं की प्रामणिकता सिद्ध करने के उपरांत यह कह सकते हैं कि चैतन्यसंप्रदाय के विकास में इनका योगदान कम नहीं है।

2 . 5 गदाधर भट्‌ट

चैतन्य संप्रदाय में ऐसे कुछ कवियों का नाम मिलते हैं जो भ्रामक प्रतीत होते हैं। अब गदाधर भट्‌ट नाम सुनते ही हमें यह मालूम होता है कि ये वही गदाधर हैं, जो चैतन्य महाप्रभु को भागवत सुनाया करते थे। इन्होंने जीव गोस्वामी की प्रेरणा से वृन्दावन में आकर श्री रघुनाथ भट्‌ट जी से चैतन्य मत की दीक्षा ली थी । इनका महाप्रभु से कभी साक्षात्कार नहीं हुआ था। [49] ध्यान रखें कि इनके और चैतन्य महाप्रभु के समय में पर्याप्त अंतर है । अंततः गदाधर भट्‌ट को चैतन्य महाप्रभु का शिष्य समझने का भ्रम नाम साम्य और संप्रदाय साम्य के कारण होता है ।

गदाधर भट्‌टजी के संबंध में भक्तमालकार नाभादास जी ने एक छप्पय तथा प्रियादास जी ने अपनी 'भक्तिरस बोधिनी टीका' में आठ कवित्त निवेदित किये हैं। "ध्रुवदास,

नागरीदास, भगवतरसिक आदि सुप्रसिद्ध रससिद्ध कवियों ने भी इनके समुज्ज्वल चरित्र और उत्कट भक्ति भावना, वाणी की सुमधुरता तथा उनके द्वारा कथित भागवत कथा की सरसता की बड़ी प्रशंसा की है।"[50] ऐसी जनश्रुति है कि गदाधर भट्ट जी कृत एक पद 'सखी, हौं स्याम रंग रंगी' सुनकर जीव गोस्वामीजी ने और एक पद लिखकर भेजा था। जो निम्न प्रकार हैं –

"अनाराध्य राधापदाम्भोजयुग्ममनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत्पदाङ्काम्।

असंभाष्यतद्भावगम्भीरचित्तान्, कुतः श्यामसिंधो रसस्यावगाहः।"[51]

इस पद के मर्म को समझकर गदाधर भट्ट ने इस नश्वर संसार को त्यागकर वृन्दावन को ही अपनी स्थायी निवास बना लिया था। उन्होंने यह समझ लिया कि वृन्दावन में रहे बिना सही रूप में कृष्ण के मधुरभक्ति रस का आस्वादन नहीं किया जा सकता । प्रियादास ने भक्तमाल की अनुक्रमणिका में इनके संबंध में यह लिखा है कि – "गदाधर भट्ट परम रसज्ञ, चौमुख चौर सब सरवज्ञ थे ।"[52] इनके पुत्र संतानों के बारे में यह बताया गया है कि "ब्रजभाषा के प्रख्यात कवि वल्लभ रसिक तथा संस्कृत के प्रकांड पंडित और रसज्ञ भक्त रसिकोत्तंस इनके पुत्र हैं।"[53]

रचनाएँ

गदाधर भट्ट की अद्यावधि कोई स्वंतत्र रचना नहीं मिली है ।[54] योगपीठ नामक पद उनकी स्वतंत्र रचना मानी जाती है। यही रचना घ्यानलीला के नाम से डॉ चंद्रिका प्रसाद को हस्तगत हुई थी । यह रचना बड़ी सरस और भक्ति पूर्ण है । आपकी ये रचना अष्टछाप के उत्कृष्ट कवियों के जोड़ की है । "योगपीठ मे वर्णित संस्कृत श्लोकों को स्वयं गदाधर भट्ट जी ने स्तव माना है।"[55] भट्ट जी के पदों में साहित्यिक गुणों के अतिरिक्त त्याग, अनुराग और भक्ति का वह चित्र खचित दिखाई देता है, जो बिरले ही भक्त कवियों में मिलता है । वियोगी हरि जी ने इनके संबंध में यह दावे के साथ कहा है कि आप ब्रजसाहित्य और गौर संप्रदाय के अभिमान स्वरूप हैं। उदाहरणार्थ 'ब्रजमाधुरी सार' से एक पद प्रस्तुत है –

"श्री गोविन्द–पद–पल्लव सिरपर विराजमान,

कैसे कहि आवै या सुख कौ परिमान ।

ब्रजनरेस–देस–बसत कलानल हूँ त्रसत,

बिलसत मन हुलसत करि लीलामृत–पान ।

भीजे नत नयन–रहत प्रभु के गुनग्राम कहत,
मानत नहीं त्रिविध ताप–जानत नहिं आन ।
तिनके मुख–कमल–दरस, पावन पदरेनु परस,
अधम जन 'गदाधर' से पावैं सनमान ।''[56]

प्रस्तुत पद के अनुशीलन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनकी रचना का विषय चैतन्य संप्रदाय की भावना–उपासना के नितांत अनुरूप हैं । कृष्ण के कैशोर लीला की प्रधानता इनमें है । उनकी रचना में कृष्ण सम्बधित जितने प्रकार के वर्णन मिलते हैं उनमें धमार का वर्णन अत्यंत अनुपम है, जो चैतन्य संपद्राय के मधुर भावना तथा वर्ण्य विषय के अनुकूल है । यह ध्यातव्य है कि आज भी नंदगाँव, बरसाना और वृन्दावन आदि जगहों पर स्थित भट्ट जी के मंदिरों में धमार बडे उल्लास के साथ गया जाता है । गदाधर भट्ट की रचनाओं की स्पष्ट पहचान उनके संस्कृतनिष्ठ, सुष्ठु, सशक्त भाव व्यजंना वाले संगीत प्रवण पद हैं । गदाधर भट्ट के प्रशंसकों में ''आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनके पद विन्यास की बड़ी प्रशंसा की है तथा उनको भक्तिकाल के रामभक्त महान कवि आचार्य तुलसी दास के समकक्ष बताया है।''[57] ''वियोगी हरि ने भी अपनी कृति 'ब्रजमाधुरी सार' में उन्हें वल्लभ संप्रदाय के अष्टछाप के उत्कृष्ट कवियों के समान बताया है।''[58] ''डा. शरणबिहारी गोस्वामी ने भट्ट जी की कविता के प्राणों में सखी भाव के दर्शन किये हैं और अभिव्यक्ति के स्तर पर हरिवंश जी के समकक्ष बताया है ।''[59] अतः भट्ट जी अनुभूति और अभिव्यक्ति के स्तर पर हिन्दी के भक्तिकालीन कवियों में उच्च्य स्थान पाने के अधिकारी हैं ।

2 . 6 चंद्रगोपाल

चंद्रगोपाल जी श्रीरामराय के कनिष्ठ भ्राता तथा गौर गोपाल जी के कनिष्ठ पुत्र थे। यह तथ्य हमें यमुनावल्लभ जी की सामग्री से प्राप्त हुआ है ।[60] इन्हें गीतगोविंदकार जयदेव की वंश–परंपरा के माना जाता है । आपका जन्म बिकम सवंत् 1577 चैत्र शुक्ल नवमी को लाहौर में हुआ था । बारह वर्ष के बाद आपका अध्ययन काशी के गोकुलानन्द विद्यापीठ से हुआ था । अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामराय जी की प्रेरणा से ये चैतन्यसंप्रदायाश्रित हुए थे । इस का स्पष्ट प्रमाण हमें उनकी रची हुई पंक्तियों से मिलता है –

"अब बंदौ दादा–चरन, रामराय जिननाम ।
कृपा–भाव रस–बान करि, समुझयौ जहि ग्राम ।।
गौर चरन की रति दई, दई दास–गति मोय ।
बलिहारी ता बंधुकी , जा सम कोऊ न होय।।"[61]

चंद्रगोपाल जी की अत्यंत निष्ठा और श्रद्धा, महाप्रभु चैतन्यदेव के प्रवर्तित रागमार्ग पर थी । उनके अनुराग में रंजित उनकी वाणी बड़ी ही ललित, परिमार्जित तथा रससिक्त थी ।

रचनाएँ :

चंद्रगोपाल जी का पांडित्य संस्कृत भाषा में होने के साथ–साथ ब्रजभाषा में था। आपके द्वारा रचित ब्रजभाषा काव्य अत्यन्त अनुपम है । इनके द्वारा रचित ब्रजभाषा काव्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं – चंद्रचौरासी, अष्टयाम सेवासुधा, गौरांग अष्टयाम, राधामाधव ऋतु विहार और श्रीराधा विरह शतक । उपरोक्त अप्रकाशित रचनाएँ जो "यमुना वल्लभ जी वृन्दावन गोस्वामी के पास सुरक्षित हैं।"[62] इनका संक्षिप्त परिचय द्रष्टव्य है।

चंद्रचौरासी में कुल 84 पद हैं । यह चंद्रगोपाल जी द्वारा रचित होने के कारण इसका नाम 'चंद्रचौरासी' रखा गया है । इसमें सुधानाम से तीन भाग हैं । प्रथम भाग में चैतन्य संप्रदाय के सिद्धांत का संक्षिप्त परिचय दिया गया है । द्वितीय भाग में राधा–माधव की सेवा भावना तथा तृतीय भाग में विभिन्न उत्सव कार्यों का अत्यन्त भाव पूर्ण तथा सरस वर्णन है । काव्य एवं भक्ति की दृष्टि से इनके काव्य अत्यत श्रेष्ठ हैं। इनमें मुख्यतः अपने प्रभु चैतन्य देव का गुणगान किया गया है । मीतल जी ने इस ग्रंथ का नामकरण इसकी शैली के आधार पर श्रीहित हरिवंश की सुप्रसिद्ध 'हित चौरासी' के अनुकरण पर किये जाने का अनुमान लगाया है, क्योंकि इनके प्रतेक पद के साथ एक दोहा लगाया गया है जो 'हित चौरासी' की शैली है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

"प्रान–प्रिया प्रिय पद पंकज पद, पीवत प्रेम पूर परधान ।
उछटावत चहुँदिसि चरनोदक, चपल चंद्रिका रस की खान ।।
अंग–अंग अँगुछाय अलौकिक, उज्ज्वल अभा अमित उफान ।
इंद्र नील मनि हेम दलित दुति, तरु तमाल मल्ली मुसकान ।।
रस बरसत डूबत धारा में राधा–माधव मुदित महान ।
श्री प्रभु 'चंद्रगोपाल' एक द्वै, श्री चैतन्य चतुर तेहि भान ।।"[63]

अष्टयाम सेवा सुधा में उपास्य श्रीराधा–माधव की अष्टकालीन सेवा का वर्णन अत्यंत सरल रूप में हुआ है । किन्तु यह ध्यान रहे कि अन्य रचनाओं में अपनायी गई शैली की अपेक्षा इसकी शैली थोड़ी सरस है। इसके पदों की संख्या 35 हैं।

गौरांग अष्टयाम में गौरांग महाप्रभु की अष्टयाम सेवा का वर्णन विस्तार से किया गया है। चैतन्य संप्रदाय की उपासना विधि के अनुसार यह रचना महत्वपूर्ण है। इसमें महाप्रभु गौड़ेश्वर को राधा–कृष्ण का मिलित विग्रह माना गया है । इसमें भी गौरांग महाप्रभु की आरती निम्नप्रकार से की गई है –

"आरती कीजै श्री गौडेश्वर की।।
नित्यानंद महाप्रभु राजत, प्यारे सची–कुँमर की ।
कली पावन अवतार धरन की, गजगति विस्वम्भर की ।।
श्री राधा पद–पदुम मत्त मन, मोद भरे मधुकर की ।
श्री प्रभु 'चंद्रगोपाल ' प्रेम सों, प्रवर पंच परिकर की।"[64]

राधामाधव ऋतुविहार आपका अत्यंत श्रृगारिकता भरा काव्य प्रतीत होता है । जिसमें प्रकृति की षड ऋतुओं में राधा–माधव की केलि का अनुपम वर्णन किया गया है। इसमें कुलमिलाकर 11 छप्पय तथा 1 दोहा है । नीचे षड् ऋतुओं में से बसंत ऋतु से संबंधित एक छप्पय द्रष्टव्य है –

"श्री राधा–माधव जुगल प्रेम बिहार निहार।
सखी–सहेली कुंज में, करत रहत बलिहार।।
करत रहत बलिहार, निरखि कुसुमाकर अनुचर ।
श्री राधा सुकुमार, स्याम सुन्दर सेवन कर।।
नव निकुंज अलि पुंज, गुंज मंजुल जन मन हर।
सेवा हित नव लता धारी, नव दल सौरभ भर ।।
नवल नेह जोरी कियौ, नव उत्सव अनुराग जस ।
श्री प्रभु 'चंद्र' मिलाप नव, नव बंसत ऋतु प्रियावस।।"[65]

श्री राधाविरह शतक में राधा विरह का अत्यंत सरल तथा मार्मिक ढंग से वर्णन किया गया है। हमने पहले यह बताया है कि चंद्र गोपाल जी की रचनाओं का आधार प्रमुख रूप

से श्रृंगार है । तब यह निश्चित है कि विरह का वर्णन श्रृंगारिक रचनाओं में सरस होता है क्यों कि विरह ही मिलन से श्रेष्ठ है, जो श्रृंगार को रसराजत्व के सिंहासन पर अधिष्ठित कराता है । इसमें कुल एक शतक अरिल्लें हैं । अतंतः इस कवि के बारे में इतना कुछ वर्णन करने के बाद हमें यह दुःख के साथ कहना पड़ता है कि "हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में इस कवि के बारे में कुछ भी तथ्य नहीं मिलता है, जैसे कि इनका नाम भी इतिहास कारों के लिए अछूत हो गया है।"[66]

उपर्युक्त छः चैतन्य संपद्राय के प्रमुख कवियों के अलावा कुछ ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से चैतन्य संप्रदाय को जीवित रखा है । इनमें कुछ शिष्य रामराय जी के हैं तथा कुछ चंद्रगोपाल जी के । इनके संक्षिप्त परिचय कराना आवश्यक प्रतीत होता है। मीतलजी ने रामराय जी के 12 शिष्यों के नाम तथा चंद्रगोपाल जी के 4 शिष्यों के नाम गिनाये हैं । उन्होंने यह बताया है कि रामराय जी के शिष्यों में भगवानदास और राधिकानाथ तथा चंद्रगोपाल जी के शिष्यों में रसिक मोहन राय प्रमुख हैं । यह ध्यान रहे कि रामराय जी के शिष्यों का नाम एक छंद के रूप में प्राप्त होता है –

"भक्ति भगवान दास, ज्ञान कों गरीब दास
बाँके वैराग विष्णुदास के दिखाने हैं ।
जोग कों जुगलदास, अंतरगति राधानाथ
काम कों किसोर क्रोध केसब कों माने हैं ।
मद कों मनोहर, लोभ लाखादास, मोह मधु
मत्सर हरिदास, त्याग तीरथ पिछाने हैं ।
कथा तत्व भागवत, कीर्त्तन सुख रामराय,
जा बिधि सों द्वादस गुरु संग लिपटाने हैं ।।"[67]

2 . 7 भगवान दास

पहले यह बताया गया है कि भगवान दास जी रामराय जी के प्रमुख शिष्य थे। "ये आमेट के राजा थे, जिन्होंने गोवर्द्धन में श्री हरिदेव जी का मंदिर बनवाया था ।"[68] वल्लभ संप्रदायी 'वार्तासाहित्य' में भगवान दास को गौड़ीय संप्रदायी तथा गोविन्द देव जी का सेवक बताया

गया है, जो बाद में रामराय जी की प्रेरणा से वल्लभ संप्रदायी हो गये थे । वार्ता के अनुसार "रामरायजी भगवान दास के गुरु न होकर पुरेहित थे।

गोस्वामी विट्ठलनाथ से उन्होंने दीक्षा ली थी।"[69] किन्तु यह तथ्य सत्य प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि रामराय की पूरी रचनाओं पर दृष्टिपात के पश्चात् उन्हें वल्लभ संप्रदायी कहना सही नहीं लगता है । वह कभी वल्लभ संप्रदायी नहीं रहे । रामराय जी भगवानदास जी के गुरु थे जो भगवानदास के पदों से स्पष्ट होता है। 'भगवान हेतुरामराय' कह कर उन्होंने अपने गुरु के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। इनके रचे हुए पदों में 'भगवानदास' और 'भगवानहित रामराय' दोनों छाप मिलती हैं । "डा. सत्येद्र जी ने इनके उपलब्ध पदों की संख्या प्रायः एक सौ मानी है।"[70]

2 . ८ गरीबदास

गरीबदास कान्यकुब्ज ब्राह्मण तथा रामगिरी सन्यासी के शिष्य थे । एक बार सोरों में इनसे रामराय जी की भेंट हुई । "रामराय जी ने गरीब दास जी की भक्ति भावना से प्रभावित होकर उन्हें अपना शिष्य बना लिया ।"[71] इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध होती हैं – श्रृंगार शतक, आनंद शतक और वृन्दावन शतक ।

2 . 9 विष्णुदास

ये विद्वान आगरा के निवासी थे। उनकी एक सर्राफे की दूकान थी । व्यवसायी होने के नाते धनोपार्जन करने के लिए वे बहुत आग्रही थे । उन्हें धनोपार्जन के मामले में कुछ भी सकोंच नहीं होता था । यह कहानी उपलब्ध होती है कि एक दिन रामराय जी अपने सेव्य ठाकुर राधामाधव जी का श्रृंगार आभरण ठीक कराने आगरा में विष्णुदास की दुकान पर गये । चुम्बक, लोहे को खींचने की तरह विष्णुदास रामराय जी की क्षणिक संगति से भगवद्भक्ति की ओर खिंच गये । तत्पश्चात् वे रामराय जी के शिष्य बनकर वृन्दावन चले गये। कहा जाता है, वैराग्य ही भक्ति का सच्चा स्वरूप है। इसीलिए इनके मन में संसार के प्रति वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई थी । जिसके चलते इनके वैराग्य भावना पर बहुत से सवैया उपलब्ध होते हैं। जो 'वैराग्य विद्या' संकलन नाम से परिचित है।[72]

2 . 10 जुगल दास

ये दिल्ली के निवासी कपूर खत्री थे। साधु सत्संग में ऐसा जादू है जो मनुष्य को सांसारिक मोह, माया के बंधन से हटाकर उसके मन में वैराग्य पूर्ण भक्ति की भावना पैदा कर देता है। इस महाशय के साथ भी इस तरह की घटना घटी थी। जिसके चलते वे निर्वाण पुरी नामक संन्यासी के शिष्य होकर उनके साथ वृन्दावन में आकर रामराय जी के निवास–स्थान पर ठहरे। बाद में रामराय जी की भक्ति भावना से अत्यन्त प्रभावित होकर उनकी सेवा में अपना जीवन बिता दिया। आपकी दो पुस्तकें उपलब्ध होती हैं – भक्ति योग, योग कल्पवल्ली।[73]

2 . 11 राधिका नाथ

रामराय जी के शिष्यों में भगवान दास के पश्चात् राधिकानाथ प्रमुख भक्त कवि हुए हैं। आप चंद्रगोपाल जी के पुत्र और रामराय जी के भतीजे थे। यमुनावल्लभ जी के अनुसार उनका जन्म संवत् 1570 में हुआ था। आपको बाल्यावस्था से ही रामराय जी की संगति में रहने का मौका मिला। 'राधाप्रिया', 'श्यामा', 'माखन' के उपनामों से आपने रचनाऍं की हैं । रधिकानाथ के बहुत से सुन्दर तथा भावपूर्ण पद ब्रजभाषा में पाये जाते हैं। आपके द्वारा रचित काव्य रचनाऍं हैं – महावाणी, प्रेम संपुट, राधारस सुधानिधि और रस बिन्दु ।

2 . 12 किशोरदास

यह ध्यान रहे कि सूरदास नाम की तरह किशोरदास के नाम से बहुत कवियों की रचनाऍं मिलती हैं। उनमें चैतन्य संप्रदायी किशोर दास प्रमुख कवि माने जाते हैं। जिनकी बहुल परिमाण में रचनाऍं उपलब्ध होती हैं। इन्हें गौड़ीय संप्रदाय का अनुयायी बताया गया है।[74]

रचनाऍं : इनकी पदावली 'श्री किशोरीदास की वाणी' नाम से बबा कृष्णदास ने संपादित की है। इसमें विभिन्न रागों में उत्सवों के सरस पदों का संकलन है। "रूप गोस्वामी कृत 'श्रीराधा–कृष्ण गणोदेशदीपिका' पर आधृत एक 'वंशावली' भी इन्होंने लिखी है।"[75] इनके पदों पर सूर की छाया भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। चैतन्य संप्रदाय के विकास में इनकी राग रागिनियों का योगदान अपार है। ब्रजभाषा कवियों में इतने विविध रागों में किसी ने भी

आपकी तरह पद रचना नहीं की है। इसके प्रारंभ में चैतन्य महाप्रभु की वंदना तथा बधाई के पद हैं –

"जैसे श्रीकृष्ण चैतन्य है अवतरे।
प्रिया अंग लखि गौर वरन निजु बपु धरे।"[76]

2 . 13 मनोहरदास

सुप्रसिद्ध बंगाली महात्मा मनोहरदास जी ब्रज भाषा के श्रेष्ठ कवि हुए हैं। आपकी रचनाओं में प्राप्त उल्लेखानुसार "आप चैतन्य महाप्रभु के पार्षद गोस्वामी गोपाल भट्ट जी की शिष्य–परंपरा में रामशरण चट्टराज के शिष्य और ठाकुर राधारमण जी के सेवक थे।"[77] आप 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास जी के गुरु माने जाते हैं।

रचनाऍं : बंगला भाषा में रचित 'अनुरागवल्ली' नामक ग्रंथ के अतिरिक्त इन्होंने ब्रज भाषा में अनेक रचनाऍं की हैं, जिनमें बंगला पदावली की सी मधुरता एवं सरसता अभिव्यक्त हुई है। श्रीराधा रमण रससागर, संप्रदाय बोधिनी, क्षणदा गीति चिंतामणि, रसिक जीवनी, रसिक कर्णाभरण लीला, गौरगुणावली, वैष्णव संकीर्तन, प्रार्थना तथा कुछ पदों का संग्रह उपलब्ध होते हैं । उनमें से वैष्णव संकीर्तन जो, एक लघु रचना है, में चैतन्य संप्रदाय की संकीर्तन का महत्व तथा उसकी पद्धति के बारे में स्पष्ट रूप से लिखा गया है। उदाहरणार्थ –

"प्रेम संकीर्तने नाचे – नाचावत दास मनोहर ।।"[78]

2 . 14 लाखादास

'कोल' अलिगड के निवासी गौतम ब्राह्मण थे। पहले इनका विश्वास तामसी सिद्धि में था । ध्यान रखें कि रामराय जी के द्वारा उनका उद्धार तामसी सिद्ध से हुआ था। आपका रचा हुआ ग्रंथ 'श्री वृन्दाबनकल्पद्रूम' है।[79]

2 . 15 मधुसूदन दास

ये काशी के रहने वाले थे। रामराय जी के सत्संग से उनका मन भगवान के प्रति अनुरक्त हुआ था। आपकी रची हुई 'सत्संग पच्चीसी' और प्रेम दर्शन नामक दो छोटी – छोटी रचनाऍं हैं।[80]

2 . 16 हरिदास

चैतन्य मत में कई हरिदास मिलते हैं। जिनमें यवन हरिदास तथा वृन्दावन निवासी हरिदास अधिक प्रसिद्ध हैं। "वृन्दावन निवासी हरिदास ने गदाधरपंडित के शिष्य अनंताचार्य से दीक्षा ली थी। ये रूप गोस्वामी तथा कृष्णदास कविराज के समकालीन थे।"[81] आपके आग्रह से कविराज जी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'चैतन्यचरितामृत' की रचना की थी।

2 . 17 तीर्थराम

ये मारवाड़ के गूढा ग्राम निवासी धनिक ब्राह्मण थे। रामराय जी के संत्संग से आप सब कुछ त्यागकर वृन्दावन में हरिलीला गायन करने लगे। आपकी कई रचनाऍं हैं – द्रव्य दोष, त्याग तरणी, श्री हरिलीला, रसिकाचार्य चर्चा और ब्रजवास।

2 . 18 रसिकमोहन राय

पहले यह सूचित किया गया है कि रामराय जी के अनुज चंद्रगोपाल जी के चार शिष्य थे। जिन्होंने चैतन्य संप्रदाय के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। उनमें रसिक मोहन राय प्रमुख थे। संसार के प्रति विरक्त की भावना उनके मन में उत्पन्न होने के पश्चात् वे वृन्दावन आ गये तथा चंद्रगोपाल जी के शिष्य बन गये। आपकी प्रमुख रचना 'रसिकसेवक वाणी' कही जाती है ।

2 . 19 हरिराम व्यास

ब्रज में रसिकत्रयी के नाम से प्रख्यात तीन महात्माओं में से एक हरिराम व्यास उत्कृष्ट भक्त कवि हैं। हरिवंश, हरिदास व हरिरामव्यास ये तीनों मधुर रसोपासक अनन्य भक्त है। आप नरेश मधुकर शाह के राज गुरू थे। व्यास जी रचित 'स्वधर्म पद्धति' या 'नवरत्न', नाभादास के 'भक्तमाल', ध्रुवदास कृत 'भक्तनामावली', प्रियादास कृत 'भक्तिरसबोधिनी टीका' में आपके जीवन चरित्र संबंधी कुछ बातें उपलब्ध होती हैं।

हरिराम व्यास चैतन्य संप्रदाय के भक्त कवि माधव दास जगन्नाथी के शिष्य थे। डॉ. नरेशचंद्र बंसल ने इस मत के प्रमाण स्वरूप व्यासजी द्वारा रचित संस्कृत ग्रंथ 'नवरत्न' की हस्तलिखित प्रति से व्यास जी की गुरु परंपरा उद्धृत की है ।[82] हरिराम व्यास जी के प्रकृत

दीक्षा गुरु के संबंध में शंका जतायी जाती है। "बंगाली विद्वान हरिदास जी ने 'श्री गौडीय वैष्णव अभिधान' नामक बंगला ग्रंथ में एवं लाल दास ने 'बंगला भक्तमाल' में तथा पुलीन बिहारी दत्त ने भी चैतन्य महाप्रभु के दादा गुरु श्रीमाधवेन्द्र पुरी के शिष्य माधवदास को व्यास जी का दीक्षा गुरु बताया है।"[83] स्वयं व्यास जी ने अपने पद में माधव दास जी की शरण में आकर उनकी कृपा से संदेह-निवारण का उल्लेख किया है: –

"श्री माधव दास सरन मैं आयौ।

हौं आजन ज्यौं नारद ध्रुव सौ, कृपाकरी संदेह भगायौ।"[84]

आपकी 'वाणी' तथा 'नवरत्न' में व्यास के दार्शनिक विचारों से पता चलता है कि वे वेदान्त के प्रकांड विद्वान थे । वाणी की काव्य कला और रागमाला में वर्णित भारतीय नाद के शास्त्रीय विवेचन से उनके काव्य और संगीत पर अधिकार पूर्ण ज्ञान का प्रमाण आज भी उपलब्ध होते हैं । व्यास जी द्वारा रचित व्यास-वाणी के अंतः साक्ष्य से यह भी ज्ञात होता है कि भगवान पर उनकी अनन्य श्रद्धा तथा निष्ठा थी। यह उनकी भक्ति-भावना का आधारभूत ग्रंथ था ।[85] उनका सखीभाव, गोपी भाव से सर्वथा अभिन्न है। चैतन्य संप्रदाय की आस्था और मान्यताओं के प्ररिप्रेक्ष्य में उक्त बातें ध्यान रखने की हैं।

व्यास जी की रचनाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है – सिद्धांत व श्रृंगार रस विषयक पद तथा लौकिक जीवन के व्यावहारिक पक्ष से संबंधित पद । प्रथम प्रकार की रचनाओं में व्यासजी के माधुर्य भाव परक भक्ति-उपासना विधान एवं लीला संबंधी पद आते हैं । दूसरी प्रकार की रचनाओं में व्यास कृत ये साखियाँ या पद लिये जा सकते हैं, जिनमें जीवन के व्यावहारिक पक्ष से संबंधित नीति और उपदेश परक विचारों की अभिव्यक्ति हुई हैं ।

2 . 20 प्रियादास

प्रियादास जी भक्तमाल की टीका 'भक्तिरस बोधिनी' के रचनाकार हैं तथा मनोहर दास जी के शिष्य भी माने जाते हैं । उन्होंने अपने ग्रंथ के मंगलाचरण में श्रीकृष्ण चैतन्य और अपने गुरु की वंदना की है –

"श्रीचैतन्य मनहरण भजि, श्री नित्यानन्द संग।"[86]

उनके गुरु श्रीराधारमण जी के परिकर में मनोहर दास जी थे। मनोहर दास जी चैतन्य संप्रदाय के सुप्रसिद्ध कवि थे, जिनके बारे में पहले बताया जा चुका है। इन्होंने चैतन्य संप्रदाय के दार्शनिक तत्व के आधार पर अनेक रचानाएँ की हैं । उनसे चैतन्य संप्रदाय का विकास संभव हो पाया है। उनके पश्चात् उनके पुत्र वैष्णव दास रसजानि भी चैतन्य संप्रदाय के श्रेष्ठ कवि कहलाये गये थे।[87] प्रियादास जी चैतन्यमत की दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् तीर्थाटन के लिए चल दिये और प्रयाग, चित्रकूट आदि तीर्थ स्थानों की यात्रा करने के उपरांत जयपुर आकर बस गये थे । वहीं पर उन्होंने 'भक्तमाल की टीका' की रचना की थी। आपके द्वारा रचित 'भक्तमाल' की टीका के अलावा और चार लघु ब्रजभाषा की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं – रसिक मोहिनी, अनन्य मोदिनी, चाहवेली और भक्त सुमिरनी । इन्हें बाबा कृष्णदासजी ने 'प्रियादास जी की ग्रंथावली' नाम से एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराया है ।

2 . 21 भगवंत मुदित

भगवंत मुदित श्रीमाधव मुदित के पुत्र तथा पंडित हरदास जी के शिष्य थे । स्वयं भगवंत मुदित जी अपनी रचना 'वृन्दावनशतक' की टीका के अंत में अपने गुरु के संबंध में बतलाया है कि "श्रीगुरु श्री हरिदास–दया, मैं भाषा कीनौं ।" यह ध्यान रहे कि इस ग्रंथ के मंगला चरण में सर्व प्रथम चैतन्य महाप्रभु की वंदना प्राप्त होती है, जिससे उनकी चैतन्य संप्रदाय संबंधित श्रद्धा स्पष्ट प्रमाणित होती है।

"भगवंत मुदित के विषय में नाभाजी ने 'भक्तमाल' के एक छप्पय में और

प्रियादासजी ने भक्ति रसबोधिनी टीका में उन्हें माधव मुदित का पुत्र बताया है।"[88] इनके साथ यह द्वन्द्व खड़ा होता है कि वे किस संप्रदाय के हैं ! बलदेव उपध्याय ने "उन्हें राधावल्लभ संप्रदाय का बताया है"।[89] तथा दीनदयाल गुप्त जी ने उन्हें टेढ़ी संप्रदाय का बताया है।[90] अतंतः भक्तनामावली के दोहों के अनुसार उन्हें चैतन्य संप्रदायी माना जाता है।[91] भगवंत मुदितजी के पिता चैतन्य संप्रदाय के अनुयायी थे और एक रसिक भक्त कवि थे। अतः भगवंत मुदित पर प्रारंभ से ही इनकी भक्ति का संस्कार था। नाभादास जी के अनुसार ये सखीभाव के उपासक थे । कुंजबिहारी की केलि सदा उनके हृदय में प्रतिभासित होती

थी। मीतल जी ने यह बताया है कि "भगवंत मुदित जी चैतन्य मतावलंबी होते हुए भी हित हरिवंशजी और उनके राधावल्लभीय रस–सिद्धांत के प्रति आस्था रखते थे।"[92] मिश्रबंधुओं ने उन्हें भ्रम से राधावल्लभीय संप्रदाय के अनुयायी लिखा है।[93]

2 . 22 कृष्णदास

कृष्णदास प्रसिद्ध गौड़ीय विद्वान–आचार्य जीव गोस्वामी के शिष्य थे । जीव गोस्वामी का काल वि सं 1568 से 1671 के लगभग माना जाता है । इसके आधार पर कृष्णदास जी का समय सं . 1620 से सं .1690 तक अनुमान किया जाता है।[94] इनकी रचनाओं में कृष्णदास तथा कृष्णकवि दोनों नाम पाये जाते हैं। इस संदर्भ में डॉ बंसल ने यह अनुमान जताया है कि कदाचित् कृष्णकवि उनका उपनाम हो सकता है।[95] आपके जीवन परिचय के बारे में ज्यादा ज्ञात न होने पर भी आपकी रचना 'गौरनामरस चंपु' के मंगला चरण से इस संबंध में मात्र इतने ही तथ्य की सूचना मिलती है कि आप जीव गोस्वामी के सेवक थे एवं ब्रज में वास करते थे । जो निम्नलिखित पंक्ति से स्पष्ट हो जाता है –

"श्री जीव जीवन मेरौ , उन ही कौ मैं हूँ चेरौ,
जाके राधा–दामोदर वृन्दावन गाजै है।
कृष्णदास ब्रजवास रचत नाम–विलास
'गौर नाम रस चंपु' जामैं रस भ्राजै है।।"[96]

उनकी रचना के रूप में 'श्री गौरनाम रस चंपु' और 'लघु गोपाल चंपु भाषा' नामक दो काव्य–कृतियाँ उपलब्ध होती हैं, जिन्हें बाबा कृष्णदास ने एक ही पुस्तक में प्रकाशित किया है। यह गौर करें कि 'श्रीगौर नामरस चंपु' के मंगला चरण में कवि ने गौरांग महाप्रभु एवं जीव, रूप, सनातन आदि गोस्वामियों की वंदना की है। इन्होंने संकीर्तन प्रेमी गौरांग महाप्रभु की परम भाव विह्वल दशा का सुन्दर चित्रण किया है । इनकी 'लघु गोपालचंपु भाषा' पुस्तक जीव गोस्वामी कृत 'गोपाल चंपु' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ का अत्यन्त संक्षिप्त ब्रजभाषा पद्यानुवाद है।

2 . 23 माधुरी दास

चैतन्य संप्रदाय के ब्रजभाषा कवियों में माधुरी दास सुप्रसिद्ध रस कवि हैं। आपकी रचनाओं में आपका नाम माधुरी मिलता है। "ये कपूर खत्री थे और वृन्दावन के निवासी

थे।"[97] इनकी रचनाओं में ब्रजभाषा का सरस एवं सरल प्रयोग मिलता है, उससे यह प्रतीत होता है कि इनका ब्रज से घनिष्ठ संबंध रहा है। इस प्रसिद्ध भक्त कवि के जीवन वृतांत के बारे में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं होती है । इनके जन्मकाल की तिथि अनिश्चित है किन्तु इनकी रचनाओं द्वारा इनके रचना–काल का पता लगता है। 'कलि–माधुरी' और 'दान माधुरी' का रचना काल सं.1687 है तथा 'वंशीवट माधुरी' और 'वृन्दावन माधुरी' का रचना काल सं. 1699 लिखा हुआ है। माधुरीजी ने अपनी रचनाओं में चैतन्य महाप्रभु और रूप सनातन गोस्वामियों की वंदना की है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि "कवि महाशय ने रूप गोस्वामी का उल्लेख वर्तमान काल की सी किया में किया है, जिससे यह तथ्य उजागर होता है कि रूप गोस्वामी जी माधुरी जी के समय में विद्यमान थे।"[98] चैतन्यमत के भावनानुसार रूप गोस्वामी जी श्री राधिका जी की अंतरंगा सेविका रूप मंजरी के अवतार थे।

2 . 24 वल्लभ रसिक

वल्लभ रसिक सरस एवं अलंकृत शैली में काव्य रचना के लिए प्रसिद्ध हैं। चैतन्य संप्रदाय के अंतर्गत ये गदाधर भट्ट के वंशजों में हुए हैं। बाबा कृष्णदास ने "इन्हें गदाधर भट्ट का पुत्र एवं प्रेमपत्तनकार रसिकोत्तंस का अनुज बताया है।"[99] रसिकोत्तंस ने स्वयं अपनी रचना में वल्लभ रसिक को अपना अनुज लिखा है –'वल्लभ रसिकोममनुज'। वल्लभ रसिक की रचनाओं के विषय चैतन्य संप्रदाय की भावोपासना के अनुरूप रथ–यात्रा, रास, अष्टयाम, निकुंज विहार तथा अन्य लीलाओं से संबधित हैं। तब यह निश्चित हो जाता है कि आप चैतन्य संप्रदायी हैं। आपकी रचनाओं में व्यवहृत अलंकार शैली ने उसे प्रभावोत्पादक बना दिया है। इनकी समस्त रचनाओं का संकलन बाबा कृष्णदास जी ने सं 2005 में 'वल्लभ रसिक वाणी' के नाम से प्रकाशित किया है। इसमें विभिन्न शीर्षकों से वर्णन प्राप्त होते हैं । जैसे सांझी, होरी खेल, मांझ, सुरोतोल्लास, बारह बाट अठारह पैंड़े, वर्षोत्सव के पद, नित्यगान के पद, फुटकर दोहा, कवित्त, सवैया आदि । इसमें राधा–कृष्ण के रूप–माधुर्य, श्रृंगार तथा रति–विलास का सुन्दर चित्रण हुआ है। इनके काव्य में संयोग श्रृंगार और माधुर्य भक्ति को ही स्थान मिला है। ब्रज के कीर्तन संग्रहों में वल्लभ रसिक के पद बिखरे हुए मिलते हैं। जिससे यह ज्ञात होता है कि इनकी रचनाऐं बहुत प्रचलित हुई हैं।

2 . 25 ललित किशोरी और ललित माधुरी

जिस प्रकार चैतन्य संप्रदाय के षड् गोस्वामियों में रूप–सनातन हैं, उसी प्रकार ब्रज के भक्त और भावुक कवियों में ललित किशोरी ओर ललित माधुरी हैं । इन दोनों भाइयों में 'राम–लखन' सा संबंध था। इन दोनों का लौकिक नाम शाह कुन्दनलाल तथा शाह फुन्दन लाल था। ये दोनों भाई गाने बजाने में प्रवीण थे। ललित कलाऐं उनमें भरी हुई थीं। ये एकांत भक्त, साधक, रसिक कवि, सच्चे वीतरागी और कई भाषाओं के ज्ञाता विद्वान थे। यह कथा उपलब्ध होती है कि "ललित किशोरी की कृष्णप्रेम पर इतनी निष्ठा थी कि वे कभी ब्रज के बाहर भूमि पर पैर नहीं रखते थे।"[100] ललित किशोरी कार्तिक शुक्ल 2 सं. 1930 को भगवान के प्यारे हो गये थे।

ललित माधुरी अपने बडे भ्राता की प्रीति–रज्जु से बंधकर वृन्दावन आ गये थे। इनकी प्रशंसा के रूप में भारतेन्दु जी की यह उक्ति मिलती है कि – "त्रेता में जो लछिमन करी सो इन कलियुग मॉंह किय ।"[101] वह अपने भाई को इतना प्यार करते थे कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उन्होंने जो कविताऐं लिखीं सब ललित किशोरी (बडे भ्राता) के नाम से लिखीं। यहॉं तक कि उनकी रचनाओं की प्रसिद्धि ललित किशोरी की रचनाओं के साथ हुई। जिस प्रकार राधावल्लभ संप्रदाय में चाचा बृन्दावन दास ने अनेक छद्म लीलाऐं लिखी हैं।[102] आपकी रचनाओं का एक संकलन दान लीला, नौका लीला और क्षीरनहर लीला के नाम से भी प्रकशित हुआ है। इन दोनों भ्राताओं की रचनाओं में चैतन्य संप्रदाय की सेवा तथा उपासना विधि का वर्णन प्राप्त होता है। अतंतः इन दोनों के संबंध में यह कहा जा सकता है कि इन दोनों की रचनाऐँ चैतन्य संप्रदास के सिद्धान्तों के प्रसार–प्रचार में बहुत सहायक सिद्ध हुई हैं।

2 . 26 गुणमंजरी दास

गोस्वामी गल्लू कवि का उपनाम गुणमंजरी दास था। गुणमंजरी दास का जन्म सं. 1884 में वृन्दावन में हुआ था। इस समय को हिन्दी साहित्य के इतिहास के अनुसार रीतिकाल कहा जाता हैं। "हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं भारतेंदु हरिश्चन्द्र के सखा राधारमण जी इनके पुत्र थे।"[103] गुणमंजरी दास जी राधा–कृष्ण के अनन्य निष्ठावान भक्त एवं वैष्णव भक्ति के आचार विधान के कट्टर पालक थे। इन्होंने कई स्थानों पर यात्रा की है

तथा अनेक स्थलों पर अपने पूज्य ठाकुर राधारमण जी के मंदिर बनवाये हैं। इन मंदिरों की पूजा विधि, उपासना विधि के द्वारा उन्होंने चैतन्यसंप्रदाय के दार्शनिक विचारधाराओं का प्रचार–प्रसार किया था। ये धर्मग्रन्थों के ज्ञाता एवं मार्मिक व्याख्याता थे। श्रीमद्‌भागवत पर इनकी पूरी आस्था थी। इनका स्वभाव बडा सरल, निष्कपट और मधुर था। ये वैष्णव भक्ति के प्रतिकूल आचार–विचार का सख्त विरोधी थे।

रचनाएँ – श्री राधारमण पद मंजरी, श्री प्रार्थना पद, युगल छद्‌म, रहस्य पद, पदावशेष तथा भागवत पद मुक्तावली इनकी रचनाएँ हैं । डॉ. मीतलजी ने यह स्पष्ट रूप में दर्शाया है कि परवर्ती समय के अन्य ब्रज भाषा कृष्ण भक्त कवियों की तरह 'गुणमंजरी दास' ने भी इसके आधार पर 'स्मरण मंगल भाषा' नामक रचना की थी। इसके मंगला चरण में चैतन्यमतानुयायी भक्त कवियों की वंदना की गई है –

"अष्टकाल लीला मन भाई । श्रीमत रूप गुसाई गाई।।"[104]

2 . 27 ललित लड़ैती

'लड़ैती' आपका उपनाम है। मूल नाम तो इन्द्रभान है। गोस्वामी बालमुकुन्द गुप्त आपके गुरु थे, जिनकी प्रेरणा से आप ने ब्रजभाषा में 'दंपति विलास' नामक ग्रन्थ की रचना कर पायी । बचपन से ही इनकी भगवद् भक्ति व सत्संग में स्वाभाविक रूचि थी, जो आगे चलकर गृहस्थाश्रम का पालन करते हुए भी परिपुष्ट होती रही । वृन्दावन के लिए अक्सर यात्रा करते–करते इनके मन मानस में राधाकृष्ण की प्रीति ने घर कर लिया था तथा राधा कृष्ण की लीलाओं की स्फूर्ति तीव्र होने लगी थी । बाद में चलकर उन्होंने भक्ति काव्य की स्रोतस्विनी बहा दी थी, जिसने समस्त संसार को अपनी शीतलता से सरावोर कर दिया था । ये सच्चे भक्त, वैरागी, भगवन्निष्ठ, महात्मा विद्वान, महान भक्त एवं श्रेष्ठ कवि के रूप में जाने जाते हैं। इनकी विद्वता से प्रभावित होकर अनेक व्यक्तियों के मन में भगवद्‌भक्ति की धारा फूटने लगी थी। आपकी रचनाओं में 'दंपति विलास' तथा 'श्री किशोरी कटाक्ष' नामक दो रचनाएँ प्रमुख हैं । दंपति विलास में चैतन्य महाप्रभु की प्रशंसापूर्ण पंक्ति उपलब्ध होती है, जिससे चैतन्यमत के प्रति आपकी श्रद्धा तथा निष्ठा स्पष्ट होती है –

"जै–जै–जै श्रीसची–किसोर
बन्दौं बारंबार ध्यान धर, परम कृपा पद साधन मोर।।"[105]

2 . 28 बांकेपिया

बांकेपिया आपका उपनाम है। इस नाम से आप लोक परिचित हैं। ये लखनऊ निवासी थे। जन्म इनका सं 1932 में हुआ था और पिताजी का नाम कन्हैयालाल था। आपका नाम तो बांकेविहारी लाल जी था। इन्होंने वृन्दावन के राधारमणीय गोस्वामी श्री अनंतलाल जी से दीक्षा ली थी।[106] इन्होंने सरकारी नौकरी से अवसर प्राप्त करने के बाद अपने संपूर्ण समय को चैतन्य संप्रदाय के लिए अर्पित कर दिया था। आपने गद्य एवं पद्य में चैतन्य संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांत तथा आचार संबंधित तत्वों को आधार बनाकर रचनाएँ की हैं, जिनमें प्रेम रस वाटिका, भगवान सेवा विधि, निकुंज माधुरी छद्म, ऋतु प्रमोद, विवेक मंजरी, प्रेमोद्दीपनी, ब्रज माधुर्य दर्पण, पथिक मराल, मधुर मिलन तथा श्री गौरांग शिक्षाष्टक प्रधान हैं।

3 . 3 गौड़ीय दर्शन के विकास में सहायक विद्वान

चैतन्य देव के समकालीन बहुत विद्वान एवं दार्शनिक थे। जिन्होंने पहले पहल चैतन्यदेव को उपेक्षा की दृष्टि से देखा था। किन्तु बाद में, उनके दार्शनिक विचारों से अनुप्राणित होकर उनके अनन्य भक्त हो गये थे। यह सच है कि भक्ति की भाषा में वह जादू है, जो खूँख्वार आदमी को भी सरल बना देता है। भक्ति अशरण की शरण है; अज्ञानियों का ज्ञान है। जैसे आग के सामने कोई वस्तु नहीं टिक पाती है, उसी तरह भक्ति के सामने किसी की विद्वता ड़ट नहीं पाती है । चैतन्य संप्रदाय में ऐसे विद्वानों की भरमार देखने को मिलती है, जो अपना सब कुछ भूलकर चैतन्य देव को प्रभु मान बैठे थे तथा चैतन्य संप्रदाय की स्थापना में सहायक बने थे। बाद में चलकर इसके प्रचार–प्रसार में भी हाथ बँटाया था। ऐसे विद्वानों एवं दार्शनिकों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है ।

1 . सार्वभौम भट्टाचार्य

सार्वभौम भट्टाचार्य अपने समय के सर्वोपरि नैयायिक थे। वे बंग देश के निवासी थे किन्तु उत्कल के स्वाधीन नरेश गजपति प्रतापरूद्र देव ने उनकी योग्यता से परिचित होने के

पश्चात् उन्हें अपने राज्य में बुलाकर पुरी में बसाया था। वहाँ पर निवासकर भट्टाचार्य जी ने समस्त उड़ीसा वासियों को अपनी दार्शनिक शिक्षा रूपक ज्ञान निर्झर से नहला कर शुद्धपूत बनाया था। मीतल जी ने इस महाशय के बारे में यह बताया है कि जब चैतन्यदेव सन्यासी होकर जगन्नाथ पुरी पधारे तब उनकी भेंट भट्टाचार्य महोदय से हुई। "भट्टाचार्य महोदय ने उन्हें एक साधारण सन्यासी समझकर वेदांत का उपदेश दिया।"[107] महाप्रभु ने सात दिन तक भट्टाचार्य जी से व्यासकृत ब्रह्मसूत्रों तथा शंकराचार्य जी कृत भाष्य की व्याख्या मौनभाव सहित सुनी किन्तु आठवें दिन भट्टाचार्य महाशय ने उनके मौन भाव का कारण पूछा । उत्तर में महाप्रभु ने अपनी अज्ञता को प्रधान बताया । अतंतः महाप्रभु ने यह कहा श्रीपाद! जहाँ तक वेदान्त सूत्र का संबंध है उनका अर्थ मैं भली भाँति समझ लेता हूँ किन्तु आपकी व्याख्या वेदान्त सूत्र के असली अर्थ का आच्छादन करती प्रतीत होती है। महाप्रभु ने अनेक प्रमाणों तथा तर्कों से यह सिद्ध कर दिया कि शंकाराचार्य का भाष्य वेदान्त विरूद्ध है। इस संदर्भ में महाप्रभु ने वेद तथा उपनिषदों का उदाहरण देते हुए यह कहा कि "जो वैदिक वाक्यों की निजी व्याख्या करने का प्रयत्न करते हैं, वे बिल्कुल ही ज्ञानी नहीं है। स्वयं व्याख्याओं का निर्माण करके वे अपने अनुगामियों को पथ भ्रष्ट कर देते हैं। अन्य सारा वैदिक साहित्य उन्हें मान्य नहीं है।"[108] महाप्रभु के अनुसार ऐसे अर्थों को त्याग देना चाहिए। ये स्पष्ट रूप में अवैदिक हैं। महाप्रभु के अनुसार उपनिषदों के वेद वाक्य सूर्यकिरण जैसे हैं। जिस प्रकार सूर्यप्रकाश में देखने पर सब कुछ अत्यंत स्पष्ट दिखता है; उसी प्रकार वेद वाक्य पूर्णतः स्पष्ट एवं निश्चित हैं । किन्तु मायावादी मनोधर्मी उस सूर्य प्रकाश को अनर्थ भाष्य रूपी मेघ से आच्छादित कर देते हैं। इस प्रकार भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु ने मायावाद के अनेक दोषों को प्रकाशित किया। श्री भट्टाचार्य जी ने अपनी वाक् चातुरी के द्वारा अपना मत स्थापित करने का पूरा प्रयास किया, किन्तु गौरचंद्र उस आकमण में भी अपना मत स्थापित करने में सफल रहे। महाप्रभु ने यह स्थापित किया कि वैदिक साहित्य के तीन उद्धेश्य हैं। परतत्व भगवान् श्रीकृष्ण से अपने संबंध का ज्ञान, उस ज्ञान के अनुसार भक्ति करना तथा जीवन के चरम लक्ष्य प्रेम की प्राप्ति है । एतद्व्यतीत महाप्रभु ने अनेक पुराणों के श्लोकों से यह सिद्ध किया कि भगवान् श्रीकृष्ण के आदेश को लेकर ही शंकराचार्य मायावाद के प्रचार में नियुक्त हुए थे। अंततः भगवान श्रीगौरसुन्दर की इन व्याख्याओं से श्रीभट्टाचार्य परम विस्मित हो गये । "महाप्रभु के ज्ञान से परिचित होने के पश्चात् उन्हें एक अवतारी पुरुष

मान कर उनके परम भक्त बन गये।"[109] आत्म निन्दा करते हुए श्री भट्टाचार्य महाशय महाप्रभु के चरणारविन्द में गिर पडे और श्री महाप्रभु की अहैतुकी कृपा की याचना की। महाप्रभु ने उनकी दैन्यता पर प्रसन्न होकर उन्हें अपने चतुर्भुज और षड्भुज रुपों का दर्शन कराया। अब श्री महाप्रभु की अहैतुकी कृपा होने पर वे उनकी लीलाओं का नाना प्रकार से वर्णन करने में सक्षम हो पाये। कहा जाता है कि – " हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे/ हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे " मंत्र की कीर्तन पद्धत्ति उनमें स्वतः स्फुरित हो गई थी।"[110] श्रीमन्महाप्रभु की स्तुति करते हुए श्री भट्टाचार्य ने कहा प्रभो! इस संसार के समस्त पतित जीवों के निस्तार हेतु आप अवतीर्ण हुए हैं । तर्क तथा व्याकरण से वेद की व्याख्या में दक्ष होकर भी मैं लौह पिंड जैसा कठोर था। आपके प्रचण्ड प्रताप ने मुझे द्रवित कर दिया है। अंततः चैतन्य महाप्रभु के संसर्ग में आने के बाद भट्टाचार्य जी के जीवन में जो परिवर्तत परिलक्षित किया गया था, इससे यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि जो भट्टाचार्य पहले आनन्द पूर्वक मायावाद का अध्ययन करते थे, वही ऐसे दृढ़ भक्त बन गये कि मुक्ति शब्द के उच्चारण तक से उन्हें घृणा हो गई । किन्तु श्रीमन्महाप्रभु स्पर्शमणि हैं, अपनी कृपा से वे लोहे को भी स्वर्ण बना सकते हैं। अतः उन्होंने यह समझ लिया कि श्रीगौर सुन्दर महाप्रभु साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन भगवान श्रीकृष्ण हैं।

3 . 2 प्रकाशानन्द सरस्वती

"हरेर्नाम, हरेर्नाम, हरेर्नाम केवलम् ।
कलौ नास्त्येव, नास्त्येव, नास्त्येव गतिरन्यथा।।"[111]

यह था महाप्रभु के द्वारा काशी के विद्वान परिषदों के बीच गाया हुआ श्लोक, जिसने कि प्रकाशानंद सरस्वती के ज्ञान–गर्व को भस्मीभूत कर उनके मन में भक्ति भाव भर दिया था। वे वेदांत के शुष्क ज्ञान को भूलकर श्रीकृष्ण की सरस माधुर्य भक्ति के रंग में रंग गये थे। वे कृष्ण प्रेम में विह्वल होकर विक्षिप्त के समान आचरण करने लगे । आपके बारे में यह कहा जाता है कि इस तरह के भक्तिपूर्ण भाव प्राप्त होने के पश्चात् प्रकाशानन्द बाद में चलकर प्रबोधानंद के नाम से प्रसिद्ध होने लगे ।

प्रकाशानंद सरस्वती पहले शंकर वेदांत के प्रकांड विद्वान और काशी विद्वत् समाज के शिरोमणि थे । "आप ज्ञानमार्ग की तुलना में भक्ति मार्ग को अत्यन्त हेय तथा तुच्छ समझते

थे।"[112] यह कहा जाता है कि चैतन्य महाप्रभु नीलाचल से वृन्दावन की यात्रा के दौरान काशी में दो महीनों तक ठहरे हुए थे । वहाँ पर महाप्रभु ने अपने संकीर्तन से काशी की भूमि को गुंजायमान कर दिया था। जिससे महाप्रभु की प्रेमाभक्ति तथा माधुर्यमयी उपासना की चर्चा चारों ओर होने लगी। तब काशी के महान विद्वान भी अपने ज्ञान गर्व को महाप्रभु के चरणारविंद पर समर्पित करने को बाध्य हो गये थे। श्रीमन्महाप्रभु तथा प्रकाशानन्द सरस्वती के वार्तालाप से यह तथ्य उपलब्ध होते हैं कि प्रकाशानंद ने महाप्रभु से यह जिज्ञासा की कि श्री पाद ! आप शांकर संप्रदायी होकर भी वेदान्त का अध्ययन नहीं करते हैं । इसका कारण क्या है? आप सदा गान, नृत्य, कीर्तन और संगीत में ही व्यस्त रहते हैं । इसके उत्तर में श्रीगौर सुन्दर ने यह कहा " श्रीपाद ! मेरे गुरु ने मुझे महा मूर्ख समझकर कहा कि मेरे जैसे मूर्ख का वेदांत में अधिकार नहीं है। इसके स्थान पर उन्होंने मुझे 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे /हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' मंत्र के जप का आदेश दिया और यह भी कहा कि हरे कृष्ण मंत्र सदा जप करने से तुम पूर्ण सिद्ध हो जाओगे।"[113] यथार्थ में अगर देखा जाए तो चैतन्य महाप्रभु न मूर्ख थे और न वेदांत के अज्ञानी । वे तो वास्तव में आधुनिक जगत् को यह शिक्षा देना चाहते थे कि तप त्याग से शून्य मूर्खों को मनोरंजन के उद्धेश्य से वेदांत पाठ नहीं करना चाहिए । महाप्रभु ने प्रकाशानंद सरस्वती को यह कहा कि जब तक जीव सकाम कर्म में बंधा हुआ है अथवा मनोधर्म करता है, वेदांत सूत्र के पुस्तकीय ज्ञान का अध्ययन–अध्यापन कर सकने पर भी तब तक वह महामंत्र के परम नित्य तथा अलौकिक शब्दों के अर्थ को नहीं समझ सकता है । हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन में सिद्ध हुए भक्त को अलग से वेदांतसूत्र का अध्ययन नहीं करना पड़ता है। परमगुरु श्री मन्महाप्रभु के उपदेश के अनुसार श्री भगवन्नाम को श्रीभगवान से अभिन्न समझे बिना मायावादी दार्शनिक अथवा वेदांत सूत्र के ज्ञाता बनने का प्रयास करने बाले सारे व्यक्ति मूर्ख हैं ।

वार्तालाप के दौरान महाप्रभु ने प्रकाशानंद को महामंत्र के आठ शब्द तथा षोड़श नाम का महत्व स्पष्ट करने के कम में 'नारद पांचरात्र' तथा 'कलिसंतरणोपनिषद' से उदाहरण लिया है ।[114] 'चैतन्य चरितावली' से यह ज्ञात होता है कि प्रकाशानंद सरस्वती तथा महाप्रभु के बीच पत्राचार हुआ करता था। इन पत्रों से प्रकाशानंद सरस्वती की अत्यन्त दृढ़ निष्ठा की झलक मिलती है।

"यत्रास्ते मणिकर्णिका मलहरी स्वर्दीर्धिका दीर्घिका
रत्नं तारकमोक्षदं मृततनौ शम्भुः स्वयं यच्छति ।
एतत्वद्भुतमेव यत् सुर पुरान्निर्वाणमार्गस्थितान् ।
मूढोऽन्यत्र मरीचिकासु पशुवत् प्रत्याशया धावति ।।"[115]

3 . 3 कृष्णदास कविराज

कविराज जी की गणना वृन्दावन के षड् गोस्वामियों में नहीं होती है । फिर भी उनका महत्व उन गोस्वामियों से कम नहीं है । उनके स्वरचित 'चैतन्य चरितामृत' ने ही उन्हें धार्मिक संसार में अमर बना दिया है । "श्री ब्रजभूषण दासजी ने आपका जन्म 'श्रीगौरंग' पत्रिका में 1574 ई लिखा है।"[116] आपके माता–पिता का देहांत बाल्यकाल से हो जाने से आपका लालन–पालन बुआ से हुआ था । वे आंरभ से ही विरक्त स्वभाव के थे। जिसके चलते उन्होंने विवाह करने की इच्छा नहीं की । युवावस्था से ही भिक्षु बनकर तीर्थ यात्रा करते हुए ब्रज की ओर चल दिये थे। वे गौड़ीय भक्तों के साथ वृन्दावन तथा राधाकुंड में निवास कर भगवद् भजन और धर्म चर्चा में सदैव तल्लीन रहते थे। आपकी रचनाओं में से दो मुख्य मानी जाती हैं – श्री गोविन्द लीलामृत और श्रीचैतन्य चरितामृत । 'श्रीगोविन्द लीलामृत' संस्कृत भाषा में तथा 'श्री चैतन्य चरितामृत' बगंला भाषा में है। प्रथम ग्रंथ में रूप गोस्वामी कृत 'स्मरण मंगलस्तोत्र' के आधार पर श्रीराधा–गोविन्द की अष्टकालीन दैनंदिनी लीलाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है तथा दूसरे ग्रंथ में श्रीचैतन्य देव का सर्वांगपूर्ण चरित्र का वर्णन है । इसे कविराज जी ने बडी श्रद्धा–भक्ति पूर्वक लिखा है । यह न केवल चैतन्यदेव का चरित्र चित्रित ग्रंथ है, बल्कि इसमें चैतन्य संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धांतों एवं भक्ति तत्वों का विशद् विवेचन भी किया गया है। यह बड़ी अचरज की बात है कि आपके मन में स्थित चैतन्य महाप्रभु के प्रति अदम्य निष्ठा ने ही आपको वृद्धावस्था में 'चैतन्य चरितामृत' जैसे महान ग्रंथ लिखने की प्रेरणा दी । कहा जाता है कि स्वामी हरिदास जी की प्रेरणा से आपने इस महान ग्रंथ लिखा था । इसमें वर्णित विषय के बारे में आपको रघुनाथदास गोस्वामी से भी सहायता मिली थी । दास गोस्वामी ने महाप्रभु के साथ निवास करते समय उनके गृहस्थ जीवन, सन्यासी रूप में देश भ्रमण तथा महाप्रभु के सत्संग में नीलाचल में निवास करते हुए उनकी अंतिम लीलाओं को देखा था तथा महाप्रभु के अंतरंग

पार्षद स्वरूप दामोदर आदि से अन्य लीलाओं के बारे में सुना था । इन सारी बातों की जानकारी उन्होंने कविराज महोदय को दी थी । जिससे कविराज महोदय को चैतन्य महाप्रभु की जीवनी के आदि, मध्य तथा अंत्य लीला के रूप वर्णन करने में सहायता मिल पायी थी । सुबलस्याम ने इसका पद्यानुवाद ब्रज भाषा में किया है । इस रचना को पूर्ण रूप 1639 ई में मिलने के पश्चात् आप 1645 ई में गोलकवासी हो गये थे ।

2 . 4 नारायण भट्ट

ब्रज की गौरव–वृद्धि करने वालों में नारायण भट्ट जी का स्थान सर्वोपरि है। किन्तु यह दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने उनकी उपेक्षा की है। ऐसे कि उनका जन्म संवत् भी अशुद्ध लिखा है ।[117] मिश्रबंधुओं ने इनका जन्मकाल 1620 ई. बताया है । डॉ. ग्रियर्सन के भी इनसे सहमत होने का तथ्य प्राप्त होता है, जो सर्वथा भ्रामक है। "नारायण भट्ट की सातवीं पीढ़ी में एक जानकी प्रसाद भट्ट हुए हैं। उन्होंने संस्कृत में 'श्रीनाराणभट्ट चरितामृतम्' की रचना 1770 ई. के लगभग में की थी ।"[118] इस ग्रंथ से नारायण भट्ट जी के बारे में यह सूचना मिलती है कि वे तथा उनके परिवार वाले माध्व मतावलंबी कृष्णोपासक थे । स्वयं नारायण भट्ट जी कुछ दिनों तक तीर्थ यात्रा करने के पश्चात् ब्रज में आकर बस गये थे। उस समय वृन्दावन, राधाकुंड आदि ब्रज के पवित्र जगहों पर गौड़ीय भक्तों की भरमार थी । नारायण भट्ट महाशय का मन भी शचीनंदन के प्रति आकृष्ट हो गया था। वे चैतन्य महाप्रभु की प्रेरणा से भक्ति ग्रन्थों की रचना, कृष्णभक्ति तथा हरि कीर्तन का प्रचार आदि कार्य करने लगे थे । अंततः उन्होंने कृष्णदास ब्रह्मचारी से दीक्षा ली थी । तदुपरांत अनेक महत्वपूर्ण कार्यो का श्रीगणेश कराया था। इसमें सफलता भी उन्हें प्राप्त हुई थी जिसकी सूचना हमें नाभादास तथा प्रियादास जी की रचनाओं से मिलती है। आपकी प्रशंसा करते हुए प्रियादास जी ने यह लिखा है कि –

"भट्ट श्री नारायण जू, भये ब्रज परायन,
जायें जहाँ गायें, तहाँ ब्रज करि ध्याये हैं ।
ठौर–ठौर रास के विलास लै प्रकास किये,
जिये यों रसिक जन, कोटि सुख पाये हैं।।"[119]

'श्रीनारायण भट्ट चरितामृत' से उनकी कृतियों के बारे में यह तथ्य मिलता है कि उन्होंने साठ ग्रंथों की रचना संस्कृत भाषा में की थीं । उनमें से 'ब्रजभक्ति विलास', 'वृहत् ब्रज गुणोत्सव' तथा 'रसिकाह्लादिनी' प्रमुख हैं ।

2 . 5 विश्वनाथ चकवर्ती

विश्वनाथ चकवर्ती, जो वैष्णव दीक्षा ग्रहण के उपरांत 'हरिवल्लभ' के नाम से जाने जाते थे, का जन्म मुर्शिदाबाद जिले के देवग्राम नामक स्थान पर हुआ था। आप अपने समय के प्रकांड़ विद्वान,दार्शनिक, परम भक्त और रसवेत्ता तथा महान् कवि और ग्रंथकार थे। वे वृन्दावन के गौड़ीय विद्वनों में अग्रणी थे। यह ध्यान रहे कि पहले रूप तथा अन्य गोस्वामियों के द्वारा रचित ग्रंथ की सरल टीकाऍं उन्होनें लिखी थीं, जिससे गोस्वामियों से रचित 'गौड़ीय संप्रदाय' के दार्शनिक तथा धार्मिक तत्वों को समझने के लिए लोगों को सुविधा हुई थी। इनके अलावा उन्होंने अनेक मौलिक ग्रन्थों की रचना भी की थी, जिसके कारण उन्हें रूप गोस्वामी का अवतार माना गया था।"[120] यह गौड़ीय संप्रदाय के विकास के लिए बड़ी उपलब्धि थी कि जीव गोस्वामी के पश्चात् गौड़ीय संपद्राय के प्रचार–प्रसार में आयी शिथिलता को उन्होंने दूर कर पाया था । आपने अनेक विद्वतापूर्ण मैलिक एवं टीका ग्रन्थों की रचना की थीं, जिसमें कृष्ण भावनामृत, माधुर्य कादम्बिनी, स्तवामृत लहरी, चमत्कार चंद्रिका, क्षणदागीत चिंतामणि आदि मुख्य मानी जाती हैं ।

2 . 6 बलदेव विद्याभूषण

बलदेव विद्याभूषण उत्कल प्रेदेशान्तर्गत रेमुणा के निकटवर्ती एक ग्राम में जन्मे थे। मीतल जी ने यह अनुमान लगाया है कि उनका जन्म 18 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। "उन्होंने श्यामानंद जी की शिष्य परंपरा में राधा दामोदर पंडित से दीक्षा लेकर उन्हीं से अपनी आरंभिक शिक्षा प्राप्त की थी ।"[121] जन्म से तुसली के पौधे के कोपलों से सुगंध निकलने की तरह बलदेव विद्याभूषण जी के बचपन से ही उनकी विलक्षण प्रतिभा की झलक मिली थी। वे शीघ्र ही व्याकरण, अलंकार, न्याय, वेदांतादि की शिक्षा प्राप्त कर धुरंधर विद्वान बन गये थे। इनकी विद्वता का चित्र हमें "जयपुर नरेश महाराजा जयसिंह के द्वारा आयोजित वैष्णव सम्मेलन में चैतन्य मत के समर्थन में उद्गारित तर्क से स्पष्ट देखने को मिलता है।"[122] इस

सम्मेलन में उन्होंने परकीयावाद विषयक मान्यता को भी वेदानुकूलित सिद्ध कर दिखलाया था। अंततः समस्त वैष्णव भक्तों ने यह स्वीकारा कि इस मत पर आधारित वेदांत भाष्य रचा जाना चाहिए । इस महान कार्य को बलदेव विद्याभूषण ने किया था, जो 'गोविन्द भाष्य' के नाम से परिचित है । इस कृति की सफल रचना के आधार पर उन्हें 'विद्याभूषण' की उपाधि से भूषित किया गया था। विश्वनाथ चक्रवर्ती महाशय की रचनाओं की तरह भी आपकी रचनाएँ भक्ति तथा साहित्य दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। 'गोविन्द भाष्य' के अलावा आपके सिद्धांत रत्न, प्रमेय रत्नावली, सहित्य कौमुदी आदि साहित्य वांङ्गमय में श्रेष्ठ कृति मानी जाती हैं।

2 . 7 नरोत्तम दास

नरोत्तम दास गोपालपुर परगना के धनी कायस्थ जमींदार राजाकृष्णानंद दत्त के पुत्र थे । वे बचपन से ही भक्ति दी ओर आकृष्ट हुए थे। जिसके फल स्वरूप घर, बार छोड़ वैरागी जैसे जीवन यापन करते हुए वृन्दावन में आ बसे । उन्होंने जीव गोस्वामी के संसर्ग में रहकर वैष्णव भक्ति ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा उन्हीं की कृपा से लोकनाथ जी से मंत्र दीक्षा प्राप्त कर पायी । वे जीव गोस्वामी के आदेशानुसार श्रीनिवास तथा श्यामानंद से मिलकर बंग प्रदेश में वृन्दावन के गोस्वामियों की रचनाओं के प्रचारार्थ आये थे। वहाँ पर उन्होंने एक नई कीर्तन शैली का आंरंभ किया, जो 'गरानहाटी' नाम से जाना जाता है । नरोत्तम दास और उनके शिष्यों के कारण उत्तरी बंग प्रदेश में चैतन्यमत का व्यापक प्रचार संभव हो पाया था। वे बंगला भाषा के सुकवि और भक्ति पूर्ण विशिष्ट पदावली के रचयिता थे। आपके रचे हुए अनेक पद आज भी उपलब्ध हैं, जो गौड़ीय वैष्णवों में श्रद्धापूर्वक गाये जाते हैं । आपके प्रार्थना के पद तो बेजोड़ हैं। नरोत्तम दास के 64 पद 'पदकल्पतरू' में संकलित हैं। आपके सुललित कंठ में ऐसा जादू था जो, समस्त भक्त श्रोताओं को अपनी सुध–बुध शून्य करदिया करता था । उनके रचे हुए कई छोटे–छोटे ग्रन्थ हैं जिनमें गौड़ीय भक्ति–तत्व और भजन पद्धति का सार निहित है। इनमें 'प्रेम भक्ति चंद्रिका' तथा 'प्रार्थना विशेष' प्रसिद्ध हैं ।

3 . 4 निष्कर्ष

सत्य तो यह है कि कोई साहित्य या दर्शन तब जीवित रह सकता है जब इसका व्यवहार हो, उस पर कलम चलती रहे । गौड़ीय दर्शन ठीक उस प्रकार का दर्शन है जिस पर आचार्यों और कवियों की तलवार रूपी कलम साहित्यिक महा सग्राम में चलती रही । ध्यान रखें कि तलवार, हिंसा के द्वारा मनुष्य के वाह्य धरातल पर विजय प्राप्त कर पाती है किंतु कलम से मनुष्य के वाह्य धरातल के साथ–साथ उसके आंतरिक धरातल पर विजय प्राप्त किया जा सकता है ।

गौर करें कि यहाँ किसी महाभारत के महासंग्राम की बात नहीं की जाती है बल्कि बात की जाती है चैतन्य महाप्रभु की प्रेमभक्ति से दिवाने कवियों की, जिन्होंने अपनी तलवार रूपी कलम से मोह, माया में ग्रस्त अंधकारमय संसारवासियों को धर्म की विजय दिलायी है । वे महाप्रभु की अनन्य निष्ठा, भावविह्वलता से इतनी प्रभावित थे कि स्वयं महाप्रभु को कृष्ण का अवतार मानकर अपनी रचनाओं में उनकी आरती करने लगे – 'आरती कीजै श्री गौड़ेश्वर की '।

इस संप्रदाय के कवियों की रचनाओं के अनुशीलनोपरांत सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि समाज में भक्ति को परिनिष्ठित रूप में स्थापित करने का श्रेय इस संप्रदाय के कवियों को जाता है । महाप्रभु के प्रवलोत्कंठामयी भक्ति से प्रेरित रूप गोस्वामी जी तथा उनसे रचित ग्रंथ 'भक्तिरसामृत सिंधु' भक्तजन मानस पर अमिट छाप छोड़ गई है ।

संदर्भ

1 . भागवत संप्रदाय – पृ –504

2 . भागवत संप्रदाय – पृ –508

3 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –27

4 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –28

5 . भागवत संप्रदाय – पृ –507

6 . भागवत संप्रदाय – पृ –507

7 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –34

8 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –34

9 . भागवत संप्रदाय – पृ –510

10 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –35

11 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –37

12 . चैतन्य चरितामृत

13 . भागवत संप्रदाय – पृ –513

14 . भक्तमाल

15 . भागवत संप्रदाय – पृ –514

16 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –40

17 . भागवत संप्रदाय – पृ –515

18 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –130

19 . बाबा कृष्णदास, कुसुम सरोवर, वृन्दावन

20 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –131

21 . भक्तमाल छप्पय सं. 20– पृ –520

22 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ – 132

23 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –132

24 . त्रिपथगा, अगस्त 1996 (कुअँर प्रसाद सिंह का लेख)

25 . चैतन्य संप्रदाय का ब्रजभाषा काव्य – पृ – 30

26 . चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य से उद्धृत – पृ –219

27 . सम्मेलन पत्रिका, भाग 54, सं –2

28 . ग्वालिनी झागरौ, अंतिम पत्र, छंद सं – 18

29 . चैतन्य संप्रदाय का ब्रजभाषा काव्य – पृ –32

30 . चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य – पृ –212

31 . घनानंद – पृ –67

32 . घनानंद – पृ –329–584

33 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –139

34 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –140

35 . भक्तमाल छप्पय (हस्तलिखित प्रति)

36 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –141

37 . ब्रज साहित्य का इतिहास – पृ–179

38 . गीतगोविन्द भाषा का मंगलाचरण

39 . सेवा प्रणालिका– गोस्वामी राधिका नाथ (बारह वैष्णवन की वार्ता)

40 . जमुनावल्लभ प्रकाशित रामराय कृत आदिवाणी का मंगलाचरण

41 . गीतगोविन्द भाषा का मंगला चरण

42 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृं –149

43 . भक्तिरसबोधिनी टीका, छंद सं. 502

44 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –151

45 . चैतन्य संप्रदाय का ब्रजभाषा काव्य – पृ – 40

46 . ब्रजमाधुरी सार – पृ –101

47 . कृष्णभक्ति काव्य में सखीभाव – पृ –619

48 . आकबरी दरवार के हिंदी कवि – पृ –447

49 . चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य पृ –237

50 . चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य पृ –238–39

51 . ब्रजमाधुरी सार – पृ –76

52 . भक्त सुमिरनी – पृ –37

53 . श्री गोवर्द्धन भट्ट ग्रंथावली

54 . ब्रजमाधुरी सार – पृ –76

55 . चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य – पृ –242

56 . ब्रजमाधुरी सार – पृ –76 –78

57 . हिन्दी साहित्य का इतिहास – पृ – 183

58 . ब्रजमाधुरी सार – पृ –76

59 . कृष्णभक्ति काव्य में सखीभाव – पृ –616

60 . नागरी प्रचारणी पत्रिका, वर्ष 51, अंक–1

61 . ब्रज साहित्य का इतिहास – पृ – 181

62 . चैतन्य संप्रदाय का ब्रजभाषा काव्य – पृ –51

63 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य से उद्धृत – पृ –162

64 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य से उद्धृत – पृ –165

65 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य से उद्धृत – पृ –166

66 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य से उद्धृत – पृ –161

67 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य से उद्धृत – पृ –167

68 . यमुनावल्लभ की आदिवाणी की भूमिका – पृ –3

69 . दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता – पृ –369–72

70 . ब्रज साहित्य का इतिहास पृ –181

71 . ब्रज साहित्य का इतिहास – पृ – 181

72 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –173

73 . ब्रज साहित्य का इतिहास – पृ – 182

74 . चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य – पृ –298

75 . चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य – पृ –299

76 . चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य – पृ –300

77 . राधारमण रस सागर, छंद सं . 112

78 . चैतन्य संप्रदाय का ब्रजभाषा काव्य – पृ –66

79 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –184

80 . ब्रज साहित्य का इतिहास – पृ – 183
81 . ब्रज साहित्य का इतिहास – पृ –183
82 . चैतन्य संप्रदाय और हिन्दी साहित्य को उसकी देन – पृ –279
83 . चैतन्य संप्रदाय का ब्रजभाषा काव्य – पृ –44
84 . भक्त कवि व्यास जी की वाणी – पृ –194
85 . व्यास वाणी – पृ –258
86 . भक्तिरस बोधिनी, छंद सं .1
87 . चैतन्य संप्रदाय का ब्रजभाषा काव्य – पृ –67
88 . भक्ति रस बोधिनी टीका, कवित्त सं . पृ –626–29
89 . भागवत संप्रदाय – पृ –422
90 . अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, भाग–1 – पृ –64
91 . भक्त नामावली , दोहा सं . 81
92 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –208
93 . मिश्रबंधु विनोद, भाग. 2 – पृ –455
94 . चैतन्य संप्रदाय का ब्रजभाषा काव्य – पृ –54
95 . चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य – पृ –274
96 . गौर नामरस चंपु, प्रथम अंक का मंगलाचरण
97 . ब्रज साहित्य का इतिहास – पृ –184
98 . माधुरी वाणी की भूमिका
99 . वल्लभ रसिक की वाणी की भूमिका
100 . श्री गौरांग, वर्ष–1, अंक 4– पृ –31
101 . चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य – पृ –354
102 . ब्रजमाधुरी सार – पृ – 268
103 . चैतन्य संप्रदाय का ब्रजभाषा काव्य – पृ –88
104 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –278
105 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –333
106 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –357

107 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –41

108 . श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत – पृ –231

109 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –41

110 . श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत – पृ –244

111 . कलह और पाखंड़ के इस युग में मुक्ति की एकमात्र विधि हरिनाम कीर्तन है । कलियुग में अन्य कोई गति नहीं है, अन्य कोई गति नहीं हैं, अन्य कोई गति नहीं है । (वृहदनारदीय पुराण, 38/126)

112 . चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –42

113 . विस्तार हेतु द्रष्टव्य, श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत पुस्तक के अध्याय 18, 19।

114 . (अ) एषो वेदः पड़ंगानि छंदासि विविधा सूराः ।
सर्वमअष्टाक्षरांतः स्थं यच्चान्यदपि वांड्मयम्।।
सर्ववेदांत सारार्थः संसारार्ण वतारणः ।। (नारद पांचरात्र)

(आ) हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ।।
इति षोड़शकं नाम्नाकंलिकल्मषनाशनं ।
नातः परतरोपायः सर्व देवेषु दृश्यते ।।

115 . जिस स्थान पर मणिकर्णिका कुंड़ और पाप ताप हारिणी स्वदिर्घिका भगवती भागीरथी है, जहाँ मुँद को देवाधिदेव भगवान शुलपाणि स्वयं मोक्ष के मार्ग में स्थित सुरपुरी का परित्याग करके पृथ्वी पर पशु के समान इधर–उधर भटकते फिरते हैं, यही आश्चर्य है ।(चैतन्य चरितावली, खंड़–3, पृ .374)

116. श्री गौरांग, वर्ष–2, अंक–2 ।

117. मिश्रबंधु विनोद – पृ –403

118. चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –60

119. चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –61

120. चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –65

121. चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –67

122. चैतन्यमत और ब्रज साहित्य – पृ –68

अध्याय–चार

गौड़ीय संप्रदाय के दर्शन और उपासना विधि–विधान

4 . 0 प्रस्तावना

4 . 2 गौड़ीय संप्रदाय का दर्शन : अचिंत्यभेदाभेद

1 . ईश्वर 2 . जीव 3 . प्रकृति 4 काल 5 . कर्म

1.1 अचिंत्य भेदाभेद : ब्रह्म, जीव, जगत्, माया

1 – गौड़ीय संप्रदाय में ब्रह्म तत्व

(अ) श्रीकृष्ण का स्वरूप

2 – गौड़ीय संप्रदाय में राधा तत्व

(अ) राधा का परकीया भाव

3 – गौड़ीय संप्रदाय में जीव तत्व

4 – गौड़ीय संप्रदाय में जगत् (संसार) तत्व

5 – गौड़ीय संप्रदाय में माया तत्व

4 . 2 गौड़ीय संप्रदाय के भक्ति तत्व

1 – साधन भक्ति

2 – भाव भक्ति

3 – प्रेम भक्ति

4 . 3 प्रेम भक्ति की परिणति महाभाव

4 . 4 भक्ति की रस रूप में स्थापना

4 . 5 गौड़ीय संप्रदाय के उपासना विधि–विधान

4 . 6 गौड़ीय संप्रदाय में भक्ति उत्प्रेरक साधन

4 . 7 गौड़ीय संप्रदाय की साधना के विभिन्न अंग

4 . 8 निष्कर्ष

4 . 0 प्रस्तावना

वैष्णव धर्म के प्रायः सभी संप्रदाय किसी न किसी दार्शनिक विचारधारा से संपृक्त रहे हैं। किन्तु जहाँ तक वैष्णव संप्रदायों के गौड़ीय संप्रदाय से संबंध की बात है, चैतन्य महाप्रभु किसी विशिष्ट दार्शनिक विचारधारा को लेकर नहीं चले, बल्कि उन्होंने दार्शनिकता की अपेक्षा उपासना विधि तथा भक्ति भावना को प्रमुखता दी तथा ईश्वर के नाम संकीर्तन के द्वारा उसे जन मानस तक पहुँचाया । वे तो प्रेमदशा में लीन भाव की विविध भूमिकाओं में संचरण करनेवाले तन्मयी व्यक्ति थे । किन्तु उत्कट साधना और मौलिक उपदेशों के कारण वेदान्त तत्व की मीमांसा के प्रेरक सूत्र उनके पार्षदों को उनकी तत्वचर्चा के माध्यम से उपलब्ध हो गये थे । उन्होंने अपनी तत्वचर्चा के माध्यम से 'अचिन्त्य दर्शन' का विमर्श किया था। उन्होंने श्रीमद्भागवत को ब्रह्मसूत्र का योग्य भाष्य समझते हुए अन्यों की तरह अलग भाष्य नहीं लिखा । उन्होंने मध्वाचार्य प्रणीत भाष्य को ही भागवत का अनुमोदित ग्रंथ समझकर ग्रहण किया तथा उसमें जिन स्थलों पर श्रीमद्भागवत का पार्थक्य लक्षित हुआ उन स्थलों पर उन्होंने सामंजस्य स्थापित किया । अंततः उनसे प्रभावित तीन गोस्वामी; रुप, सनातन और जीव ने अपनी ग्रंथों; मुख्यतः लघुभागवतामृत, वृहद्भागवतामृत और षट् संदर्भादि में महाप्रभु के भक्ति विमर्श से फल श्रुति रूप से निकले तत्व को 'अचिंत्यभेदाभेद' दर्शन के रूप में अंकुरित तथा पल्लवित किया । किन्तु इसे सिद्धान्तों के माध्यम से एक ठोस रूप प्रदान करने का काम बाद में बलदेव विद्याभूषण ने किया । अतः प्रस्तुत अध्याय में गौड़ीय वैष्णव दर्शन के मूल सिद्धान्त तथा उसकी उपासना विधि और विधानों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

4 . 1 गौड़ीय संप्रदाय का दर्शन : अचिंत्य भेदाभेद

गौड़ीय संप्रदाय के दर्शन को 'अचिंत्य भेदाभेद' कहा जाता है । यह 'अचिंत्य भेदाभेद' सही रूप में अपने–आपमें एक जटिल शब्द है। अन्य वैष्णव सप्रदायों की तरह यह इतना सरल तथा सुबोध नहीं है। इसे हृदयतल पर उतारने के लिए उसकी गहराई में जाना होगा; इस सिद्धांत के हर तत्व को परखना होगा। यह पहले बताया जा चुका है कि अचिंत्य भेदाभेद का गंभीर दार्शनिक विवेचन गौड़ीय मत में सर्वप्रथम जीव गोस्वामी के ग्रंथों में हुआ है। इन्होंने इसका समर्थन भागवत के आधार पर किया है। जीव गोस्वामी के उपरांत बलदेव

विद्याभूषण ने इसकी पुष्टि 'गोविन्द भाष्य' द्वारा की है। बलदेव विद्याभूषण ने गोविन्द भाष्य में मुख्य रूप में पाँच तत्वों पर अपनी दृष्टि डाली है। (1) ईश्वर (2) जीव (3) प्रकृति (4) काल (5)कर्म । इनका संक्षिप्त विवेचन निम्न लिखित है।

ईश्वर : ईश्वर स्वतन्त्र विभु चैतन्य, सर्वकर्ता, सर्वज्ञ, मुक्तिदाता और ज्ञान स्वरूप हैं। वे जगत् का निमित्त तथा उपादान कारण हैं । अपनी अचिंत्य शक्ति के बल से वे स्वयं जगत् में परिणत होने पर स्वरूप से अविकृत होते हैं।

जीव : जीव अणु चैतन्य, अनादि किन्तु माया मोहित और बद्ध है । ईश्वर की विमुखता ही उसके बंधन का कारण है। ईश्वर की कृपा से जीव के बंधन कट जाते हैं और वह मुक्ति को प्राप्त करता है। मुक्त जीव, ब्रह्म के समान आनन्द प्राप्त करता हुआ भी उससे पृथक् बना रहता है। वह अणु रूप होने के कारण स्वरूप तथा सामर्थ्य में विभुरूप ब्रह्म से पृथक् है ।

प्रकृति : प्रकृति नित्य और ब्रह्म की सत्यरूपा है । वह ब्रह्म के आश्रित और उसकी वशवर्तिनी है।

काल : काल परिवर्तन शील जड़ द्रव्य है । वह प्रलय–सृष्टि का निमित्त रूप है।

कर्म : कर्म अनादि, नश्वर और जड़ है । वह ईश्वर की शक्ति का रूप है।

उपर्युक्त पांच तत्वों के अलावा प्रभुदयाल मीतल जी ने 'गोविन्द भाष्य' के आधार पर चार अनुबंधों का रूप बताया है ।

(1) अधिकारी (2) संबंध (3) विषय और (4) प्रयोजन । इनके अतिरिक्त उन्होंने यह बताया है कि ''बलदेव विद्याभूषण ने श्रीमध्वाचार्य द्वारा मान्य नौ प्रमेयों को भी स्वीकार किया है।''[1]

1 .1 अचिंत्य भेदाभेद : ब्रह्म, जीव, जगत्, माया

1 – गौड़ीय संप्रदाय में ब्रह्म तत्व

जीव गोस्वामी जी के द्वारा प्रदत्त अचिंत्य भेदाभेद, जो पहले बताया जा चुका है, की व्याख्या करते हुए श्रीकृष्णदास बाबा ने कहा है ''ब्रह्म बृहत्, सर्वज्ञ, स्वाधीन एवं अबाध ज्ञान वाला है। जीव अणु, अल्पज्ञ, पराधीन एवं प्रतिहत ज्ञान वाला है। इस प्रकार दोनों का अनेक अंश में भेद देखा जाता है। परन्तु 'तत्वमसि' इत्यादि अभेद प्रतिपादक शास्त्रों का समन्वय केवल कथंचित् चैतन्यांश का सादृश्य लेकर ब्रह्म के साथ जीव का अभेदत्व, गौण रूप में

स्वीकार करके होता है।[2] तथा 'भेदाभेद' के विचार का विवेचन करते हुए श्री सनातन गोस्वामी ने "ब्रह्म एवं जीवादि संबंध का उदाहरण समुद्र और उसकी लहर से दिया है।"[3] ब्रह्म को गौड़ीय दर्शन में परमब्रह्म श्रीकृष्ण का अंश माना गया है। यह ध्यान रहे कि जीव में ब्रह्मांश विद्यमान रहता है। किन्तु परमब्रह्म एक स्वतंत्र सत्ता होता है। परमब्रह्म स्वतंत्र है किन्तु ब्रह्म, परमब्रह्म के अधीन है। अर्थात् इस दर्शन के अंतर्गत श्रीकृष्ण को परमब्रह्म के रूप में स्वीकारा गया है ।

(अ) श्रीकृष्ण का स्वरूप

परमब्रह्म श्रीकृष्ण सत्–चित्–आनंद का स्वरूप हैं । वे सगुण भी हैं और निर्गुण भी। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सनातन गोस्वामी को शिक्षा देने के प्रसंग में बताया है कि श्रीकृष्ण समस्त आदि, अंशी, आश्रय एवं ईश्वर तथा चिदानंद स्वरूप हैं –

"सर्वादि सर्व–अंशी किशोर–शेखर,
चिदानन्द देह सर्वाश्रय सर्वेश्वर।"[4]

'भागवत संदर्भ' में इसके संबंध में यह बताया गया है कि "परमब्रह्म, परमात्मा और भगवान – एक ही तत्व के तीन नाम हैं ।"[5] श्रीकृष्ण ही ज्ञानियों के परमब्रह्म, योगियों के परमात्मा एवं भक्तों के भगवान हैं। गौड़ीय मत में भक्तों के लिए श्रीकृष्ण का भगवान रूप ही श्रेयस्कर है। वही उनका पूर्णतम रस रूप है। दार्शनिक दृष्टि से ब्रह्म और परमात्मा भगवान की ही आंशिक अभिव्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं । सूर्य के ज्योति पुंज के समान ब्रह्म भगवान कृष्ण की अंगकांति है एवं एक ही सूर्य जैसे अनंत स्फटिक मणियों में अनेक रूप होकर प्रकाशित होता है उसी प्रकार परमब्रह्म कृष्ण समस्त ब्रह्मों में भिन्न–भिन्न रुप में प्रकाशित होते हैं । अतः श्रीकृष्ण के भगवान रूप में बह्म की पूर्णाभिव्यक्ति है अर्थात् श्रीकृष्ण ही परमब्रह्म हैं । 'लघुभागवतामृत' के अनुसार इस परमब्रह्म के तीन रूप हैं :– स्वयंरूप, तदैकात्मरूप तथा आवेश रूप।[6] उन तीनों रूपों में कृष्ण ही स्वयं रुप हैं । उनके भी तीन रूप हैं – द्वारका रूप, मथुरा रूप और ब्रजलीला रूप । ये तीनों रूप उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ।

श्रीकृष्ण अद्वय ज्ञान तत्व हैं।[7] परमब्रह्म श्रीकृष्ण स्वयं सिद्ध तत्व हैं । वे सच्चिदानंद स्वरूप हैं । कहा गया है कि "कृष्णस्तु भगवान स्वयं।"[8] अर्थात् श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान हैं और यही उनका श्रेष्ठतम रूप भक्तों का चरम उद्देश्य है। यही परमब्रह्म श्रीकृष्ण भगवान

अपने अवतरित रूप में लीलामय पुरुषोत्तम हैं। अन्य अवतार इनके अंशकला आदि हैं, किन्तु श्रीकृष्ण स्वयं अवतारी एवं पूर्ण ब्रह्म हैं।"[9] 'चैतन्य चरितामृत' में यह पंक्ति इस संदर्भ में मिलती है कि –

"स्वयं भगवान कृष्ण, कृष्ण परतत्व ।
पूर्णज्ञान, पूर्णानन्द, परम महत्व ।।"[10]

तथा एक जगह और 'चैतन्य चरितामृत' में पद आया है –

"ईश्वर परम कृष्ण स्वयं भगवान । सर्व अवतारी, सर्व्व–कारण प्रधान ।
अनन्त वैकुण्ठ आर अनंत अवतार । अतन्त ब्रह्माण्ड इहा सबा आधार।[11]

इस प्रकार गौड़ीय संप्रदाय में कृष्ण स्वयं भगवान हैं, सर्वशक्तिमान हैं, सबके कारण स्वरूप हैं तथा सबके आश्रय हैं । वे सभी शक्तियों के मूलाधार, सर्व नियन्ता, सर्वेश्वर और सर्वाश्रय हैं –

"कृष्ण एक सर्वाश्रय कृष्ण सर्वधाम ।
कृष्ण शरीरे सर्व विश्वेर विश्राम ।।"[12]

श्रीकृष्ण लीलामय हैं । उनकी लीला केवल आनन्द प्राप्ति के लिए है। आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण, आनन्द के आस्वादन के लिए आनन्द की प्रेरणा से लीला करते हैं। चैतन्य चरितामृत में श्रीकृष्ण की नरलीला को श्रेष्ठ बताया गया है –

"कृष्णेर जेतक खेला, सर्वोत्तम नर लीला नरवपु कृष्णेर स्वरूप ।
गोपवेश वेणुकर, नव किशोर नटवर, नरलीलार हय अनुरूप ।।"[13]

कृष्ण के बारे में इसमें यह कहा गया है कि कृष्ण मूर्तिमान श्रृंगार है और शुद्ध माधुर्य रस के आस्वादन के लिए ही पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं । राधा के साथ निरंतर प्रेम क्रीडा ही उनका कार्य है । इस प्रकार विष्णुपुराण में यह बताया गया है कि "यात्रावतीर्ण कृष्णाख्यं परब्रह्म नराकृतम् ।"[14] अर्थात् नररूप में लीला करनेवाले कृष्ण परब्रह्म हैं और नराकृति ही उनका निज स्वरूप है। यह ध्यान रहे कि यहाँ जिस माधुर्य रस की बात की गई है उसकी विस्तृत चर्चा यथा स्थान पर की जाएगी ।

श्रीकृष्ण के माधुर्यमय रूप की परिणति ब्रजलीला में हुई है । इस ब्रजलीला में श्रीकृष्ण में रूप माधुर्य, वेणु माधुर्य, प्रेम माधुर्य और लीला माधुर्य का समन्वित रूप देखने को मिलता है । यह अन्य किसी स्वरूप में नहीं है । इसलिए श्रीकृष्ण स्वरूप की श्रेष्ठता है ।

श्रीकृष्ण के दयामय स्वरूप के बारें में 'चैतन्य चरितामृत' में यह कथित है कि मायाबद्ध जीव का निस्तार ही ईश्वर का स्वभाव है – 'लोक निस्तारिब एह ईश्वर स्वभाव' । अतः परमब्रह्म कृष्ण अन्य गुणों के साथ करुणामय भक्तवत्सल हैं । वे स्वतंत्र होते हुए भी अपनी भक्तवत्सलता के कारण भक्त के अधीन रहते हैं। उनकी करुणा मात्र से जीव का उद्धार संभव होता है ।

(आ) – राधा का स्वरूप

पहले इस ओर संकेत किया जा चुका है कि कृष्ण की तीन शक्तियाँ हैं – अंतरंगा, बहिरंगा और तटस्था । परमब्रह्म कृष्ण का सत्, चित् और आनन्द स्वरूप के अनुसार उनकी स्वरूप शक्ति; संधिनी, संवित् और ह्लादिनी, तीन प्रकार की हैं । संधिनी, श्रीकृष्ण के सत् अंश की शक्ति है । इसके द्वारा भगवान स्वयं अपनी तथा अन्य वस्तुओं की सत्ता धारण किये हुए रहते हैं । चित् अंश की शक्ति, संवित् शक्ति है । यह ही ज्ञान शक्ति है। आनन्द अंश की शक्ति ह्लादिनी शक्ति है। इसके द्वारा भगवान स्वात्मभूत आनंद का अनुभव करते हैं और दूसरों को भी आनन्द देते हैं।

श्रीराधा, कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति की सार स्वरूपा हैं। वह कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति होने के कारण राधा को कृष्ण का प्रेम स्वीकार की गई है। ये कृष्ण को आह्लादन करती हैं। स्वयं कृष्ण, राधा–रूपी ह्लादिनी शक्ति का आश्रय लेकर भक्तों का पोषण करते हैं । कृष्ण की इच्छाओं की पूर्ति राधा की मात्र आराधना है । इसी प्रेमी राधा को कृष्ण का दर्शन सर्वत्र होता है । वे सर्वदा कृष्ण का गुण श्रवण करती है और सदा कृष्ण का ही नाम स्मरण करती है । इस प्रकार राधा कृष्णमयी है । पं. बलदेव उपाध्याय ने गौड़ीयमत में राधा तत्व को स्पष्ट करने के क्रम में यह बताया है कि "रूप गोस्वामी ने श्रीराधा के प्रसंग में प्रेमतत्व की बड़ी ही मनोवैज्ञानिक व्याख्या अपने ग्रंथ में प्रस्तुत की है, जो आधुनिक मनोविज्ञान के पंडितों के लिए विशेष रूप में मनन योग्य है।"[15] रूप गोस्वामी जी ने राधा को कृष्ण का महाभाव बताया है। इस महाभाव की दशा में पहुँचने के लिए कुछ सोपानों को पार जाना होता है। इस क्रम में उन्होंने स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव तथा महाभाव की बात कही है।

स्नेह . . . मान . . . प्रणय . . . राग . . .अनुराग. . .भाव . . महाभाव

जब प्रेम घनीभूत दशा में प्रभावशाली बन जाता है, हृदय देश इसकी वर्षा से रससिक्त हो उठता है तब यह स्नेह कहलाता है । मान की स्थिति तब आती है जब स्नेह विकास की ऊर्ध्वगामी दिशा में उपभोग के माधुर्य को बढ़ाने और पुष्ट करने के लिए औदासीन्य की भावना को अपनाता है । इस दशा में भाव, क्रोध जैसे मालूम पड़ते हैं, किन्तु सचमुच यह क्रोध नहीं है । प्रणय की दशा में प्रेमी–प्रेमिका के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है। यह प्रेम की वह दशा है, जिसमें प्रेमी–प्रेमिका एक क्षण के लिए भी अलग नहीं रह सकते हैं । राग का अनुभव तब होता है, जब प्रेम पात्र के लिए नाना प्रकार की यातनाएँ सहने के बावजूद प्रेमी के हृदय में उसके प्रति आनन्द ही आनन्द विद्यमान रहता है । वह न किसी प्रकार का खेद पाता है और न विषाद । तब वह स्नेह राग की संज्ञा प्राप्त कर लेता है । राग के पाश्चात् होने वाली उस मानसवृत्ति को अनुराग कहा जाता है । इस दशा में प्रेमी प्रेमपात्र के रूप में, व्यवहार में तथा आचरण में नवीन माधुर्य तथा आस्वाद पाता है।

भाव के बिना प्रेम असंभव है। भाव के उत्पन्न होने में दो तत्वों की आवश्यकता होती है – आश्रय तथा विषय। आश्रय तो स्वयं भक्त होता है तथा विषय भगवान । यह ध्यान रहे कि भाव की परिपक्व दशा ही प्रेम है । इस प्रेम की पूर्ण परिणति होने के लिए भक्त को भाव साधना की आवश्यकता होती है। इस ओर रूप गोस्वामी ने अपने ग्रंथ 'उज्ज्वलनीलमणि' तथा 'भक्तिरसामृत सिन्धु' में संकेत किया है। भाव उस मानस दशा का नाम है, जिसकी आत्मा है शुद्ध तत्व। यह प्रेम रूपी सूर्य की किरणों के समान है। जिस प्रकार रश्मियाँ सूर्य को आकाश में लाती हैं तथा अभिव्यक्त करती हैं, उसी प्रकार भाव भी प्रेम का उदय कराता है। यह कृष्ण की प्राप्ति के लिए तीव्र अभिलाषा के द्वारा चित्त को कोमल बना देता है। यही भाव घनीभूत, प्रबुद्ध तथा परिपक्व होने पर 'प्रेमा' कहलाता है। इसे ही महाभाव की संज्ञा दी जाती है । राधा इसी महाभाव की प्रतिमूर्ति है और वे इस प्रकार के प्रेम का रूप होने के कारण उनका शरीर प्रेम से विभावित यानी ओतप्रोत है।

"ह्लादिनीर सार अंश तार प्रेम नाम ।
आनन्द चिन्मय रस प्रेमर आख्यान ।।
प्रेमेर परम सार महाभाव जानि ।
सेई महाभाव रूप राधा ठाकुरानि।

प्रेमर स्वरूप देह प्रेम विभावित।

कृष्णरे प्रेयसी श्रेष्ठ जगते विदित।।"[16]

राधा ह्लादिनी शक्ति में विभूषिता है। इस शक्ति के बिना कृष्ण को आनन्द की अनुभूति नहीं हो सकती । ह्लादिनी के द्वारा ही वे भक्तों का पोषण करते हैं। ह्लादिनी शक्ति का सार प्रेम है। प्रेम का सार भाव और भाव का चरम उत्कर्ष महाभाव में है। इस महाभाव के भी मोदन और मादन दो प्रकार रुप हैं । यथार्थता तो यह है कि भाव की अन्तिमावस्था महाभाव में है । इसी मादन–महाभाव की विग्रह रूप श्रीराधा ही केवल है। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण में भी इस मादन–महाभाव का अंश प्राप्त नहीं होते हैं।

राधा विशुद्ध प्रेम की कल्पलतिका है। जिस कल्पलतिका से उसने कृष्ण को अपने प्रेम में बाँध रखा है। राधा की अद्वैत भावना इतनी प्रौढ़ है कि जहाँ–जहाँ उसकी दृष्टि पड़ती है, वहाँ–वहाँ कृष्ण ही स्फुरित होते हैं ।

"कृष्णमयी कृष्ण जार भीतरे बाहिरे ।

जाहाँ जाहाँ नेत्र पड़े ताहाँ कृष्ण स्फुरे ।।"[17]

कृष्ण का स्वरूप प्रेम रसमय है। राधा, कृष्ण की शक्ति होने के कारण उसके साथ सर्वदा एक रूप रहती है। 'राधा' की व्युत्पत्ति ही इनके सच्चे रूप को प्रकट करने में अलम् है । यह ध्यान रहे कि राधा का व्युत्पत्ति लभ्य अर्थ है आराधना करनेवाली । कृष्ण की इच्छा की पूर्ति ही आराधना की संज्ञा है ।

"कृष्णवांछा पूर्तिरूप करे आराधने ।

अतएव राधिका नाम पुराणे व्याख्याने ।।"[18]

(इ) राधा का परकीया भाव

गौड़ीय संप्रदाय में राधा–कृष्ण के परकीया भाव स्वीकार किया गया है । संप्रदाय के आचार्यों के अनुसार कृष्ण की द्वारिकावासिनी सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ हैं । ये सब रानियाँ परकीया भाव की रानियाँ है, जिनमें राधा श्रेष्ठ हैं । जीव गोस्वामी जी के अनुसार रुक्मिणी आदि रानियों तथा ब्रज देवियों की भक्ति में मुख्य अंतर यह है कि "जहाँ प्रथम वर्ग की भक्ति दास्य मिश्रित कांता भक्ति है, वहाँ गोपियों की भक्ति में कांता भाव सख्य मिश्रित है।"[19] यह निश्चित है कि दास्यभाव में प्रेम की तीव्रता उतनी नहीं जितनी सख्य भाव में ।

गौड़ीय संप्रदाय में परकीया भाव को केवल प्रेम–तीव्रता के कारण इतना महत्व दिया गया है।[20] अतः गौड़ीय आचार्यों ने भाव की निर्मलता और प्रौढ़ता के प्रतीक के रूप में ही परकीया भाव को ग्रहण किया है। इस प्रकार के भाव–तीव्रता से कृष्ण माधुरी का आस्वादन संभव हो सकता है । निश्चित है कि परकीया भाव की स्थिति केवल ब्रज–बधुओं में स्वीकार की गई है –

"परकीया भावे अति रसेर उल्लास ।
ब्रज बिना ईहार अन्यत्र नाहिं वास।"[21]

इस संप्रदाय में जिस परकीया भाव को 'रसेर उल्लास' माना गया है उसका प्रचलन कब हुआ यह एक बड़ा विवादास्पद विषय है । इस संबंध में ड़ा सुशील कुमार दे यह मत रखते हैं कि "गौड़ीय संप्रदाय में परकीया भाव का प्रचलन षट् गोस्वामियों के बाद हुआ । क्योंकि रूप गोस्वामी और जीव गोस्वामी के किसी ग्रंथ से इस भाव की पुष्टि नहीं होती है।"[22] आगे चलकर इस महाशय की बात का समर्थन करते हुए केनेडी ने यह कहा है कि "आरंभ में राधा और कृष्ण के पारस्परिक संबंध के विषय में गौड़ीय संप्रदाय में दो मत थे। एक वर्ग वाले राधा को कृष्ण की स्वकीया मानते थे और दूसरे वर्ग के विद्वान उसे परकीया । वृन्दावन के षड्गोस्वामी प्रथम मान्यता के पोषक थे । किन्तु कालान्तर में परकीयावाद वाला पक्ष प्रबल हो गया और इस प्रकार गौड़ीय संप्रदाय में ही परकीयावाद को ही सर्व मान्यता प्राप्त हुई।"[23] श्री बलदेव उपाध्याय ने भी इस संबंध में यह कहा है कि राधा के परकीयात्व की कल्पना केवल गौड़ीय वैष्णवों में ही मुख्यतया है । इस सिद्धान्त के उद्‌भावक, आलोचकों की दृष्टि में श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ही माने जाते हैं, जिन्होंने 'उज्ज्वलनीलमणि' की टीका में इस मत का समर्थन किया है । इस संदर्भ में कुछ ऐसे तथ्य उपलब्ध होते हैं, जो विवादास्पद प्रतीत होते हैं, इनमें राधा का स्वकीया या परकीया तत्व अन्यतम हैं । जहाँ 'भागवत संप्रदाय' पुस्तक में यह बताया गया है कि राधा के परकीयात्व की कल्पना सिर्फ गौड़ीय वैष्णवों में ही मुख्यता है, वहाँ पर गौड़ीय संप्रदाय के दार्शनिक तत्वों के प्रतिष्ठापक जीव गोस्वामी महाशय ने अपनी रचना 'राधाकृष्णार्चन दीपिका' में राधा के स्वकीयात्व को स्वीकारा है। साथ–साथ डॉ रूपनारायण ने अपनी पुस्तक 'ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य भक्ति' में यह दर्शाया कि "रूप गोस्वामी के ग्रंथों का अनुशीलन करने से यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि वे परकीयावाद के पक्ष में नहीं थे।"[24] उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि रूप

गोस्वामी महाशय को इससे सामाजिक अव्यवस्था होने की आशंका थी । इसी कारण जहाँ कहीं भी परकीयावाद का प्रसंग आया है वहाँ उन्होंने उसकी निर्दोषता अनेक तर्कों द्वारा सिद्ध करने की चेष्टा की है । अतः इस तथ्य के विवाद में न जाकर परवर्ती काल में राधा के परकीयात्व को स्वीकारा गया है । इस संदर्भ में डॉ शशिभूषण दास गुप्त का यह वक्तव्य ध्यान देने योग्य है – "जीव गोस्वामी के परवर्तीकाल में परकीयावाद परम तत्व के रूप में ही स्वीकृत हुआ है । परवर्तीकाल के लेखकों ने जीव गोस्वामी को भी परकीयावादी सिद्ध करने की चेष्टा की है । चैतन्यचरितामृतकार कृष्णदास कविराज भी परकीया–तत्व के समर्थक रहे हैं। परवर्ती काल के पंडित विश्वनाथ ने भी दार्शनिक दृष्टि से इस परकीया मत को प्रकट और अप्रकट दोनों लीलाओं में ही एक समान प्रमाणित करने की चेष्टा की है । यदुनंदन दास के नाम से प्रचलित 'कर्णानन्द' ग्रंथ में इस परकीयावाद की स्थापना जीव गोस्वामी का असल उद्देश्य है, यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। परवर्तीकाल में स्वकीया–परकीयावाद के संबंध में एक वितर्क सभा हुई थी और उसमें युक्ति–तर्क द्वारा परकीया वाद की ही प्रधानता स्थापित हो पाई थी ऐसे; कुछ तथ्यों का पता चलता है। इन तथ्यों की प्रामाणिकता संशयातीत है।[25]

अगर इस विवादास्पद विषय पर एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि डाली जाए तो यह समाधान मन में उठना स्वाभाविक होता है कि जहाँ तक राधा–कृष्ण के बीच निगूढ़ प्रेम संबंध की बात है, यहाँ यह कहा जा सकता है कि यह निश्चित रूप में परकीया भाव में सार्थक होता है । क्योंकि स्वकीया भाव में कुछ विधियों की प्रमुखता होती है। जहाँ विधि, नियम या समाज का बंधन है, वहाँ स्वच्छन्द प्रेम असंभव है । दूसरी ओर यह देखा जाता है कि जहाँ विधि निषेध होता है, वहाँ प्रेमी के प्रति प्रिय की प्रेमाभिलाषा अति उत्कट रूप धारण कर लेती है। परकीया के प्रति नायक का आकर्षण सर्वापेक्षा अधिक होता है । इस संदर्भ में विष्णुगुप्त का कथन ध्यातव्य है –

"यत्र निशेध विशेषः सुदुर्लभत्वं च यन्मृगाक्षीणाम् ।
तत्रैव नागराणा" निर्भरमासज्यते हृदयम् ।।"[26]

यह ध्यान रहे कि राधा में कृष्ण के प्रति आकर्षण परकीयात्व के कारण न होकर नैसर्गिक है । ऐतिहासिक दृष्टि से भी राधा का परकीयात्व चैतन्यपूर्व साहित्य यानी जयदेव,

विद्यापति आदि के काव्यों में मुख्य था । जयदेव ने अपने 'गीत गोविन्द' में जिस राधा–माधव के साथ नाना केलियों का प्रदर्शन किया है, वह राधा परकीया के रूप में ही चित्रित है।

2 – गौड़ीय संप्रदाय में जीव तत्व

गौड़ीय संप्रदाय में जीव तत्व का संक्षिप्त वर्णन किया जा चुका है। पुनश्च यहाँ इसका सविस्तार वर्णन दिया जाता है । स्वरूपतः श्रीकृष्ण ही परमब्रह्म तथा जीव उनका नित्य दास है। श्रीकृष्ण की जीवशक्ति से सब जीवों की उत्पत्ति हुई है। ब्रह्म और जीव में नित्य अभेद और नित्यभेद संबंध हैं । ये संबंध उसी प्रकार के हैं जिस प्रकार का संबंध समुद्र से लहर का और अग्नि से चिनगारी का होता है । ध्यान रहे कि लहर पूर्ण रूप में समुद्र नहीं है, न चिनगारी पूर्णरूप में अग्नि । लहर और चिनगारी में समुद्र तथा अग्नि का मात्र अभास मिलता है और उनका अस्तित्व इनमें विद्यमान मिलता है। उसी तरह जीव में ब्रह्म का अस्तित्व विद्यमान रहता है । जीव में ब्रह्म का दर्शन पाया जाता है, इसलिए यह उक्ति चल पड़ी है कि 'मानव सेवा ही माधव सेवा है'। अर्थात् मनुष्य सेवा ही भगवान की सेवा है । 'वेदान्त सूत्र' में इस संदर्भ में यह चर्चा उपलब्ध होती हैं कि "ईश्वर और जीव का संबंध उसी प्रकार का है जैसे सूर्य और उसकी किरणें, सूर्य का अंश होते हुए भी किरणें जिस प्रकार सूर्य मंडल से बाहर रहती हैं उसी प्रकार ईश्वर का अंश होते हुए भी जीव, ईश्वर के स्वरूप से बाहर रहता है । जीव कभी भी कृष्ण स्वरूप में तदाकर नहीं होता, मुक्तावस्था में भी नहीं।"[27] गौड़ीयदर्शन के सिद्धान्तों में जीव, ब्रह्म (कृष्ण) की एक शक्ति है जिसका वर्णन 'चैतन्य चरितामृत' में निम्न प्रकार मिलता है –

"कृष्णेर अनंत शक्ति ताते तिन प्रधान ।
चिच्छक्ति, मायाशक्ति, जीवशक्ति, नाम ।।"[28]

यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि जैसे लहर सागर का अंश है किन्तु सागर नहीं है, ठीक उसी प्रकार जीव में कृष्ण की शक्ति तो है किन्तु वह पूर्ण रुपेण कृष्ण नहीं है; दोनों में अवश्य भेद है। गीता शास्त्र भी जीव को शक्तिकर के ही मानते हैं, परन्तु इस जीव का कृष्ण से अभेद नहीं मानना चाहिए –

"गीता शास्त्रे जीव रूप शक्ति करि माने ।
हेत जीवे अभेद कर ईश्वरेर सने ।।"[29]

गौड़ीय संप्रदाय में जीव और ईश्वर तत्व को एक मानते हुए भी अलग माना गया है। जलती अग्नि के समान कृष्ण है और जीव एक स्फुलिंग कण मात्र है । इस सिद्धान्त को स्वीकारते हुए कृष्णदास गोस्वामी जी कहते हैं –

"जीव आर ईश्वरतत्व कभी नहे सम ।
ज्वलदग्नि राशि जैछे स्फुलिंगरे कण ।।"[30]

जीव और इश्वर में मायावश और मायाधीश का भेद है। अर्थात् जीव माया के अधीन है और ईश्वर माया का अधीश्वर हैं । जीव ईश्वर से भिन्न है परंतु वह ईश्वर की अंश–विभूति तो है। ईश्वर समस्त जीवों में अप्रकट रूप में विद्यमान है। कृष्ण के इस प्रकार विभिन्नांश से विस्तारित जीव दो प्रकार के हैं – नित्यमुक्त और नित्यवद्ध ।[31] नित्यमुक्त जीव अहर्निश कृष्ण के चरणारबिन्द की सेवा करता रहता है । वह कृष्ण का पार्षद कहलाकर सेवा का सुख पाता है। नित्यवद्ध जीव कृष्ण से विमुख रहता है और नित्यप्रति संसार के कामों में ही लगा रहता है और नरकादि के दुःख भोगता रहता है। माया इस नित्यवद्ध जीव को भुलावा दे–दे कर दुःख की अग्नि में जलाती रहती है । इस नित्यवद्ध जीव जब माया द्वारा दहन दुःख झेल चुका होता है, वह भटकते–भटकते पुनः कृष्णार्पण हो जाता है। तब उसका कर्म–बंधन छूट जाता है । कृष्ण के भजन और गुरु–चरण–सेवन से यह माया जाल छूटता है तब उसे कृष्ण के चरणकमलों की प्राप्ति होती है । जीव कृष्ण की तटस्था शक्ति का भेदाभेद प्रकाश है –

"जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास ।
कृष्णेर तटस्थशक्ति भेदाभेद प्रकाश।"[32]

जीव का स्वभाव ही आत्मानन्द का रसास्वादन करना है। इस रस का आधार, भाव होता है। ईश्वर और जीव के भावात्मक संबंध अनेक प्रकार के होते हैं। स्वामी–सेवक, पुत्र–माता, सखा–सखी, प्रियतम–प्रेयसी किंवा युगल एवं उनकी सखी । इनमें से प्रथम चार भावों को ब्रज लीला में परिगणित किया जाता है और अंतिम भाव को 'नित्यविहार' अथवा 'निकुंजलीला' के नाम पर अभिहित किया जाता है । ये सब भाव अपने स्थानों पर महत्वपूर्ण हैं । किन्तु जहाँ तक कृष्ण भक्ति की बात है, यहाँ सखी भाव को ही चरम साध्य ठहराया गया है । अतः जीव मूलतः चिदानन्द ब्रह्म का रसिक है। अपने अहंकार के कारण ही वह कृष्ण रस प्राप्ति से विमुख हो जाता है, अन्यथा वह भक्त ही है –

"स्वतः जगत् सब ही भगत मैं मेरी बिच आड़ ।
अभी रसिक यह होंहि सब मैं जु मेरी दें छाड़ ।।"[33]

3 – गौड़ीय संप्रदाय में जगत् (संसार) तत्व

गौड़ीय दर्शन के अनुसार जगत् भी जीव की भाँति सत्य है । इसमें यह माना गया है कि जैसे जीव ईश्वर से सृष्टि हुआ है उसी प्रकार जगत् भी । यह ईश्वर का अंश है। अगर जीव ईश्वर का अंश है तथा सत्य भी है तो जगत् भी इसकी तरह सत्य है। इस संपद्राय में दर्शन में जगत् नितरां सत्यभूत पदार्थ है। क्योंकि यह सत्य संकल्प सर्वविद् हरि की बहिरंगा शक्ति का विलास है। यह ध्यान रहे कि सिर्फ गौड़ीय वैष्णव दर्शन ही नहीं, इसके अलावा स्मृति तथा श्रुति ग्रंथ भी एक स्वर में जगत् की सत्यता को स्वीकारते हैं । इसके प्रमाण स्वरूप ईशावास्य उपनिषत्, विष्णुपुराण तथा महाभारत की उक्ति देखी जा सकती हैं । इशावास्य उपनिषत् में यह दर्शाया गया है कि "भगवान ने शाश्वत काल तक यथार्थ भाव से अर्थों या पदार्थो का निर्माण किया है।"[34] विष्णु पुराण में भी इस जगत् की नित्यता को स्वीकार किया गया है । इसमें यह कहा गया है कि "अखिल जगत् आविर्भाव तथा तिरोभाव, जन्म और नाश आदि विकल्पों से युक्त होकर भी 'नित्य' है ।"[35] महाभारत में जगत् की सत्यता के संबंध में यह कहा गया है –

"ब्रह्म सत्यं तपः सत्यं चैव प्रजापतिः
सत्याद्गतानि जातनि सत्यं भूतमयं जगत्।"[36]

बलदेव उपाध्याय ने इसको स्पष्ट करते हुए यह कहा है कि "जिस प्रकार वन में पक्षियों की सत्ता रात्रि काल में विद्यमान रहते हुए भी व्यक्त नहीं होती, उसी प्रकार प्रलय काल में सृष्टि के नष्ट हो जाने पर भी जगत् ब्रह्म में अव्यक्त रूप में विद्यमान रहते हुए नित्य रहता है।"[37] यह ध्यान रहे कि गौड़ीय संप्रदाय में जगत् का वर्णन जिस रूप में हुआ है, यह भक्त के आंतरिक जगत् का वर्णन है। सच देखा जाए तो यह भक्तों के अंतरधिष्ठाता कृष्ण का वर्णन है । सिद्ध है कि कृष्ण का बहिरंग तत्व ही जगत् है किन्तु भक्त का अंतरंग तत्व ही जगत् है। इस संदर्भ में इसी मायामय जगत् में मुक्त तथा बद्ध दोनों प्रकार के जीव वास करते हैं । लेकिन, इस जगत् में रहते हुए भी दोनों के जगत् अलग–अलग हैं । बाहर से एक ही प्रतीत होने पर भी उनमें अत्यधिक भेद है। जहाँ बद्ध जीव जगत् की विषय–वासना

से बाँधता चला जाता है, वहाँ मुक्त जीव अपने मनजगत् का सब कुछ कृष्णार्पण करते हुए कृष्ण की ओर खिंचा चला जाता है। उसके अनुसार जगत् के कर्ता, धार्त्री और विधाता कृष्ण ही हैं । यह पहले भी बताया गया है कि कृष्ण जगत् के निमित्त कारण हैं और उपादान कारण भी । यह ध्यान रहे कि कुछ लोग जगत् को ब्रह्म की गुणमाया का कारण मानते है किन्तु गौड़ीय दर्शन इसके विरुद्ध है।[38] इसके अनुसार प्रकृति जड़ है। जब जगत् का नियन्ता कृष्ण की कृपा से उसमें अपार शक्ति आ जाती है तब यह शक्तिशाली बन जाती है; जैसे कि आग से लोहे में जलाने की शक्ति आ जाती है।[39] अंततः गौड़ीय दर्शन के अंतर्गत जगत् को उसी तरह सत्य माना गया है जिस तरह ब्रह्म को माना गया है ।

4 – गौड़ीय संप्रदाय में माया तत्व

'माया' अपने आप में एक भ्रमात्मक शब्द है। श्रुति तथा स्मृति ग्रन्थों में ऐसे तो माया को भ्रम कहा गया है । इसके अलावा न जाने और किसने क्या क्या व्याख्याएँ की हैं । जो भी हो, गौड़ीय दर्शन में माया का वर्णन अन्यों के वर्णन स्वरूप से कुछ अलग सा है । कुछ अपवाद को छोड़कर प्रायः सबने इस संसार को माया कहा है, भ्रम कहा है । यह बिल्कुल सही है कि यदि अंधेरा न होता तो प्रकाश हमें अच्छा नहीं लगता । ठीक उसी प्रकार यदि माया नहीं होती तो ब्रह्म की परिकल्पना भी नहीं आती । इसीलिए माया को घृणित दृष्टि में न देखना चाहिए । माया वही है, जो मनुष्य को सही मार्ग में जाने का सबक सिखाती है । गौड़ीय दर्शन के प्रमुख तत्वद्रष्टा कृष्णदास कविराज ने यह स्वीकारा है कि "स्वयं भगवान श्रीकृष्ण की तीन स्वाभाविक शक्तियाँ है, इनमें माया भी एक शक्ति है ।"[40] यह माया शक्ति बहिरंगा है और जगत् की कारण है –

"मायाशक्ति बहिरंग जगत् कारण ।
तांहार वैभवानंत ब्रह्मांडेर गण ।।"[41]

कृष्णदास कविराज ने इस माया को कृष्ण की दासी बताया है। यह माया हरि के वश में है। उनके अनुसार इस माया का वैभव अनंत ब्रह्माण्ड में है । यह माया निमित्त और उपादान दो अंश वाली है –

"माया जे दुइ वृत्ति माया आर प्रधान।
माया निमित्त हेतु विश्वेर प्रकृति उपादान ।।"[42]

कविराज जी भी इसके संबंध में यह कहानी बताते है कि "माया संसार का उपादान कारण मात्र है, निमित्त कारण नहीं; जैसे घड़े का निमित्त कारण कुंभकार होता है, दंड इत्यादि नहीं, ये तो साधन मात्र हैं; इस प्रकार स्वयं कृष्ण संकर्षण रूप में जगत् के कारण हैं ।"[43] उन्होंने यह भी कहा है कि कृष्ण सूर्य के समान हैं और माया अंधकार है – "कृष्ण सूर्य सम माया हय अंधकार ।"[44] अर्थात् कृष्णार्पित भक्त बड़ी आसानी से माया रूपी अंधकार पर विजय हासिल कर सकता है । यह ध्यातव्य है कि गौडीय दर्शन के अंतर्गत अन्य संप्रदायों की तरह माया को जड़ नहीं कहा गया है, न मिथ्या । यह माया वैसी ही है जैसे कृष्ण की तटस्था शक्ति(जीव) सत्य है। वेदान्त की समीक्षा करते हुए चैतन्यदेव यह कहते हैं कि "वेदांत सूत्रों की विवर्त्तवादी व्याख्या गलत है, परिणामवादी व्याख्या ठीक है। मायावादी भाष्य तो सर्वनाशकारी है।"[45] एक स्थान पर कृष्णदास कविराज जी माया को जगत् का उपादान कारण बताते हैं और यह कहते हैं कि जड़ रूपा प्रकृति, जगत् का कारण नहीं है, परंतु वे माया को जड़ नहीं बताते –

"मायाद्वारे सृजने तिंहो ब्रह्मांडेर गण।
जड़ रूपा प्रकृति नहे ब्रह्मांड–कारण ।।"[46]

निष्कर्षतः यह देखा गया है कि गौड़ीय दर्शनानुसार, जीव, जगत्, माया सारे के सारे तत्व ब्रह्माधीन है । वे श्रीकृष्ण के अंश के रूप होते हुए भी उनसे स्वरूपतः पूर्णरूप से भिन्न भी नहीं हैं । अर्थात् उनमें न तो परस्पर भेद कहा जा सकता है और न ही अभेद । यह भेदाभेद चिंतन से परे हैं । इसलिए इसे 'अचिंत्य' कहा गया है।

4 . 2 गौड़ीय संप्रदाय के भक्तितत्व

गौड़ीय दर्शन का भक्ति तत्व अत्यन्त अनूठा है। अतः गौड़ीय संप्रदाय एक ऐसा संप्रदाय है, जिसने भक्ति के प्रचार में अपना अमूल्य योगदान दिया है। गौड़ीय संप्रदाय के अंतर्गत भक्ति तत्वों को प्रमुख और दार्शनिक सिद्धान्तों को गौण स्थान मिला है । महाप्रभु चैतन्यदेव के द्वारा प्रवाहित महाभाव परक भक्ति तथा प्रेमाभक्ति की धारा को शास्त्रीय धरातल पर प्रतिष्ठित कराने का काम उनके पार्षदों ने किया है । जिनके बारे में पहले बताया जा चुका है ।

मूलतः भक्ति, उस परम प्रेमास्पद को निकट लाने का सहजतम साधना है । ज्ञान की ऊँचाइयों तक पहुँचकर भगवत् साक्षात्कार करना सर्वसाधारण की दुर्बल शक्ति के लिए सुकर नहीं है; कर्म में कर्त्तापन का अभाव या सन्यास उसे नीरस प्रतीत हो सकता है। किन्तु प्रेम की अतल तरलता में डूबकर अहं के खो जाने पर भगवान को छू पाना अपेक्षाकृत आसान है । यह ध्यान रहे कि गौड़ीय संप्रदाय में प्रेम को ही साधन माना गया है और इसे ही साध्य भी । प्रेम सारी चेतना का शिरोमणि है, सत्ता की आत्मपरिपूर्णता का पथ है। प्रेम का ऐसा संवेग है जो नितांत निस्वार्थ एवं आत्म परिपूर्ण है, अपने अतिरिक्त इसमें और किसी प्रयोजन की आवश्यकता नही है। प्रेमाभक्ति के माध्यम से व्यक्ति–दिव्य चेतना के आत्मानन्द में सीधे प्रवेश पा लेता हैं । यह दिव्य प्रेम ही मूलभूत आनन्द की उपलब्धि है।

गौड़ीय दर्शन के भक्ति तत्व में श्रीकृष्ण सर्वोपरि हैं। यशोदानंदन कृष्ण की भक्ति, उपासना और आराधना करना ही गौड़ीय भक्तों का परम कर्त्तव्य है । गौड़ीय संप्रदाय के विद्वानों ने ही उस कृष्ण को केन्द्र बिन्दु मानकर अपने भक्ति संबंधित सिद्धांत का वृत्त बनाया है । यहाँ गौड़ीय संप्रदाय की भक्ति के भेदों को एक सारणी के माध्यम से बताया गया है।

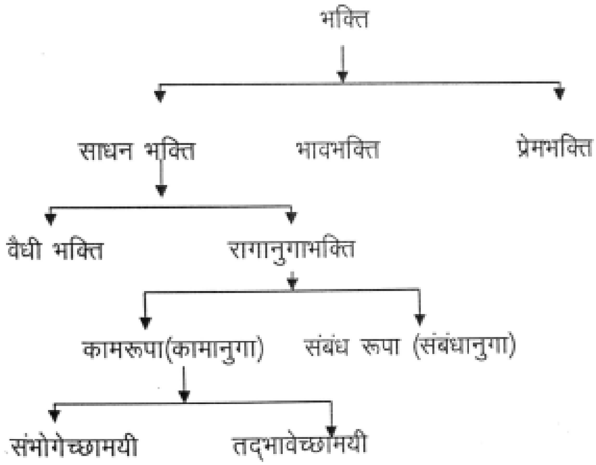

<u>**1 – साधन भक्ति**</u> : "गौड़ीय संप्रदाय के परमाराध्य और परमोपास्य श्रीकृष्ण का प्रेम जिन साधनों से प्राप्त होता है, उसे साधन भक्ति कहते हैं ।"[47] 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में इस संबंध में यह कहा गया है कि – "कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।"[48] नवधा आदि भक्ति

के साधनों के माध्यम से इस साध्य भाव या प्रेम का प्रस्फुटन करना ही होता है । इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि भक्ति वह फूल है, जो नवधा आदि साधनों से बने बगीचे में प्रस्फुटित होती है । इस संबंध में कृष्णदास कविराज जी का कथन है ''नवधा भक्ति का आचरण इस साधन भक्ति का स्वरूप लक्षण है, और कृष्ण प्रेम का प्राकट्य उसका 'तटस्थलक्षण' है ।''[49] **भक्तिरसामृतसिन्धु** में इस संबंध में यह तथ्य मिलता है कि श्रीचैतन्य देव ने सनातन जी को शिक्षा देते हुए साधन भक्ति के चौंसठ अंग बतलाए हैं; जो कायिक, वाचिक, मानसिक से अलग–अलग तथा सम्मिलित रूप के हैं। इन चौंसठों में से खासरूप में पाँचों को प्रमुखता दी गई है; ये हैं सत्संग, हरिनाम–कीर्तन, भागवत श्रवण, मथुरामंडल का वास और श्रद्धा पूर्वक श्रीमूर्ति की सेवा आदि । अंततः साधन भक्ति के दो रूप प्राप्त होते हैं – वैधी भक्ति और रागानुगा भक्ति ।

''वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा ।''[50]

(क) वैधी भक्ति :– ''जहाँ राग के न होने से केवल शास्त्र–शासन से ही प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, वह वैधी भक्ति कहलाती है।''[51] इसमें स्वाभाविक ईश्वरानुराग के कारण ईश्वर भक्ति उत्पन्न नहीं होती, अपितु शास्त्र मर्यादा के पालन हेतु ही भक्ति में प्रवृत्ति होती है। इसीलिए इसे मर्यादा मार्ग की भक्ति भी कहा गया है । शास्त्रों में उल्लिखित सभी विधि–निषेध वैधी भक्ति के अंतर्गत आते हैं। इसी वैधी भक्ति में अनेक मर्यादाओं का पालन किया जाता है। फलस्वरूप इसे कुछ लोग मर्यादा मार्ग भी कहते हैं – ''वैधी भक्तिरियं कैश्चिन्मर्यादा मार्ग उच्यते।''[52]

अंततः भगवान की प्राप्ति निमित्त शास्त्र में विर्णित विधि के अनुसार भक्ति करना ही वैधी भक्ति है। इसके अंतर्गत नवधाभक्ति की प्रमुखता होती है। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि कुछ अचार्यों ने वैधी भक्ति को रागानुगा भक्ति से गौण समझा है और उसे रागानुगा भक्ति का साधन मात्र बताया है । किन्तु ध्यान रहे कि गुलाब की एक–एक पंखुड़ी से गुलाब की सुगंध को महसूस कर पाने की तरह कुछ ऐसे भक्त हुए हैं, जिन्होंने वैधी भक्ति के एक–एक अंग से ही भक्ति की प्राप्ति कर ली है । इसका वर्णन रूप गोस्वामी महाशय ने निम्न प्रकार किया है –

''श्री विष्णों श्रवणे परीक्षिद्भवद्वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने ।

अक्रूरस्त्वभिबन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः

सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूतं कृष्णाप्तिरेषां परम् ।"[53]

अतः वैधी भक्ति की भी अपनी महत्ता है, जिससे भगवान का सान्निध्य प्राप्त किया जा सकता है ।

(ख) रागानुगा भक्ति : 'रागानुगा' शब्द का अर्थ है प्रेम का अन्वेषण या अनुसरण । गौड़ीय आचार्यों के अनुसार रागपूर्ण भक्ति केवल ब्रजवासियों में पाई जाती है। अन्य साधक इनकी इस भक्ति का अनुसरण करते हैं। अतः "जहाँ ब्रजवासियों की भक्ति को राग–प्रधान होने के कारण 'रागात्मिका' भक्ति कहा गया है, वहाँ अनुगमन करनेवाली भक्ति को 'रागानुगा' नाम दिया गया है।"[54] मूलतः दोनों का मूलभाव एक है। इसके संबंध में कृष्णदास कविराज जी निम्न प्रकार बताते हैं –

"रागात्मिका भक्ति मुख्या ब्रजवासि जने।

तार अनुगत भक्तिर रागानुगा नाम।।"[55]

रागानुगा भक्ति में प्रेम मुख्य आधार है। इस कारण शास्त्र, युक्ति, तर्क आदि का बंधन यहाँ स्वीकार नहीं किया गया है। यह रागानुगा भक्ति भक्त के शारीरिक धरातल पर नहीं बल्कि मानसिक धरातल पर घटित होती है । इस मार्ग में साधक को मानसिक स्वतंत्रता पूर्णतः प्राप्त होती है । अतः साधक के मन में ईश्वर के प्रति राग उत्पन्नोपरांत वह अपने आपको तथा समस्त कुल मर्यादा की सीमा को लांघकर अपने को मुक्त रखता हुआ प्रशस्त–प्रेम पथ में अग्रसर होता जाता है । इस भक्ति की प्राप्ति से साधक का अध्यात्मिक विकास स्वतः संभव हो पाता है। यहाँ यह ध्यान रखें कि जैसे वैधी भक्ति में प्रेरक तत्व शास्त्र का अनुशासन होता है, वैसे रागानुगा भक्ति में प्रेरक तत्व प्रेम–प्राप्ति का तीव्र आवेग होता है। अतः रागानुगा भक्ति में साधक जहाँ एक ओर श्रवण, कीर्तन आदि बाह्य साधनों का अनुष्ठान करता है, वहाँ दूसरी ओर आंतरिक साधना में सिद्ध–देह की भावना कर निरंतर ब्रज में कृष्ण की सेवा करता है। तात्पर्य यह है कि रागानुगा भक्ति में उपासक श्रवण–कीर्तनादि साधनों के साथ–साथ कृष्ण के श्रृंगार, वात्सल्य, सख्य आदि भावों की लीलाओं में से अपने अनुकूल लीला का ध्यान करता है तथा उस लीला के परिकरों का अनुगमन करते हुए कृष्ण की सेवा करता है। इस संबध में 'चैतन्य चरितामृत' में यह वर्णन मिलता है कि –

"बाह्य अंतर ईहार दुइत साधन ।
बाह्य साधक देहे करे श्रवण कीर्तन ।।
मने निज सिद्ध देह करिया भावन ।
रात्र दिने, करे ब्रजे कृष्णेर सेवन ।।"[56]

अंततः गौड़ीय दर्शन के आचार्यो ने रागानुगा भक्ति को प्रमुखता देते हुए ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण की सेवा अहर्निश करने पर जोर दिया है। उनके अनुसार इस प्रकार की रागानुगा भक्ति से पंचम पुरुषार्थ प्रेम की प्राप्ति होती है और यही प्रेम शाश्वत आनन्द का स्रोत है –

"पंचन पुरुषार्थ सेई प्रेम महाधन ।
कृष्णेर माधुर्य रस कराय आस्वादन ।"[57]

रागानुगा भक्ति की चर्चा को आगे बढ़ाते हुए गौड़ीय दर्शन के आचार्यो ने ज्ञानमिश्रा भक्ति तथा ज्ञान–शून्या भक्ति का वर्णन किया है । ज्ञानमिश्रा भक्ति को उन्होंने 'बाह्य' स्वीकार किया है। यानी यह केवल बाह्य साधन मात्र है। उनके अनुसार ज्ञान हमें ईश्वर, जीव आदि के संबंध में ज्ञात ही कराता है । अतः यह सुख का मूल कारण हो ही नहीं सकता। सुख की प्राप्ति प्रेम–पूर्वक कृष्ण की सेवा से ही संभव है, जो रागानुगा भक्ति द्वारा सिद्ध होती है। "यदि ज्ञानमिश्रा भक्ति से जीव और ब्रह्म का ऐक्य प्रतिपादित करने वाली भक्ति यह अर्थ लिया जाय तब भी यह भक्ति केवल बाह्य सिद्ध होगी । इस ऐक्य दशा में जिस ब्रह्मानन्द का अनुभव जीव करता है, उससे रागानुगा भक्ति द्वारा प्राप्त 'भजनानन्द' कहीं अधिक श्रेष्ठ है। अतः मुक्ति–प्राप्त जीव भी लीला–विग्रह धारणकर श्रीकृष्ण की माधुर्य पूर्ण लीलाओं का ध्यान करते हैं।"[58]

रागानुगा भक्ति के संदर्भ में जहाँ तक ज्ञान–शून्या भक्ति की बात है, यह भक्ति ज्ञान–मिश्रा भक्ति से श्रेष्ठ है। इस भक्ति में जीव ज्ञानादि के फेर में न पड़कर श्रद्धा पूर्वक भगवद् गुणों का श्रवण तथा गान करता है । इस तरह की साधना से कालान्तर में प्रेम का उदय होता है और तदुपरांत जीव कृष्ण सेवा के मार्ग पर अग्रसर होता है। इस क्षेत्र में ज्ञान–शून्या भक्ति रागानुगा भक्ति की एक सीढ़ी सिद्ध होती है। अंततः इन दोनों, ज्ञानमिश्रा और ज्ञानशून्या भक्ति, को ध्यान में रखते हुए गौड़ीय दर्शन के संदर्भ में इनके बारें में यह कहा जा सकता है कि ज्ञान का स्थान केवल बाह्य साधनों में है । इसीलिए प्रेम के उदय के उपरांत इनकी आवश्यकता तनिक भी नहीं रहती है । अतः जो जीव केवल ज्ञान तक

अपने को सीमित रखता है, उसकी तुलना गौड़ीय आचार्य ने 'अरसज्ञ' काक से की है और इसके विपरीत रसिक भक्त को उन्होंने 'रसज्ञ' कोयल कहा है। इस संबंध में चैतन्य चरितामृतकार कहते हैं –

"अरसज्ञ काक चूषे ज्ञान–निम्बफले ।
रसज्ञ कोकिल खाये प्रेमाम्रमुकुले ।।
अभागिया ज्ञानी आस्वादये शुष्क ज्ञान ।
कृष्ण प्रेमामृत पान करे भाग्यवान ।।"[59]

इस प्रकार गौड़ीय संप्रदाय में रागानुगा भक्ति को ही उपासना का मार्ग स्वीकार किया गया है और साधक इसी भक्ति के अनुरूप सदा राधा–कृष्ण की लीलाओं का चिंतन करते रहते हैं । निष्कर्षकः राग प्रधान भक्ति ही रागात्मिका भक्ति है । यह रागानुगा भक्ति, रागात्मिका भक्ति का साधन मात्र है । रागानुगा भक्ति ही परिपक्व अवस्था में रागात्मिका भक्ति कहलाती है । रागात्मिका भक्ति का विषय ब्रज बिहारी कृष्ण है और आश्रय हैं ब्रजवासी भक्त । यह रागात्मिका भक्ति कामरुपा तथा संबंधरुपा भेद से द्विविध है । इसको 'भक्तिरसामृतसिंधु' में निम्न प्रकार बताया जाता है – "सा कामरुपा व संबंधरूपा चेति भवेद द्विधा ।"[60]

कामरूपा भक्ति : जो भक्ति संभोग तृष्णा को प्रेम रूप में व्यक्त करती है, वह कामरूपा भक्ति कह लाती है। इसमें कामतृष्णा द्वारा स्व सुख की लालसा के निमित्त नहीं अपितु केवल कृष्ण सुख के लिए ही यत्न किया जाता है । अतः इसे काम न कहकर 'कामरूपा भक्ति' कहा जाता है –

"सा कामरूपा संभोगतृष्णां या नयति स्वताम् ।
यदस्यां कृष्णसौख्यार्थमेव केवल मुद्यमः ।।"[61]

यह ध्यान रहे कि कामरुपा भक्ति में स्वसुख की गंध नहीं रहती है बल्कि इसमें कृष्ण सुख सर्वोपरि होता है। पुनश्च इस कामरूपा भक्ति का दो रूप उपलब्ध होते हैं – *संभोगेच्छामयी और तद्भावेच्छामयी ।*[62] इनके बारें में संक्षिप्त में *यह कहा जा सकता है कि* संभोगेच्छामयी का तात्पर्य मुख्यरूप से केलि क्रीड़ा में होता है और तद्भावेच्छामयी उन ब्रज गोपियों को प्रेम के माधुर्य को प्राप्त करने की इच्छावाली होती है। उदाहरण स्वरूप जो द्वारका की राजमहिषियों के भावानुगत हैं, उनकी भक्ति संम्भोगेच्छामयी है और जो लोक

वेदादि धर्म परित्याग करनेवाली, निष्काम, प्रेममयी गोपियों का अनुसरण करते हैं; उनकी भक्ति तद्भावेच्छामयी है।

संबंधरूपा भक्ति – भगवान के प्रति पितृत्व आदि (सखा, बंधु, माता) संबंधों की अभिमान भावना पर आधारित भक्ति को संबंधरूपा भक्ति कहा जाता है।

"सा सम्बधानुगा भक्तिः प्रोच्यते संद्विवरात्मनि।
या पितृत्वादिसम्बधमननारोपणात्मिका ।।"[63]

उदाहरणतः नंद के मन में कृष्ण के प्रति उत्पन्न भक्ति व गोपों में सखा रूप भक्ति; संबंध रूपा भक्ति है। इस प्रकार की भक्ति में कृष्ण के प्रति ईश्वरत्व बुद्धि न होकर पितृत्व रूपेण राग की प्रधानता होती है। अतएव यह रागात्मिका भक्ति के अंतर्गत है।

इस ओर ध्यान दिलाना उचित होगा कि ऊपर वर्णित कामरूपा भक्ति तथा संबंध रूपा भक्ति को बाद में कामानुगा और संबंधानुगा भक्ति भी कहा गया है। इसमें ज्यादा उलझने की आवश्यकता नहीं है।

2 – भावभक्ति

कृष्ण प्राप्ति की अभिलाषा से समन्वित प्रेम स्वरूप सूर्य की किरणों के समान अपनी कांति द्वारा चित्त को द्रविभूत करनेवाली शुद्ध सत्वमयी भक्ति भावभक्ति कहलाती है। 'भक्ति रसामृतसिन्धु' में यह श्लोक मिलता है कि –

"शुद्धसत्व विशेषात्मा प्रेम सूरूर्यांशुसाम्यभाक् ।
रूचिभिश्चित्तमासृण्य कृदसौ भाव उच्यते ।।"[64]

चित्त में उठने वाले भाव अत्यंत स्निग्ध, पवित्र तथा मसृण होते हैं। ये भाव अत्यधिक सांद्र तथा प्रौढ़ होने पर प्रेम में परिपुष्ट होते हैं। अतः भाव ही प्रेम की प्राथमिक अवस्था है। रूप गोस्वामी महाशय ने भाव व प्रेम को कारण–कार्य रूप में मानकर इनकी पृथक स्थिति का वर्णन भी किया है। इन दोनों को साध्य, भक्ति ठहरायी गई है। भाव–भक्ति के आविर्भाव के दो मुख्य कारणों के आधार पर यह द्विविध है "साधनाभिवेशज एवं कृष्ण–तद्भक्त प्रसादज ।"[65] प्रथम में साधन भक्ति के वैधी तथा रागानुगा मार्गों के अनुष्ठान से भगवान के प्रति क्रमशः रुचि व आसक्ति विकसित होकर रति या प्रेम उत्पन्न होता है। दूसरे में साधनों की

अपेक्षा नहीं होती अपितु कृष्ण अथवा उनके भक्तों की कृपा से सहसा भाव स्फूर्त हो जाता है। अत्यंत सौभाग्यशाली भक्त को इस प्रकार भक्ति की प्राप्ति होती है।

3 – प्रेम–भक्ति

प्रेम और भक्ति, दोनों शब्द अपने–आपमें बड़े अर्थ गर्भित हैं तथा सार्थक हैं । भक्ति शब्द के स्मरण से मन रूपी गागर में सागर भर जाने का भाव उठने लगता है। नारद जी की उक्ति 'अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपम्' इस संदर्भ में सार्थक प्रतीत होती है। जिस प्रकार विशुद्ध आनन्द की अनुभूति मानव की बहिश्चेतना से संभव नहीं है, उसी प्रकार भगवदोन्मुख प्रेम किंवा भक्ति मानव–कल्पना की पहुँच से परे है। यद्यपि कृष्ण प्रेम मानवीय रूप धारण करके जन साधारण के सम्मुख उपस्थित हुआ किन्तु उसकी भावगरिमा चेतना के अत्यंत उच्च धरातल की वस्तु है। 'भक्ति रसामृत सिंधु' में भक्ति की जो व्याख्या है, वह इस प्रकार है –

"सम्यङ्मसृणितस्वान्तों ममत्वातिशयाङ्कितः ।
भाव स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते ।"[66]

अर्थात् अंतःकरण को सर्वतोभावेन स्निग्ध कर देनेवाला, अत्यधिक ममता से युक्त भाव ही प्रगाढ़ता प्राप्त होने पर प्रेम कहलाता है। उज्ज्वलनीलमणिकार ने प्रेम के संबंध में यह कहा है कि –

"सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणें ।
यद्भावबन्धनं युनोः स प्रेम परिकीर्तितः ।।"[67]

अर्थात् नाश का कारण उपस्थित होने पर भी जिसका नाश नहीं होता–ऐसा व्यक्तिद्वय का भाव बंधन प्रेम है। यह प्रेम प्रौढ, मध्य और मंद तीन प्रकार के हैं। मुख्य रुप में प्रेम के दो भेद बताये गये हैं –"भावोत्थ व अतिप्रसादोत्थ।"[68] भक्ति के अंतरंग अंगों के निरंतर सेवन द्वारा चरमोत्कर्ष पर पहुँचा हुआ भाव ही भावोत्थ प्रेम है। अति प्रसादोत्थ प्रेम भगवान के अत्यंत कृपादान से प्राप्त होता है। अंततः प्रेम गौड़ीय संप्रदाय की साधना–चिंतना का मूलाधार है। 'चैतन्य चरितामृत' में इसके संबंध में कहा गया है कि "साधन भक्ति से रति का उदय होता है और रति की प्रगाढ़ावस्था ही प्रेम है।"[69]

4 . 3 प्रेम भक्ति की परिणति महाभाव

प्रेम भक्ति का चरमलक्ष्य और परम आकांक्षा श्रीकृष्ण प्रेम संपादन है। अपनी प्रेम प्रगाढ़ता क्रमानुसार भिन्न–भिन्न नाम ग्रहण करती है । प्रेम में ज्यों–ज्यों प्रगाढ़ता आती है, त्यों–त्यों वह स्नेह, मान, प्रणय, अनुराग और महाभाव; इन विभिन्न दशाओं को प्राप्त होता जाता है। दरअसल बात यह है कि प्रेम को उसकी तीव्रता के आधार पर विभिन्न नाम प्रदान किये गये हैं और इनमें महाभाव अवस्था में ही प्रेम की पूर्णता मानी गयी है। अतः यह स्पष्ट है कि स्नेह, प्रणय आदि सभी भावों में मूल तत्व प्रेम ही है। प्रेम से लेकर महाभाव तक की प्रकियाओं को ईख के रस से लेकर मिश्री बनने तक प्रयुक्त प्रकियाओं से तुलना की गई है। यह ध्यान रहे कि प्रेमभक्ति का आरंभ स्नेह से होकर अंततः महाभाव तक पहुँचता है । पहले भी इसकी रुपरेखा दी गयी है, जो निम्न प्रकार है –

स्नेह............मान............प्रणय......राग.........अनुराग.........भाव............महाभाव ।

स्नेह

प्रेम की कमिक गाढ़ता की प्रथम अवस्था 'स्नेह' है । चित्त की द्रवीभूतता ही स्नेह का लक्षण है। जब चित्त स्नेह से द्रवीभूत होता है, तब भक्त अपने सर्वस्व प्रियतम में लुटा देता है । भक्त के मन में भगवान श्रीकृष्ण के प्रति स्नेह उदय होने पर उसके मन श्रीकृष्ण की रूपासाधुरी को बार–बार दर्शनोपरांत तृप्त नहीं होता है। उसके मन अहिर्निश प्रभु के दर्शनार्थ व्याकुल रहता है। यह है मात्र स्नेह की स्थिति। स्नेह दो प्रकार बताये गये हैं – ''घृत स्नेह और मधुस्नेह''।[70] इसमें राधा के स्नेह को मधुस्नेह तथा चन्द्रावली के स्नेह को घृत स्नेह स्वीकार किया गया है। क्योंकि जहाँ मधु स्नेह में 'तुम मेरे हो' का भाव रहता है, वहाँ घृत स्नेह में 'मैं तुम्हारी हूँ' का भाव रहता है।

मान

जब स्नेह की उत्कर्षता को प्राप्त कर भक्त, प्रेम विषय की माधुरी का एक नवीन अनुभव करता है एवं स्वयं भी अपने भाव को गोपन करने के लिए कुटिलता धारण करता है, तब प्रेम की उस स्थिति को 'मान' कहा जाता है । यह ध्यान रहे कि प्रेम में गाढ़ता मान की

दशा में ज्यादा आती है। गौड़ीय दर्शन में राधा को 'मान' का एक अच्छा उदाहरण माना गया है । संभव है कि इसीलिए राधा का नाम 'मानिनी' पड़ा हो । 'मान' अवस्था में स्नेह की अपेक्षा ममता वृद्धि अधिक है। इस अवस्था की विशेषता हृदयगत भाव संगोपन है। मान की दशा में वाह्य उदासीनता रहती है किन्तु हृदय में अनुराग तिल भर भी कम् नहीं होता। इस अवस्था में प्रेम का प्रकटीकरण मुख की आंगिक मुद्राओं से होता हुआ नज़र आता है ।

प्रणय

जब ममता वृद्धि के आधिक्य से मान और अधिक उत्कर्ष को प्राप्त होता है तो ऐसी अवस्था उत्पन्न होती है, जिसमें अपने प्राण, मन, बुद्धि, देह एवं वेष–भूषादि के साथ प्रेम–विषय (श्रीकृष्ण) के प्राण, मन, बुद्धि, देह, एवं वेश–भूषा आदि सब अभिन्न प्रतीत होते हैं। यही प्रणय की अवस्था है। इसका वर्णन 'उज्ज्वलनीलमणि' में निम्न प्रकार किया गया है –"मानौ दधानों विस्रम्भं प्रणयः प्रोच्यते बुधैः ।"[71] यह ध्यान रहे कि जहाँ तक मान और प्रणय का संबध है, इनके संबंध को कार्य–कारण संबंध माना गया है । इसमें यह माना गया है कि जैसे कारण के बिना कार्य नहीं होता उसी तरह मान के बिना प्रणय। मान उसी से किया जाता है जो बिल्कुल अपना है, जिस पर पूर्ण अधिकार है। श्रीकृष्ण–सुख–वासना से ही राधा के–प्रणय–रोष या मान की उत्पत्ति होती है।

राग

प्रणय की उस अवस्था का नाम 'राग' है, जिसमें प्रेम–विषय की प्राप्ति की संभावना से अत्यंत दुःख भी सुख और उनकी अप्राप्ति में अत्यंत सुख भी अत्यंत दुःख रूप प्रतीत होता है।[72] यह प्रणय की घनीभूत अवस्था है। इस राग में दर्शन और मिलन की प्रबल आकांक्षा रहती है।

अनुराग

राग की प्रगाढ़ अवस्था का नाम अनुराग है। इस अवस्था में प्रिय का निरंतर दर्शन भी नित्य–नूतन प्रतीत होता रहता है। अर्थात् इस दशा में प्रेम–विषय (श्रीकृष्ण) नवीन माधुरी से मुक्त प्रतीत होते हैं। इसके बारें में यह पंक्ति उपलब्ध होती है कि –

"सदानुभूतमपि यः कुर्यान्नवनवं प्रियम् ।
रागो भवन्नवनवः सोऽनुरागं इतीर्यते ।"[73]

भाव

अनुराग की चरम परिणति का नाम भाव है। इसमें प्रेम–विषय (श्रीकृष्ण) की प्राप्ति के निमित्त अपने सब कुछ सौन्दर्य, ऐश्वर्य आदि को भूलकर भक्त अपने प्राण विसर्जन को सुख समझता रहता है। इसी दशा को 'भाव दशा' कहते हैं।

महाभाव

भाव अपनी ऊर्ध्वतर अवस्था में पहुँचकर 'महाभाव' कहलाता है। यह प्रेम की चरमोत्कर्ष दशा है। रूप गोस्वामी ने भाव और महाभाव को एकार्थ माना है लेकिन कृष्णदास कविराज ने दो स्वतंत्र रुप माने हैं – मोदन और मादन। अंततः मादनाख्य महाभाव उत्कृष्ट माना गया है।

गौड़ीय वैष्णव दर्शन में महाभाव की दशा श्रेष्ठ मानी गयी है। इस दर्शन में यह बताया गया है कि राधा का प्रेम सामान्य प्रेम नहीं है बल्कि महाभाव पूर्ण प्रेम है। अर्थात् समस्त सृष्टि में ह्लादिनी–शक्ति की सारभूता राधा में यह मदनाख्य महाभाव की स्थिति मानी गई है। यह महाभाव की दशा प्रेम भक्ति की साध्यवस्तु है। इस महाभाव की दशा में भक्त चिद्घनानंद भगवान के अनंत नित्य लीला–समुद्र में निमग्न रहता है।

4 . 4 भक्ति की रस रूप में स्थापना

इसमें थोड़ी भी शंका नहीं कि गौड़ीय वैष्णव आचार्यों ने भक्ति का सांगोपांग विवेचन किया है। उन्होंने साहित्य में भक्ति तत्व की स्थापना नये रूप में की है। यह हमारे पूरे साहित्य संसार को गौड़ीय वैष्णव आचार्यो की देन मानना चाहिए। उन्होंने भक्ति के सागर में डूब कर उसमें से भक्ति रस रूपी मोती को पूरे साहित्य संसार को प्रदान किया है। इस भक्ति रस सिद्धांत के मूल तत्व श्रीचैतन्य देव की शिक्षाओं से प्राप्त होते हैं । इसको व्यवस्थित रूप देने का श्रेय रुप गोस्वामी जी को जाता है। उनकी महान् कृति 'भक्तिरसामृतसिन्धु' सचमुच भक्तिरस का सिन्धु है। इसके अलावा जीव गोस्वामी कृत 'षट्संदर्भ', कृष्णदास कविराज कृत 'चैतन्य चरितामृत' में भी भक्ति रस का विशद् वर्णन हुआ है। यह ध्यातव्य है कि इस संप्रदाय में 'श्रीकृष्ण भक्ति' या 'प्रेमभक्ति' को पंचम पुरुषार्थ माना गया है।

4 . 5 गौड़ीय संप्रदाय की उपासना विधि–विधान

'उपासना' का अर्थ है पास बैठना । उपासना शब्द 'उप' उपसर्ग पूर्वक 'आस उपवेशने' धातु ने निष्पन्न हुआ है। भक्ति में दो तत्व होते हैं – उपास्य और उपासक। सरल भाषा में कहें तो भगवान और भक्त के बीच का निकटतम तत्व है उपासना । इससे उन दोनों भक्ति तत्वों की समीपता सिद्ध होती है। निष्कर्ष रूप में अगर उपासना को परिभाषित करना चाहें तो यह कहा जा सकता है कि उपासक के भाव–प्रवण मन से उपास्य की सेवा ही उपासना है। इस संदर्भ में कुलार्णव तंत्र में यह लिखा हुआ है कि –

"कर्मणा, मनसा, वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
समीप सेवा विधिना, उपास्तिरीति कथ्यते।"[74]

उपासना मुख्यतः सेवा ही माना जाता है। इसके अनेक पर्याय शब्द उपलब्ध होते हैं जैसे – आराधना, पूजा, वन्दन, आदि आदि। इस संबंध में 'मानक हिन्दी कोश' में यह लिखा हुआ है कि "आराधना स्त्री, देवी, देवता आदि को संतुष्ट तथा अपने अनुकूल करने के लिए की जानेवाली उनकी उपासना या पूजा।"[75] यह पुनःसूचित करें कि भक्ति का लक्ष्य ही भगवत्प्राप्ति है। भगवत्प्राप्ति यानी जीवनानंद, ब्रह्मानंद की प्राप्ति है। जब इसमें आनंद प्राप्ति की बात आती है, तब यह निश्चित है कि इसमें भक्त या उपासक को कुछ विधि–विधानानुसार उपासना करनी होती है । इस संदर्भ में सेवा को महत्ता दी जाती है। यह ध्यातव्य है कि भक्त भगवान का सेवक, दास है। इसीलिए भक्ति के अंतर्गत दास्य भक्ति का वर्णन मिलता है। भक्ति में अहंकार का समूलोत्पाटन हो जाता है और इसका सबसे अच्छा उदाहरण दास्य भक्ति में पाया जाता हैं। अंततः उपासना के क्षेत्र में 'सेवा' प्रमुख होती है। उपास्य के प्रति अनुराग होने पर ही उपासना सिद्ध मानी जाती है। यह सर्व विदित है कि सेवा को प्राधान्य समस्त भक्ति संप्रदायों ने दिया है, जिसके फलस्वरुप आज भक्ति साहित्य में कितने विनय भरे पद प्राप्त हो पाते हैं । भक्ति की सही परिभाषा अगर ढूँढी जाए तो यह मिलती है कि निष्काम भाव से की गई सेवा ही सर्वोत्तम भक्ति है।

भक्ति का अर्थ भगवान की उपासना अथवा सेवा ही होता है। भक्तिमार्गी उपासना का आधार अनुराग है । भक्त के मन में अपने आराध्य के प्रति अनुराग को पुष्ट करने में

अनुष्ठान या सेवा विधान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह न भूलें कि हमारे विषय का संबंध सगुण भक्तिमार्ग के साथ है। जहाँ तक निर्गुण मार्गी भक्ति की बात है, वहाँ भक्ति तो है किन्तु अनुष्ठान या सेवा विधान का प्रश्न ही नहीं उठता है। जैसे बिना साधना से साध्य की प्राप्ति नहीं होती है, उसी प्रकार बिना सेवा या उपासना से भक्ति । यह भक्ति अत्यन्त 'सुदुर्लभा' है, जिसका गहन वर्णन भक्तिरसामृतसिन्धुकार ने किया है। हमने इसी ओर पहले भी सूचित किया है कि भक्ति सागर की गहराई में अवस्थित मोती है, जिसकी प्राप्ति हेतु अथक वाह्य कर्म विधि–विधानानुसार करने पडते हैं, ठीक उसी तरह शरीर रूपी सागर की गहराई में भक्ति रूपी मोती है उसे प्राप्त करने के लिए उपासना के विधि विधानों का सहारे लिया जाता है । ध्यान रहे कि जब यहाँ सेवा की बात आती है तथा विधि–विधान की बात आती है तब यह निश्चित है कि इस संदर्भ में हमारा आशय वैधी भक्ति के बारे में बताना है । वैधी भक्ति के माध्यम से रागात्मिका भक्ति की प्राप्ति संभव हो पाता है।

4 . 6 गौड़ीय संप्रदाय में भक्ति उत्प्रेरक साधन

'साधन' उसे कहते हैं, जिसके माध्यम से साध्य की प्राप्ति हो पाती है। जहाँ तक भक्ति से संबंधित बात है यहाँ भगवान ही साध्य है और उनकी प्राप्ति हेतु व्यवहृत मार्ग या सेवा विधान ही साधन है। भागवत में इस संदर्भ में 'नवधा भक्ति' की बात की गई है। 'नवधा भक्ति' के साथ–ही–साथ कृष्ण भक्ति संप्रदायों में एक विशिष्ट पूजा प्रणाली का विधान है, जिसे अष्टप्रहर सेवा कहा जाता है। नवधा भक्ति के आचरण से जब भक्ति का अंकुरोद्गम होता है तब उसे पल्लवित करने का काम सेवा द्वारा संभव होता है । यह ध्यातव्य है कि गौड़ीय संप्रदाय से संबंधित ब्रज के कवियों ने नवधा भक्ति के साथ–साथ अष्टकालिक सेवा–विधान संबंधित अनेक पदों की रचना की हैं। इनकी मान्याताओं के अनुसार नवधा भक्ति से अष्टकालिक सेवा अधिक क्रियात्मक तथा भावात्मक है। इसमें इष्टदेव के नाम तथा स्वरूप दोनों प्रमुख होते हैं। परन्तु नाम सेवा अमूर्त होने के कारण उतनी प्रचलित नहीं हो पाती जितनी स्वरूप सेवा।

प्रायतः सभी कृष्णभक्ति संप्रदायों में अष्ट प्रहर सेवा प्रचलित है। गौड़ीय संप्रदाय में वर्णित अष्टप्रहर सेवा प्रणाली में परकीया भाव होने से अधिक रोचकता पाई जाती है। इस

संप्रदाय में राधा–कृष्ण के समान चैतन्य महाप्रभु की सेवा पूजा भी की जाती है। अतः महाप्रभु की अष्टकालीन नित्य सेवा के पदों की रचना भी की गई है। गौड़ीय संप्रदाय के ब्रजभाषा काव्य में सामान्यतः अष्टप्रहर सेवा का वर्णन संप्रदाय के परंपरागत रूप में मान्य सेवा प्रणाली के अनुसार किया गया है। नित्य सेवा के वर्णन में प्रमुख रूप से रूप गोस्वामी कृत 'स्मरणमंगल स्त्रोत' को आधार बनाया गया है। रूप गोस्वामी महाशय ने गौड़ीय भक्तों की सुविधा के लिए पद्मपुराणोक्त पाताल खंड, बृन्दाबन महात्म्य के 14 वें अध्याय के आधार पर 'स्मरणमंगल स्तोत्र' की रचना की थी ।[76] इसमें श्रीकृष्ण की दैनिक लीलाओं की एक छोटी सी रूप–रेखा प्रस्तुत की गई है, जो भक्त जनों में बडी लोकप्रिय हुई है। यह सूचनायोग्य है कि गौड़ीय संप्रदाय के कई प्रमुख कवियों ने इस को आधार मानकर इसके भाष्य रूप में विविध ग्रंथों की रचना की हैं; इनमें कवि कर्णपुर कृत 'श्रीकृष्णाह्निक कौमुदी', कृष्णदास कृत 'गोविन्दलीलामृत' विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत 'श्रीकृष्ण भावनामृत' एवं सिद्ध बाबाकृष्ण दास द्वारा संपादित 'भावनासार संग्रह' प्रमुख हैं।

गौड़ीय संप्रदास में श्रीकृष्ण सेवा में ही भक्ति की सार्थकता मानी गई है। अंशी की सेवा करना अंश का धर्म है । श्रीकृष्ण की प्रीति उत्पादन करना ही सेवा का तात्पर्य है। अंततः यह माना गया है कि जीव स्वरूपतः श्रीकृष्ण का दास है। इसीलिए कहा गया है कि "जीवेर स्वरूप हय–कृष्णेर नित्यदास ।"[77] श्रीकृष्ण सेवानंद ब्रह्मानंद से भी बढ़कर है। यह प्रकृत जगत् की सेवा की तरह नीरस नहीं है । बद्धजीव भी साधना–विधान या महत्कृपा से मायामुक्त होकर पार्षद रूप में श्रीकृष्ण उपासना या सेवा कर सकता है। यह पहले बताया गया है कि इस संप्रदाय में अष्टकालिक सेवा विधान की परंपरा स्वीकार गई है। इसमें यह विश्वास किया जाता है कि भगवान का परिकरत्व प्राप्त करके स्वामीष्ट लीला में यदि भगवान की लीलानुरूप सेवा की जाए, तभी भगवान के आनन्द स्वरूप की वैचित्री का आस्वादन संभव हो सकता है। गौड़ीय संप्रदाय में श्रीकृष्ण की सेवा प्राप्ति को ही परम पुरुषार्थ माना जाता है। इस संबंध में विश्वनाथ चक्रवर्ती महाशय का कथन है कि 'प्रेमापुमर्थोमहान्'। संप्रदाय की परंपरानुसार अष्टकालीन नित्य सेवा का विभाजन निम्नप्रकार किया गया है।

1–निशांत लीला 2 – प्रातः लीला 3 – पूवाह्न लीला 4 – माध्याह्न लीला

5– अपराह्न लीला 6 –सायं लीला 7 – प्रदोष लीला 8 – नैश लीला

यहाँ जब लीलाओं की बात की गई है, भक्त राधा–कृष्ण के विग्रहों को मात्र मूर्ति न समझकर साक्षात् उनके स्वरूप की अभिव्यक्ति समझकर सेवा–उपासना करते हैं। सिद्ध है कि सभी कृष्णभक्ति संप्रदायों में लीलाओं की बात की गई है, इस संदर्भ में यह बताना जरूरी है कि जब राधा–कृष्ण अपनी लीलाओं में रत रहते हैं उस समय भक्त उन्हें सुख पहुँचाने में समस्त प्रकार की सेवा दासत्व भाव में किया करते हैं। मुख्यरुप में राधा–कृष्ण की लीलाएँ दो प्रकार की मानी गयी है – प्रकट लीला और अप्रकट लीला । जब लीला प्रंपचगोचर होती है तब उसे प्रकट और जब यह दिखाई नहीं देती है तब इसे अप्रकट लीला कहा जाता है। इस संबंध में 'लघुभागवतामृत' में यह लिखा हुआ मिलता है कि –

"प्रपंचगोचरत्वेन सा लीला प्रकटा स्मृता ।
अन्यास्त्व प्रकटा भांति तादृश्यस्तदगोचराः।।"[78]

यह सिद्ध है कि इस ब्रह्माण्ड के अंनत लोकों में से किसी न किसी लोक में कृष्ण की बाल्य, पौगण्ड, किशोर आदि अप्रकट लीलाएँ नित्य होती रहती हैं। किन्तु जब कृष्ण अपने संपूर्ण परिकर सहित धराधाम पर अवतरित होकर यहाँ के निवासियों सहित इन लीलाओं का रस लेते हैं तब इन लीलाएँ प्रकट लीला कही जाती हैं। इस का पुष्ट उदाहरण हमें मथुरा, द्वारका और वृन्दावन में कृष्ण द्वारा की गई लीलाओं से प्राप्त होते हैं।[79] कृष्ण की प्रकट और अप्रकट लीलाओं में से प्रकट लीलाओं को महत्व दिया गया है । इस प्रकट लीलाओं में बाल्यकाल से लेकर अंतर्घ्यान पर्यन्त सभी लीलाएँ दृष्टिगत होती हैं। इसमें रस माधुरी भरी रहती है जो, अप्रकट लीलाओं में नहीं है । अतः यहाँ वात्सल्य, सख्य आदि की वास्तविक अनुभूति के अतिरिक्त पूर्वराग, मान, विरह आदि समस्त दशाओं की सच्ची अनुभूति प्राप्त हो पाती है।

यद्यपि मधुर भाव के उपासक के लिए राधा–कृष्ण की ये सभी लालाएँ रस प्रद हैं किन्तु उसके ध्यान हेतु गौड़ीय संप्रदाय के आचार्यो ने अष्टकालीन लीलाओं का निर्देश किया है । इसके बारें में पहले बताया जा चुका है। यह ध्यातव्य है कि इन लीलाओं के वर्णन में संगीत तथा रागों की अहम भूमिका होती है। इसका स्पष्ट चित्रण ब्रजभाषा काव्यों में देखने को मिलते हैं। परिचय हेतु नीचे 'स्मरणमंगल स्त्रोत' के आधार पर अष्टकालिक लीलाओं का सारांश द्रष्टव्य है।

1 – निशांत लीला

प्रातःकाल के छः घडी पूर्व से ही निशांत लीला प्रारंभ हो जाती है। इस काल की लीला में भक्त, राधा–कृष्ण का कुंज में शय्या–तल्प पर एक साथ सोये हुए स्मरण करता है। प्रातः काल को समीप जान पक्षीगण अपना मधुर–मधुर गान आरंभ कर देते हैं । राजा महाराजाओं के प्रसादों में नियुक्त वैतालिक जिस प्रकार वाद्य–यंत्रों पर भैरव या आसावरी रागों के स्वरों द्वारा उन्हें जगाते थे उसी प्रकार निशांत लीला के अंतिम प्रहर में तोता–मैना अपने सुमधुर कंठ से राधा–कृष्ण को जगाने की कोशिश करते हैं । भक्तजन निशांतलीला में अपनी–अपनी उदात्त भावनाओं के अनुसार इस निशांत लीला को संगीत के स्वरों में बांधकर अपने–अपने भावों को प्रदर्शित करते हैं। इस संप्रदाय में यह मान्य है कि भक्त सखी रूप में गायन के माध्यम से कुंज में केलि करते–करते थके हुए राधा–कृष्ण को जगाने की चेष्टा करते हैं और राधा को उसकी सास आने की सूचना देते हैं। फलस्वरूप दोनों अपने–अपने घर की ओर गमन करते हैं। यह पुनः सूचित करें कि गौड़ीय संप्रदाय में मुख्यतः राधा को परकीया नायिका का रूप प्रदान किया गया है। आज भी गौड़ीय संप्रदाय के विभिन्न मंदिरों में गायन तथा वादन के साथ सुप्रभात के रूप में मंगल–आरती का विधान उपलब्ध होता है।

2 – प्रातः काल की लीला

यह लीला प्रातः काल से पूर्वाह्न काल तक मानी गई है। इस लीला में मुख्यतः माता यशोदा के द्वारा गो दोहन हेतु कृष्ण को जगाने की कथा है। इसके अलावा प्रातःकाल की लीला में दंत–मंजन, स्नान, श्रृंगार और भोग से संबंधित विभिन्न पद्धत्तियों की बात की गई है।

3 – पूर्वाह्न कालीन लीला

बाहर घडी दिन चढ़ने तक का समय पूर्वाह्न काल है। इस लीला में कृष्ण अपने नित्यकर्म समाप्त कर वन गमन हेतु वेश धारण करते हैं। इसमें वन गमन के समय उनकी शोभा का सुन्दर वर्णन किया गया है।[80]

4 – मध्याह्न लीला

बारह से अठारह घड़ी तक मध्याह्न का समय माना जाता है। इस काल की लीला में राधा–कृष्ण वन विहार करते समय परस्पर विविध क्रीड़ाएँ करते हैं। दोला, जलक्रीड़ा, वंशी हरण, अधर–सुधापान, सूर्यपूजन, आदि सभी लीलाएँ इसमें सम्मिलित हैं।

5 – अपराह्न लीला

वन में दिवस बिताकर अपराह्न में कृष्ण गौओं के साथ घर को प्रस्थान करते हैं। इस पल प्रकृति की छटा के साथ कृष्ण के घूल से पुते शरीर की शोभा का मनोरम वर्णन भक्त करते हैं और उनके वन जनित कष्ट दूर करने हेतु सखियाँ उनकी सेवा में रत हो जाती हैं।

6– सायंकाल की लीला

संध्या समय में कृष्ण गो दोहन के पश्चात् अपने नित्यकर्म करते हैं तब रात्रि के भोजन की व्यवस्था की जाती है। कृष्ण का प्रसाद सखियाँ यानी भक्त आनन्द से पाते हैं। तत्पश्चात् उनसे कृष्ण की आरती उतारी जाती है।

7 – प्रदोष लीला

इस लीला में कृष्ण शयन के लिए गमन करते हैं। इसमें राधा–कृष्ण अपने घर से भागे हुए निकुंज में आ जाने की प्रथा है। राधा समयानुकूल शुक्लाभिसारिका अथवा कृष्णाभिसारिका का रूप धारण करके निज दूती वृन्दा के आदेश का अनुसरण करती हुई यमुना–पुलिन पर स्थित निकुंज में पहुँचती है। उधर कृष्ण भी पहुँचे हुए होते हैं। अतः इस लीला में दोनों के मिलन का ध्यान किया जाता है।

8 – निशीथ लीला

निशीथ लीला में पहर गये रात्रि से पहर रात्रि तक की लीला में राधा और कृष्ण रास, मान, हास, परिहास आदि लीलाएँ करते हैं। ऐसे अवसर पर सखी वृन्द भाँति–भाँति के सेवा–विधान रचते रहते है, जिससे उनके दोनों आराध्य खुशी के महोदधि में तैर सकें तथा उन दोनों की खुशी के दर्शन से सखियॉ स्वयं को धन्य समझ सकें। अतः सखियों में कोई उन्हें तांबुल देती है, कोई हवा करती है, तो कोई पद संवाहन। इस प्रकार दोनों के रति–रस में लीन होकर निद्रामग्न हो जाने तक यह सेवा चलती रहती है। इस ओर पुनः सूचित करना संगत होगा कि गौड़ीय संप्रदाय में चैतन्य महाप्रभु को राधा–कृष्ण का मिलित अवतार समझा

जाता है। अतः उनकी पूजा भी राधा–कृष्ण की पूजा विधि के अनुसार की जाती है। इसका वर्णन हमें चन्द्रगोपाल की 'गौरांग अष्टयाम' में प्राप्त होता है। इसका एक उदाहरण यहाँ प्रदत्त है –

"आरती कीजै श्री गौड़ेश्वर की ।।
नित्यानंद महाप्रभु, प्यारे सची कुंवर की ।
कलि पावन अवतार धरन की, गजगति विश्वंभर की ।।
श्रीराधा पद–पदुम मत्त मन, मोद भरे मधुकर की ।
श्री प्रभु 'चंद्रगोपाल' प्रेम सों, प्रवर पंच परिकर की ।।"[81]

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि वल्लभ संप्रदाय में जिस प्रकार की पूजा, दर्शन एवं झांकियों का विधान है, उसकी स्पष्ट छाप चैतन्य संप्रदाय में प्रतीत होती है। कारण यह है कि ये दोनों संप्रदाय, साथ–साथ पुष्पित, पल्लवित हुए हैं । इसीलिए दोनों का एक–दूसरे से प्रभावित होना स्वाभाविक है।

ऊपर वर्णित अष्टकालिक सेवा विधान के संदर्भ में अष्टलीलाओं को 'नित्य विहार' के अंतर्गत रखा गया है। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि कृष्ण, जो एक ही साथ भिन्न भिन्न लीलाएँ करते हैं, वे एक ही समय कुंज–निकुंज में ब्रजांगनाओं के साथ क्रीड़ा रत रहते हैं, उसी समय माता यशोदा की गोद में लालित होते हैं तथा सखाओं के साथ मैत्री पूर्ण व्यवहार करते हैं। यह एक ही समय में एक मनुष्य के लिए कैसे संभव हो पाता है ! इसके संबंध में रूप गोस्वामी महाशय ने अपने 'लघुभागवतामृत' में यह कहा है कि "आकार, गुण एवं लीला में एकता होने से एक ही विग्रह का अधिकता से अनेक स्थानों में आविर्भाव 'प्रकाश' कहालाता है।"[82] अतः इसे कृष्ण का लीलामय प्रकाश मानना चाहिए। गौड़ीय संप्रदाय के रसाचार्यों ने रस की पुष्टि हेतु संयोग तथा वियोग को अवश्यंभावी बताया है। इसके संबंध में प्रवोधानंद सरस्वती ने 'वृन्दावन महिमामृतम्' में कृष्ण की इस संयोग परक व वियोग परक लीलाओं के विभिन्न स्थलों पर एक ही समय में प्रकाशन का सुन्दर वर्णन किया है।[83] विहार शब्द का संबंध प्रमुख रूप से राधा–कृष्ण के संयोगमयी लीलाओं से लगाया गया है । सूक्ष्मरूप में अगर इस विषय पर ध्यान दें तो यहाँ जो नित्य विहार की बात की गई है, इसका संबंध प्रमुख रूप से गौड़ीय संप्रदाय की 'निकुंज लीला' से हैं और इस निकुंज लीला से निष्पन्न रस को 'निकुंज रस' कहा गया है। गौड़ीय संप्रदाय की उपासना विधि के

अनुसार इस निकुंज रस का आस्वादन केवल सखीभाव से ही संभव हो पाता है। अर्थात् भक्तों को सर्वदा सखीभाव में ही राधा–कृष्ण की सेवा करनी चाहिए तब उन्हें उनकी आराध्य कृष्ण की प्राप्ति हो पाएगी ।[84] डा. शरणबिहारी गोस्वामी ने इस रस का आस्वादन सखीभाव के द्वारा ही संभव मानते हुए समस्त संप्रदाय के अंतर्गत सखीभाव की उपासना का वर्णन किया है।[85] यह ध्यातव्य है कि डा. गोस्वामी गौड़ीय संप्रदाय में सखीभाव को स्वीकारते हुए यह लिखा है कि "चैतन्य संप्रदाय में यही सखीभाव उपासना का भाव है परन्तु इसका मूल स्वरूप वृन्दावनीय संप्रदायों के सखीभाव से पृथक ही है।"[86]

गौड़ीय संप्रदाय में सखीभाव से भी उच्चत्तर मंजरी भाव की उपासना को ग्राह्य माना गया है। सामान्य रूप से राधा–कृष्ण की मधुर लीलाओं के सम्यक् विधान में तत्पर सभी सखियों को 'सखी' कहा जाता है। किन्तु सेवा की दृष्टि से सखियों के दो भेद हैं – "सखी और मंजरी ।"[87] इसको और स्पष्ट करते हुए यह कहा जा सकता है कि जो गोपियाँ राधा की समजातीया सेवा से श्रीकृष्ण का प्रीति विधान करती हैं, उन्हें सखी कहते हैं और जो गोपियाँ राधा–कृष्ण के मिलन आदि की व्यवस्था करना अपना कर्तव्य समझती हैं, उन्हें मंजरी कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ केवल सखी का संबंध राधा से रहता है वहाँ मंजरी का संबंध उभय राधा–कृष्ण से होता है। इसीलिए राधा–कृष्ण की सेवा निमित्त भक्त को मंजरी भाव की उपासना करनी चाहिए। गौड़ीय संप्रदाय में मंजरी भाव की सेवा को 'मानसी सेवा' भी कहा जाता है और मानसी सेवा को ही रागानुगा भक्ति में भजन का मुख्य अंग स्वीकार किया गया है।[88] यह सिद्ध है कि भक्ति के इसी सोपान पर गौड़ीय संप्रदाय की उपासना विधि बाकी वैष्णव संप्रदायों की उपासना विधि से आगे निकल जाती है । अतः मंजरी भाव की उपासना चैतन्य महाप्रभु और उनके अनुयायी आचार्य गोस्वामियों की विशिष्ट व मौलिक देन है।[89] महाप्रभु चैतन्य से पूर्व इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

4 . 7 गौड़ीय भक्ति की साधना के विभिन्न अंग

साधक को सिद्धि प्राप्त हेतु साधना करनी होती है । ऐसी साधना करनी होती है जिससे साध्य वस्तु स्वतः आ जाए। यह गौरतलव है कि गौड़ीय दर्शन में जिस भक्ति की बात की गई है, यह सिद्ध देह में ही संभव हो पाती है। इसके संबंध में डॉ. गोपीनाथ कविराज यह बताते हैं कि – "दीर्घकाल तक नियमित रूप में नाम–साधना करते रहने से

यथा समय भगवान की करूणा का उद्रेक होता है, और वे पथ प्रदर्शक गुरू के रूप में नाम–साधक भक्त के सामने आविर्भूत होते हैं।"[90] अतः निश्चित है कि इस शरीर को सिद्ध शरीर बनाने हेतु कुछ साधनों की आवश्यकता होती है। ऐसे तो हम प्रथम अध्याय में इसी ओर संकेत कर चुके हैं। पुनश्च गौड़ीय भक्ति हेतु बतायी गयी साधना विधि के विभिन्न अंग हैं – साधु संग, नाम–कीर्तन, भागवत श्रवण, मथुरा वास और श्रद्धा से मूर्ति का सेवन। इस ओर कृष्णदास कविराजजी ने भी संकेत किया है –

"साधुसंग, नामकीर्तन, भगवत श्रवण ।
मथुरावास, श्रीमूर्तिर श्रद्धाय सेवन ।।
सकल साधन श्रेष्ठ एई पंच अंग ।
कृष्ण प्रेम जन्माय एई पॉचेर अल्पसंग ।"[91]

साधना में पंचेन्द्रिय की प्रमुख भूमिका होती है। यह साधना शरीर के वाह्य स्तर पर घटित होती है। साधक को साधना के समय कुछ चीजों पर ध्यान देता होता है; ये हैं – वेशभूषा, खाद्य–पेय, व्रत तथा स्थान आदि।

वेशभूषा : जहाँ तक गौड़ीय भक्ति की साधन विधि से वेशभूषा का संबंध है, इस संप्रदाय के कई वैष्णव भक्त गेरूआ तथा कोई सफेद वस्त्र धारण करते हैं । किन्तु इनके कोपीन तथा बहिर्वास साधारण होता है जो, प्रमुखतः प्रसिद्ध है । भक्तजन ब्रज रज को अपने मस्तक पर लगाये होते हैं। वे शिखा, सुमिरिनि भी धारण करते हैं। एक प्राचीन हस्तलिखित 'भक्तमाल' में रूप–सनातन के प्रसंग में यह उल्लेख मिलता है कि –

"कौपीनं करकं चै व गृहीत्वा वीतरागिणौ ।
निवासं चक्रतुः श्रीराधाध्यानतत्परमानसौ।"[92]

इस प्रकार ब्रजरज भी इस संप्रदाय के भक्तों के लिए परम पावन है। उसे अपने अंगों पर लगाकर कृष्ण से मिलन की भावना में डूब जाना भक्तों का प्रिय आचरण होता है। इस संबंध में ललित किशोरी जी ने यह लिखा है कि –

"वृन्दावन की रेनु को दृग अंजन कर लेहु।
वृन्दावन के रेनु के, छापे अंग अंग देहु ।।"[93]

तिलक – इस संप्रदाय के भक्तों द्वारा व्यवहृत तिलक को ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक कहा जाता है। इसका रूप अंग्रेजी `V' जैसा है। इसके संबंध में नरेशचंद्र वंसल जी ने जो तथ्य दिया है,

सो इस प्रकार है – "चैतन्य संप्रदाय में पंचतत्व का निरूपण उपलब्ध है। ये तत्व हैं– ईश्वर, जीव, माया, काल और कर्म । इनमें ईश्वर सर्व स्वतंत्र अचिन्त्य शक्ति, ज्ञानानंद घन, चैतन्य परतत्व हैं। वह जीव माया–काल–कर्म का नियन्ता है। ये चारों ईश्वर परतंत्र है। इनमें–जीव अल्पज्ञ अणु चैतन्य है। माया–काल–कर्म तीनों जड़ हैं। इसी तत्व–चिंतन को सर्वदा स्मरण रखने के लिए ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक धारण किया जाता है ।"[94] तिलक रचना हेतु इस संप्रदाय के वैष्णव, राधाकुंड़ की रज को सर्वोपरि मानते हैं । संप्रदाय के वैष्णव भक्त नासामूल अवधि से केश पर्यन्त राधाकुंड़ या गोपी चंदन का ऊर्ध्व पुण्ड्र लगाकर उसे नासाग्र के साथ मिला देते हैं।

कंठीधारण – गौड़ीय संप्रदाय में दीक्षित भक्त को तुलसी की कंठी धारण करना होता है। यह कंठी यज्ञोपवीत सदृश परम पावन मानी जाती है। इस संप्रदाय में तीन लडी वाली कंठी धारण करने की विधि है। सांप्रदायिक विधानानुसार कंठी से सिर्फ चित्त की शुद्धि नहीं होती है बल्कि यह युगल तत्व तथा गुरू रूपा सखी का भाव भी व्यक्त करती है। त्रिकंठी इस संप्रदाय की सर्वोप्रमुख विशेषता है। इसके संबंध में भक्तिरसामृत सिन्धु में रुप गोस्वामीजी ने पद्म पुराण में वर्णित तथ्य को स्वीकारते हुए लिखा है कि –

"ये कंठलग्न तुलसीनलिनाख्यमालाः
ये बाहुमूलपरि चिन्हितशंखचकाः ।
ये वा ललाटफलके लसदूर्ध्वपुण्ड्राः
ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ।।"[95]

एकादशी व्रत – वैष्णव धर्म में दीक्षा ग्रहणोपरांत एकदशी व्रत रखने की विधि है। इसीलिए गौड़ीय संप्रदाय में एकादशी व्रत को अत्यंत प्रमुखता दी गई है। इसके संबंध में रूप गोस्वामी जी 'ब्रह्म वैवर्त पुराण' में वर्णित तथ्य को स्वीकार किया है –

"सर्वपापप्रशमनं पुण्यमात्यन्तिक तथा ।
गोविन्दस्मरणं तृणामेकादश्यामुपोषणम् ।।"[96]

गौड़ीय संप्रदाय में इसे कृष्ण प्रीति मूलक व्रत माना जाता है और विश्वास किया जाता है कि इससे प्रेमाविर्भाव का पोषण होता है।

स्थान – गौड़ीय दर्शन में यह विश्वास किया जाता है कि भगवत् भक्ति की सही प्राप्ति वृन्दावन में ही हो पाती है । इसका संकेत हमें 'भक्तिरसामृतसिंधु' से मिलता है । इसे 'रस

खेत' कहा जाता है। भक्ति रस भरे फूल को इस 'रस खेत' से तोडा जा सकता है। पहले यह बताया जा चुका है कि भक्ति के चौसठ अंगों में से पांच अंग प्रमुख है। इसमें वृन्दावन में वास करना भी भक्ति प्राप्ति का एक अंग माना गया है। यह प्रिया तथा प्रियतम यानी राधा और कृष्ण की अनंत लीला भूमि होने के नाते भक्त के मन में भक्तिरस के स्वतः उत्पन्न होने की मान्यता है । इस संदर्भ में ललित किशोरी जी लिखते हैं –

"वृन्दावन के वास में, उपजै प्रीतम प्रीत।
रसिक समागम सों सदा, बढ़त रहै रसरीत ।।"[97]

उपर्युक्त वर्णनों से यह विदित होता है कि साधना के बिना साध्य की उपासना असंभव है। अतः उपासना रूपी सीढ़ी में सधना रुपी पायदानों की अतीव आवश्यकता है । यह पहले कहा जा चुका है कि भक्ति गतिशील है, जो बाहर से भीतर की ओर जाती है अर्थात् साधक साधनों की विधियों (सेवा विधि)से होते हुए भक्ति की ओर उन्मुख होता है।

4 . 8 निष्कर्ष

यह सर्व विदित है कि समस्त वैष्णव संप्रदायों में कुछ न कुछ सेवा विधियाँ जरुर बतायी गई हैं, जिन विधियों को अपना कर भक्त अपने प्रियतम भगवान का सान्निध्य लाभ कर पाता है। ऐसा कहा जा सकता है कि ये विधियाँ मन रूपी सागर में भक्ति रूपी नाव को उस पार तक ले जाने में पतवार का काम करती है । अतः भगवान की प्राप्ति में निश्चित ही ये विधियाँ ग्राह्य है। उपर्युक्त वर्णन में अन्य वैष्णव संप्रदायों के उपासना विधि–विधानों का वर्णन किया गया है । साथ–साथ गौड़ीय संप्रदाय की उपासना–विधि की श्रेष्ठता भी बताई गई है। यह निश्चित है भक्त जब भगवान के प्रेम में प्रमोन्मत्त हो जाता है तब उसे संसार के कोने–कोने में भगवान के दर्शन होते रहते है। भगवान का नाम संकीर्तन ही उस प्रेमोन्मत्तता का प्रमुख साधन सिद्ध होता है, जो आज के भक्ति जगत् को महाप्रभु चैतन्य की अनुपम देन है। ध्यातव्य है कि गौड़ीय दर्शन में जो भाव, महाभाव कहलाता है वह सिर्फ संकीर्तन से संभव हो पाता है। दूसरी बात इस संदर्भ में यह है कि इस संप्रदाय के दर्शन में गोपीभाव की उपासना विधि को प्रमुखता दी गई है। इसीलिए इसमें अष्टकालीन लीला की बात कही गई है। गोपीभाव से राधा–कृष्ण की लीला में उनकी सेवा करना ही इस दर्शन की

प्रमुख विधि है। अंततः यह कहा जाना स्वभाविक हो जाता है कि राधावल्लभ कृष्ण को हर प्रकार की सेवा विधियों से आनन्दमग्न रखना गौड़ीय दर्शन के भक्त का चरम तथा परम लक्ष्य होता है।

संदर्भ

1. चैतन्य मत और ब्रज साहित्य पृ–113
2. तत्व संदर्भ पृ–92
3. वृहत्भागवतामृत 2–2–96
4. चैतन्य चरितामृत 2–20–132
5. भगवत् संदर्भ पृ–49
6. कृष्णभक्ति साहित्य में मधुराभाव की उपासना से उद्धृत पृ–246
7. चैतन्य चरितामृत 2–20–131/132
8. श्रीमद्भागवत 1–9–42
9. चैतन्य चरितामृत 1–2–57
10. चैतन्य चरितामृत 7–2–5
11. चैतन्य चरितामृत 2–8–106/107
12. चैतन्य चरितामृत 1–2–78
13. चैतन्य चरितामृत 2–21–83
14. विष्णु पुराण 4–11–2
15. भारतीय वाङ्मय में श्रराधा पृ–139
16. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला 2–8–122/123
17. चैतन्य चरितामृत मध्यलीला 1–4–73
18. चैतन्य चरितामृत मध्यलीला 1–4–75
19. षट् संदर्भ, प्रति संदर्भ पृ–739
20. सूर साहित्य पृ–26–27
21. चैतन्य चरितामृत, आदिलीला, चतुर्थ परिच्छद
22. Vaishnav faith and movement in Bengal p. 443
23. Vaishnav faith and movement in Bengal p. 107
24. ब्रजभाषा के कृष्ण काव्य में माधुर्य भक्ति पृ–263
25. श्रीराधा का क्रम विकास पृ–235

26. भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा से उद्धृत पृ.153

27. वेदान्त सूत्र 2–2–36

28. चैतन्य, चरितामृत, मध्यलीला पृ.–149

29. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला पृ–132

30. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला पृ–241

31. देखिए चैतन्य चरितामृत के मध्यलीला के पृ–279 का छंद

32. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला पृ–259

33. सुधर्म बोधिनी पृ–13

34. ईशावास्योपनिषद्, श्लोक संख्या – 8

35. विष्णुपुराण 2–22–60

36. महाभारत, अश्व पर्व 34/35

37. भागवत संप्रदाय पृ–525

38. ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास पृ.323

39. चैतन्य चरितामृत, 5 वां परिच्छेद, पयार संख्या – 50/54

40. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला पृ–259

41. चैतन्य चरितामृत, आदिलीला पृ–16

42. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला पृ.265

43. चैतन्य चरितामृत, आदि लीला, 5 वाँ परिच्छेद पृ–35

44. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला पृ–280

45. देखें, चैतन्य चरितामृत मध्यलीला पृ–132

46. देखें, चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला पृ–365

47. ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास पृ. 324

48. हिन्दी भक्तिरसामृतसिन्धु पृ–23

49. श्रीचैतन्य चरितामृत, मध्यलीला, 22वाँ परिच्छेद, पयार –सं 56

50. हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु, पूर्व विभाग पृ–24

51. हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु पूर्व विभाग पृ–24

52. हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु द्वितीय लहरी पृ–79

53. हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु द्वितीय लहरी पृ–79
54. हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु द्वितीय लहरी पृ–80
55. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला 22वाँ अध्याय
56. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला 22वाँ अध्याय
57. षट् संदर्भ, भगवत्सन्दर्भ पृ –149
58. चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला, अष्टम परिछेद पृ.–247
59. हिन्दी भक्तिरसामृत सिन्धु, प्रथम खंड, द्वितीय लहरी पृ–80
60. हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु, प्रथम खंड, द्वितीय लहरी पृ–83
61. हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु, प्रथम खंड, द्वितीय लहरी पृ–86
62. हिन्दी भक्तिरसामृत सिन्धु, प्रथम खंड, द्वितीय लहरी पृ–87
63. हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्ध, प्रथम खंड, तृतीय लहरी पृ–91
64. हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु, प्रथम खंड, तृतीय लहरी पृ–93
65. हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु, प्रथम खंड, तृतीय लहरी पृ–106
66. उज्ज्वलनीलमणि–स्थाई भाव के श्लोक सं – 57
67. हिन्दी भक्तिरसामृत सिन्धु, प्रथम खंड चतुर्थ लहरी पृ–107
68. चैतन्य चरितामृत ,2–9–151
69. ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्य पृ–485
70. उज्ज्वलनीलमणि, स्थायीभाव, श्लोक सं – 98
71. उज्ज्वलनीलमणि, स्थायीभाव, श्लोक सं – 115
72. उज्ज्वलनीलमणि, स्थायीभाव, श्लोक सं – 134
73. उज्ज्वलनीलमणि, स्थायीभाव, श्लोक सं – 142
74. चैतन्य संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य से उद्धृत पृ.160
75. मानक हिन्दी शब्द कोश पृ–281
76. ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास पृ.325
77. चैतन्य चरितामृत, 2–20–101
78 लघुभागवतामृत,कृष्णामृतखंड पृ –158
79 भागवतामृत कणिका पृ –43

80	विस्तार के लिए द्रष्टव्य, चैतन्य संप्रदाय और संगीत	पृ–.22
81	विस्तार के लिए द्रष्टव्य, चैतन्य संप्रदाय और संगीत	पृ –.28
82	लघुभागवतामृत, पूर्व खण्ड	पृ –15
83.	वृन्दावन महिमामृतम्, द्वितीय शतकम्, श्लोक सं –35	
84.	चैतन्य चरितामृत, 2–8	
85	कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव	पृ–747
86.	कृष्ण भक्ति काव्य में सखी भाव	पृ–609
87.	वैष्णव सिद्धान्त रत्न संग्रह	पृ–103
88.	ब्रज भाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य भक्ति	पृ–281
89.	चैतन्य संप्रदाय का ब्रज भाषा काव्य	पृ–18
90.	कल्याण, हिन्दी संस्कृति अंक, भक्ति रहस्य	पृ–436
91.	चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला, 22 वाँ परिच्छेद	
92.	चैतन्य संप्रदायः सिद्धान्त और साहित्य से उद्धृत	पृ–184
93.	अभिलाष माधुरी	पृ–19
94	चैतन्य संप्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य	पृ –182
95	हिन्दी भक्तिरसामृत सिंधु, पूर्व दिभाग, साधना लहरी	पृ–51
96.	हिन्दी भक्तिरसामृत सिंधु,पूर्व दिभाग, साधना लहरी	पृ–49
97.	अभिलाष माधुरी, वृन्दावन शतक	पृ –12

पंचम अध्याय

मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण–भक्ति काव्य और गौड़ीय संप्रदाय

5 . 0 प्रस्तावना

5 . 1 मध्यकालीन कृष्ण भक्तिकाव्य : गौड़ीय संप्रदाय

1 . वल्लभ संप्रदाय के कृष्ण भक्तिकाव्य : गौड़ीय संप्रदाय

2 . निम्बार्क संप्रदाय के कृष्ण भक्तिकाव्य : गौड़ीय संप्रदाय

3 . राधावल्लभ संप्रदाय के कृष्ण भक्तिकाव्य : गौड़ीय संप्रदाय

4 . संप्रदाय रहित कृष्ण भक्त कवि : गौड़ीय संप्रदाय

अ . कृष्ण प्रेम दिवानी मीराबाई

आ . कृष्ण भक्त कवि रसखान

5 . 2 राम भक्ति संप्रदाय के कवि : गौड़ीय संप्रदाय

5 . 3 अन्य भाषा के भक्तिकाव्य : गौड़ीय संप्रदाय

1 . उड़िया कृष्ण भक्तिकाव्य : गौड़ीय संप्रदाय

2 . बंगला कृष्ण भक्तिकाव्य : गौड़ीय संप्रदाय

3 . मराठी और गुजराती कृष्ण भक्तिकाव्य : गौड़ीय संप्रदाय

5 . 4 निष्कर्ष

5 . 0 प्रस्तावना

वृन्दावन भक्ति का गढ़ है। यह लीलामय कृष्ण भगवान का लीला क्षेत्र है । इसी धरती पर स्वयं कृष्ण भगवान ने अपनी अनुपम लीलाएँ रचाकर इसके रजकणों को पवित्र बना दिया है। कृष्णभक्ति के जितने वैष्णव संप्रदाय हुए हैं, सबने वृन्दावन को भक्ति का क्षेत्र तथा इसके रजकणों को अपने मस्तक के तिलक के रुप में स्वीकार किया है। ध्यान रहे कि सभी संप्रदायों ने इस वृन्दावन भूमि को भक्ति के लिए श्रेष्ठ स्थान कहकर इसकी महिमा गायी है। ऐसे कि आचार्य वल्लभ ने 'वृन्दावन' का अर्थ 'भक्ति का प्रदेश' कह ड़ाला है।[1] किन्तु गौड़ीय संप्रदाय के मान्य प्रवर्तक स्वयं महाप्रभु चैतन्यदेव ने वृन्दावन भूमि को कृष्ण भक्ति के निमित्त अत्यन्त श्रेष्ठ बताया है और संप्रदाय के प्रमुख आचार्य रुप गोस्वामी जी ने **'भक्तिरसामृतसिन्धु'** में भक्ति के चौंसठ अंगों में से वृन्दावन वास को अन्यतम बताया है ।

कृष्ण की लीलाओं में रास लीला सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसमें ब्रज–लीला की पराकाष्ठा स्वीकार की गई है। आत्माराम श्रीकृष्ण की आत्मा राधिका है । वंशी उनकी प्रेमरूपिणी है। यमुना के कछार में कदम्ब वृक्ष के नीचे स्वयं कृष्ण जब अपनी प्रियतमाओं को स्मरण कर वंशी की तान छोड़ते थे तब वह तान गोपिकाओं को कृष्ण की ओर आकर्षित कर लाती थी । ध्यातव्य है कि 'रास' शब्द का अर्थ रस है। उस वंशी की तान से जो रस निर्झरित होता था उस निर्झरित रस का पान कर गोपिकाओं के प्यासे हृदय अपनी प्यास बुझाया करते थे ।

कवि का हृदय तो संगीत मय है। भला वह कैसे उस लीलामय कृष्ण की वंशी से निकले संगीत से अलग हो पाएगा । बस, जिसके हृदय को कृष्ण की संगीतमय वंशी की तान एक बार स्पर्श कर जाती है उसका हृदय कृष्णमय हो जाता है। इस प्रकार इस कृष्णमय हृदय से कृष्ण भक्ति की सरिता फूट पड़ती है कवि की कविता के माध्यम से। इतिहास इसका साक्षी है कि इस कृष्ण भक्ति की सरिता में वैष्णव संप्रदायों के अनेक कृष्णभक्त कवियों ने नहाकर अपने आपको शुद्ध–पूत किया है। तत्सहित उनकी रचनाएँ भी शुद्ध पूत हो गई हैं । कृष्ण भक्ति की धारा, साहित्य में कैसे आई, उसकी चर्चा प्रथम अध्याय में की जा चुकी है। साथ–साथ गौड़ीय संप्रदाय की भक्ति आन्दोलन में क्या भूमिका रही है, इस पर भी आलोक पात किया जा चुका है । प्रस्तुत अध्याय में कुछ कवियों की रचनाओं के कतिपय उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा कि गौड़ीय

संप्रदाय का प्रभाव किस तरह अन्य संप्रदाय के कवियों पर पड़ा है । यह गौरतलब है कि 'वृदावन' जिसे कृष्णभक्ति का खजाना कहा जाता है उस खजाने को परिनिष्ठित रूप प्रदान करने में महाप्रभु चैतन्यदेव की भूमिका अत्यन्त श्लाघनीय रही हे । कहने का मतलब वृदावन पर सर्वाधिक प्रभाव 'चैतन्य संप्रदाय' का ही पड़ा है। यह बात स्वयं दीनदयाल गुप्त ने अपनी कृति 'अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय' में स्वीकारी है । "कृष्ण चैतन्य जिस समय ब्रज में गये उस समय वर्तमान वृन्दावन में दो चार घरों के अतिरिक्त कोई बस्ती न थी । चारों ओर जमुना की कछारों के जंगल थे। श्रीकृष्ण चैतन्य ने उस स्थान को एक तीर्थस्थान बना दिया और तब से अब तक वृन्दावन एक बड़ा तीर्थ स्थान समझा जाता है।"[2] इस कथन से यह स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि भले ही चैतन्य संप्रदाय के पहले अनेक संप्रदाय हो गये हों और कृष्णभक्ति संबंधी काव्य रचे हों, परंतु वे इतने प्रभावशाली, रसोद्दीपक नहीं रहे होंगे जितने कि महाप्रभु चैतन्य के संप्रदाय के कवियों की रचनाएँ रही होंगी । दीनदयाल गुप्त जी ने भक्तमाल के आधार पर बताया है कि "श्रीजीव गोस्वामी जी ने वहाँ श्री राधादामोदर के मन्दिर की तथा श्रीगोपाल भट्टजी ने राधारमण मन्दिर की स्थापना की थीं।"[3] अनेक प्रमाणिक ग्रंथ जैसे – 'भक्तमाल', 'भक्तिरस बोधिनी टीका', 'ब्रजभक्ति विलास' से यह तथ्य उपलब्ध होते हैं कि गौड़ीय संप्रदाय के आचार्य तथा प्रचारकों ने वृन्दावन में अनेक मंदिरों की स्थापना कर ब्रजभक्ति तथा वृन्दावन को संस्कारित किया था। इसका प्रमाण स्वयं दीनदायल गुप्त ने दिया है । डॉ. नरेशचंद्र बंसल ने इस संबंध में "प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान ग्रायस महोदय के कथन के आधार पर गौड़ीय संप्रदाय के प्रखर प्रभाव को स्वीकारा है।[4] खास करके इस संप्रदाय की रस साधना का विशेष प्रभाव अन्य संप्रदायों पर पड़ा है। इससे यह सिद्ध होता है कि गौड़ीय संप्रदाय ने ही भक्ति को एक रस रूप में स्थापित किया था। इसीलिए निश्चित रूप में इसका प्रभाव अन्य भक्ति संप्रदायों पर होना स्वाभाविक था । दूसरी बात इस संदर्भ में ध्यान देने की यह है कि भक्ति, चाहे सगुण संप्रदाय की हो या निर्गुण संप्रदाय की, कृष्ण भक्ति शाखा की हो या राम भक्ति शाखा की, एक प्रकार की होती है। किन्तु उन संप्रदायों की साधना पद्वति में अवश्य अंतर पाये जाते हैं। अतः इस संदर्भ में यह सिद्ध है कि भक्ति एक है, बल्कि प्राप्ति की साधना विधि अलग–अलग है । गौर तलब है कि गौड़ीय संप्रदाय की भक्ति का प्रभाव न केवल कृष्णभक्ति के संप्रदायों पर पड़ा है, बल्कि उसने राम–भक्ति शाखा की मधुरोपासना को भी प्रभावित किया है । मान्य है

कि इस संप्रदाय के प्रभाव का क्षेत्र मुख्यतः कृष्णभक्ति और गौणतः रामभक्ति पर रहा है।[5] मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण भक्ति साहित्य में कुछ ऐसे भी कवि हुए है, जो संप्रदाय रहित हैं जैसे मीराबाई तथा रसखान आदि; इन पर भी चैतन्य महाप्रभु की भक्ति–साधना पद्धति का प्रभाव पड़ा है। इतिहासकार हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका में लिखा है कि मीराबाई ने गौड़ीय संप्रदाय के षड् गोस्वामियों में से जीव गोस्वामी से दीक्षा ली थी। इस ओर प्रथम अध्याय में संकेत किया जा चुका है। महाप्रभु प्रमुखतः बंगाल के होने के नाते उनसे बंगला साहित्य हिन्दी साहित्य से भी अधिक प्रभावित है।

सर्वज्ञात यह है कि उत्कल प्रदेश की भूमि महाप्रभु के चरण रज से पावन हो पाई थी। महाप्रभु के जीवन का आधे से ज्यादा समय उड़ीसा में ही बीता था । महाप्रभु जगन्नाथ का क्षेत्र पुरी, श्रीकृष्णचैतन्य का लीलाधाम था। अतः उड़िया भक्ति साहित्य की सृष्टि ही महाप्रभु के पुरी आगमनोपरांत हुई थी । उड़िया भक्ति साहित्य के 'पंचसखा' महाप्रभु की ही देन है।

5.1 मध्यकालीन कृष्ण भक्ति काव्य और गौड़ीय संप्रदाय

1.1 वल्लभ संप्रदाय के कृष्णभक्ति काव्य और गौड़ीय संप्रदाय

हिन्दी भक्ति साहित्य के परिदृश्य में सामने आने वाले कृष्ण भक्ति संप्रदायों का उद्भव आचार्य शंकर के अद्वैतवाद के खिलाफ हुआ था । इसी ओर संकेत हमने पिछले अध्याय में किया है। यहाँ हिन्दी कृष्ण भक्ति संप्रदायों पर परिलक्षित गौड़ीय संप्रदाय के प्रभाव की ओर संकेत किया जाएगा। आचार्य वल्लभ, महाप्रभु चैतन्यदेव के समकालीन माने जाते हैं । वल्लभ संप्रदाय की भक्ति 'पुष्टिमार्गी भक्ति' कहलाती है। इस पुष्टिमार्गी भक्ति में भगवान के अनुग्रह के पोषण की बात की गई है। इसकी मान्यता है कि भगवान के अनुग्रह से ही भक्त के हृदय में भक्ति का उदय होता है। अतः इस संप्रदाय में भक्त को अपना सर्वस्व भगवान को ही समर्पण कर देना स्वीकार किया गया है। सभी वैष्णव भक्ति संप्रदायों का आधार ग्रंथ 'भागवत' माना गया है। अतः इसमें वर्णित कृष्ण–लीलाओं के आधार पर चैतन्य महाप्रभु के शिष्य, प्रमुख रूप में वृन्दावन के श्रेष्ठ छः गोस्वामियों ने बडे–बडे रूपक बाँधें हैं । इस विषय में सनातन गोस्वामी का 'वृहद्भागवतामृत' तथा रूप गोस्वामी का 'लघुभागवतामृत' विशेष उल्लेखनीय है। ध्यातव्य है कि जब हमारी चर्चा का विषय वल्लभ संप्रदाय के कवियों पर

गौड़ीय संप्रदाय के प्रभाव से संबंधित है तब यह देखने को मिलता है कि वल्लभ संप्रदाय में कृष्ण को पूर्णावतार मानकर उनके चार व्यूह माने गये हैं । रूप गोस्वामी कृत 'लघुभागवतामृत' में भी इन चार व्यूहों के संबंध में वर्णन मिलता है। अतः निश्चित रूप में इन पर गौड़ीय दर्शन का प्रभाव है। सूर साहित्य के परम अध्येता डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने अपनी पुस्तक में यह स्पष्ट रूप में दर्शाया है कि – "बृन्दावन के प्रायः सभी संप्रदाय चैतन्य संप्रदाय से प्रभावित हुए हैं । वल्लभ–संप्रदाय के सिद्धान्तों का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट झलकती है कि सिद्धान्त रूप से वल्लभ संप्रदाय चैतन्यसंप्रदाय से बहुत अधिक प्रभावित हुआ है। कृष्ण–लीला का आध्यात्मिक पक्ष थोडे बहुत अंतर से प्रायः चैतन्य संप्रदाय से ही लिया गया है।"[6] उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि वल्लभाचार्य जी के पश्चात् उनके पुत्र विट्ठलनाथ जी ने अपने संप्रदाय का विस्तार पर्याप्त मात्रा में चैतन्य संप्रदाय के आधार पर ही किया था। अतः उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि आचार्य विट्ठलनाथ जी के द्वारा स्थापित 'अष्टछाप', जिसमें वल्लभाचार्य के चार शिष्य तथा विट्ठलनाथ के चार शिष्य हैं, के कवियों पर निश्चित रूप से गौड़ीय संप्रदाय का प्रभाव है। दूसरी बात इस संबंध में यह देखने को मिलती है कि आचार्य वल्लभ ने अपनी पुष्टिमार्गीय भक्ति में पूर्ण निष्ठा से भगवान के भजन की बात कही है – "सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो ब्रजाधिपः ।"[7] अर्थात् उत्कट प्रेम में भगवान का स्मरण और ध्यान के द्वारा भक्त भगवान का अनुग्रह प्राप्त करता है। इस तरह की बात गौड़ीय दर्शन के आचार्य कृष्णदास गोस्वामी जी ने भी कही है, जो निश्चित रूप से भक्ति का मूल तत्व ही माना गया है –

"आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय–प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम।
कामेर तात्पर्य–निज संभोग केवल।
कृष्णसुख तात्पर्य–हय प्रेम प्रबल।।"[8]

अर्थात् प्रेम को गौड़ीय दर्शन में मन की स्वाभाविक वृत्ति नहीं माना गया है, बल्कि इसको ईश्वर की कृपा से मन में उत्पन्न होने की बात कही गई है। अतः इस संदर्भ में चाहे गौड़ीय दर्शन के प्रेमतत्व से 'पुष्टि दर्शन' प्रभाक्ति हुआ हो या यह उन दोनों संप्रदायों के दार्शनिक चिंतन के धरातल पर समानता भी हो सकती है ।

यह सिद्ध है कि वल्लभाचार्य जी के समय में कृष्ण भक्ति के जितने संप्रदाय ब्रज में प्रचलित थे उनके दर्शनों का प्रभाव एक दूसरे की भक्ति–पद्धिति पर अवश्य पड़ा होगा। वल्लभाचार्य जी तथा श्री विट्ठलनाथ जी से पूर्व ब्रज में प्रचलित कृष्ण भक्ति के संप्रदायों में तत्व के धरातल पर कुछ न कुछ समानताएँ देखी गई हैं। विशेष रूप से वल्लभाचार्य जी की जीवनी, निज वार्ता तथा वल्लभ दिग्विजय आदि ग्रन्थों से विदित है कि वल्लभाचार्य जी का विशेष संपर्क चैतन्य महाप्रभु जी तथा उनके अनुयायियों से था।"[9] इस संदर्भ में दूसरी बात यह उपलब्ध होती हैं कि वल्लभाचार्य ने महाप्रभु चैंतन्य देव की भक्ति से प्रभावित होकर अपने इष्टदेव श्रीनाथ जी की सेवा में बंगाली ब्राहृणों को नियुक्त किया था। 'निजवार्ता' में यह बात मिलती है कि "श्रीनाथ जी के सेवक एक भक्त 'माधवेन्द्रपुरी' माधवी संप्रदाय के थे, जो श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा श्री विट्ठलनाथ जी, दोनों के शिक्षा गुरू थे।"[10]

अगर दोनों संप्रदायों के राधातत्व पर ध्यान केन्द्रित किया जाए तो यह चित्र स्पष्ट हो जाता है कि निश्चित रूप में वल्लभ संप्रदाय में वर्णित राधातत्व पर गौड़ीय संप्रदाय का प्रभाव है। जहाँ तक वल्लभ संप्रदाय में राधा की उपासना की बात है, तो यह श्री विट्ठल देव के समय से ही शुरू हो गई थी। क्योंकि विट्ठल जी ने राधा की स्तुति में 'स्वामिन्याष्टक' तथा 'स्वामिनी–स्तोत्र' नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं और श्री वल्लभाचार्य जी के किसी भी ग्रन्थ में इस प्रकार राधा का वर्णन नही है। [11] इसको और स्पष्ट करते हुए दीनदयाल गुप्त ने यह लिखा है कि वल्लभाचार्य जी ने अपने दर्शन ग्रन्थों के अनेक स्थलों पर गोपीभाव से मधुर भक्ति का उपदेश अवश्य दिया है। इससे यह ज्ञात होती है कि सब भावों से कृष्ण की उपासना का समावेश तो उन्होंने अपने संप्रदाय में स्वयं कर लिया था, परन्तु राधा की अथवा युगल रूप की उपासना का समावेश गोस्वामी विट्ठल जी ने ही किया। उन्होंने स्पष्ट रुप में यह बताया है कि "गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के राधा भाव संबंधी विचारों पर माध्व संप्रदाय, चैतन्य महाप्रभु तथा हित हरिवंश जी के विचारोंका प्रभाव माना जा सकता है, क्योंकि चैतन्य महाप्रभु तथा हितहरिवंश जी के संप्रदायों में कृष्ण के साथ राधा की भक्ति की बड़ी मान्यता थी।"[12] काव्यशास्त्र के नायिका भेद के आधार पर दोनों संप्रदायों में द्वन्द्व परिलक्षित होता है। जहाँ वल्लभ संप्रदाय की राधा स्वकीया मानी जाती है, वहाँ गौड़ीय संप्रदाय की राधा परकीया मानी जाती है। इस ओर पहले भी संकेत किया जा चुका हैं । पुनः यह कह सकते हैं कि गौड़ीय संप्रदाय की राधा परकीया है, क्योंकि गौड़ीय

संप्रदाय की मान्यतानुसार परकीया भाव में ही सच्चे प्रेम का अनुभव प्राप्त हो पाता है किन्तु वल्लभ संप्रदाय में राधा को स्वकीया माना गया है। क्योंकि सूरदास ने राधिका और कृष्ण का विवाह कराया है।[13] किन्तु पंडित बलदेव उपध्याय ने कुछ विद्वानों की मान्यता के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि – "स्वकीया तथा परकीया शब्द सापेक्ष और संकुचित अर्थ के द्योतक हैं, इनमें वह अंतरंगा नहीं है, जो धर्म–धर्मी युक्त आत्मा में है। इसलिए, पुष्टि संप्रदाय में श्रीराधा को न स्वकीयात्वेन और परकीयात्वेन निर्देश किया है। यहाँ तो वे सर्वत्र सच्चिदानंद रसमय पुरुषोत्तम की मुख्य शक्ति स्वामिनी के रूप में उल्लिखित हुई है।"[14] यह ध्यान रखें कि सूरदास की राधा स्वकीया स्वीकारी गई है किन्तु उनकी प्रमुख रचना 'सूरसागर' में कुछ ऐसे पद उपलब्ध होते हैं जो, राधा के परकीयात्व की ओर संकेत करते हैं –

"मुरली सुनत भई सब बौरी, मानहुँ परिसिर मौंझ ठगौरी ।
जो जैसें सो तैसें दौरी। तन व्याकुल भई बिवस किसोरी ।।
छुटि सब लाज गई कुलकानी, सुत पति आरज पंथ भुलानी ।
लै लै नाम सबनि कौ टेरें। मुरली–धुनि सबही के नेरें ।
कोउ जेंवत पति ही तन हेरै। कोउ दधि में जामन पय फेरै ।।"[15]

इसी प्रसंग में एक दूसरा पद भी प्राप्त होता है –

"हरिजू वै सुख बहुरि कहाँ !
यदपि नैन निरखत वह मूरति फिरि मन जात तहाँ ।"[16]

दूसरे पद में जो बात कही गई है कि ये आँखें कृष्ण रूप–छटा को देख चुकी हैं, उसकी लावन्यमयता को पूरी तरह ग्रहण कर चुकी है, फिर भी वे उसे देखने के लिए वहाँ चली जाती हैं जहाँ कृष्ण हैं । यहाँ निश्चित रूप में गोपिकाएँ छिप–छिप कर यानी कल्पना चक्षु के माध्यम से कृष्ण का अनुपम लावन्यमयी रूप–कांति का दर्शन कर रही हैं। अतः इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि स्वकीया से परकीया प्रेम का स्थान ऊँचा है क्योंकि विरह में ही प्रेम का वेग अधिक होता है। आचार्य हजारी प्रसाद जी ने यह बताया है कि चैतन्यदेव भावमत्त होकर जब नाच उठते थे तो प्रायः यह श्लोक गाया करते थे –

" प्रियः सोऽयं कृष्णः सहचरि कुरुक्षेत्रमिलित –
स्तथाऽहं सा राधा तदिदमुभयोः संगमसुखम् ।

तथाप्यन्तं खेलन्मधुरमुरली पंचमंजुषे,

मनो में कालिन्दी पुलित विपिनाय स्पृहयति ।।"[17]

इस प्रकार की थी महाप्रभु चैतन्य की भक्ति । यहाँ ध्यान दें कि सूरदास ने भी कुरूक्षेत्र के प्रसंग में भावविह्वलित होते हुए चैतन्य महाप्रभु के जैसे भाव में कुछ पद लिखें हैं, जिससे उन पर महाप्रभु के प्रभाव का स्पष्ट चित्र परिलक्षित होता है । यहाँ यह बताना सही होगा कि उज्ज्वलनीलमणिकार ने अपने ग्रंथ के प्रथम अध्याय के सोलहवें श्लोक की टीका में लिखा है कि –"श्रीराधा जी कृष्ण की स्वरूपाह्लादिनी शक्ति हैं, इसलिए वे वस्तुतः स्वकीया ही है, परकीया नहीं ।"[18] इस संप्रदाय में राधा प्रेम के लिए परकीया है, परमार्थतः स्वकीया है। अतः राधा तत्व के आधार पर निश्चित रूप में दोनों संप्रदाय में द्वन्द्व परिलक्षित होता है। यहाँ 'चैतन्य चरितामृत' में इसी विरह से संबंधित एक पद मिलता है। जिसके समानार्थ वाला एक पद सूरदास कृत रचना में प्राप्त होता है –

"ये वा तुमि सखीगन विषादे वाउल मन;
कां रे पूछों के कहे उपाय;
कहा करों कहाँ जोंओं काहाँ गेले कृष्णपाओं;
कृष्ण बिनु प्रान मोर जाय।"[19]

अब देखिए सूरदास कृत पद–

"हरि बिछुरत फाट्यो न हियो ।
भयो कठोर ब्रज ते भारी यहाँ रहे अब कहाँ कियो।
बाँटि हलाहल सुनी मेरी सजनी औषधि ही न पियो।
मन बुधि गई सँभार न तन की कूडों दाँव दियो।
अब का करों कौन विधि मिलि है। परबस प्रान लियो।
निसि दिन रट़त सूर के प्रभु बिन कैसे परत जियो ।"[20]

उपर्युक्त दोनों के भावार्थ पर दृष्टिपात करने के पश्चात् यह सत्य सामने खुलकर आता है कि निश्चित रूप में सूरदास चैतन्य महाप्रभु से प्रभावित थे।

भक्ति के अंतर्गत जहाँ तक वैधी भक्ति और रागात्मिका भक्ति की बात है, कहा जाता है कि श्रीमद्भागवत, जिसे भक्ति का आधार ग्रंथ माना जाता है, इसके रचनाकार के वैधी भक्ति के निरुपण में लोक मर्यादा का महत्व ऊपर से ठूँसा हुआ–सा नज़र नहीं आता है ।

परंतु सूरसागर में जहाँ कहीं पर ऐसे पद मिलते हैं, वे प्रक्षिप्त से ही प्रतीत होते हैं। इस संदर्भ में डा. हरवंशलाल शर्मा ने यह कहा है कि सूरदास के स्वकीया भाव को प्राधान्य देने का प्रयत्न अस्वाभाविक–सा लगता है। उन्होंने यह दर्शाया कि "जिस प्रेम भाव का वर्णन सूरदास ने 'सूरसागर' में किया है वह पूर्णतया 'भक्तिरसामृतसिन्धु' और 'उज्ज्वलनीलमणि' के मेल का है । ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी भक्ति की पृष्ठभूमि तो चैतन्य संप्रदाय की है और साँचा वल्लभ संप्रदाय का।"[21] यहाँ यह सूचित करना यथार्थ होगा कि दीनदयाल गुप्त ने अपनी पुस्तक में सूरदास के साथ–साथ नंद दास, परमानन्द दास, चतुर्भुज दास तथा गोविन्ददास के कुछ पद परकीया–भाव के होने की बात कही है । किन्तु यह भी सत्य है कि वल्लभ संप्रदाय के दर्शन में वर्णित नायिका भेद अन्यपूर्वा, अनन्यपूर्वा तथा सामान्या[22] में से अन्यपूर्वा नायिकाओं के बारें में परकीयात्व का वर्णन उपलब्ध होता है। इसमें यह बताया गया है कि "अष्टछाप के भक्तों की मधुर रति का प्रबल रूप परकीया भाव की अपेक्षा मुग्धा गोपियों के पूर्वराग में, राधा–कृष्ण संयोग तथा स्वकीया गोपियों की विरह–दशा में अधिक प्रकट हुआ है।"[23] नंददास के परकीया भावना युक्त पद निम्नलिखित है, जिस में परकीया भाव के रस की उत्कर्षता की प्रशंसा उन्होनें की है –

"तजि तजि तिहि छिन गुनमय देह, जाई मिलीं करि परम सनेह।
यद्यपि 'जार वुद्धि' अनुसरी, परमानंद कंद रस भरी ।"[24]

नरेशचंद्र बंसल ने नंददास के परकीया रसोपासना के बारें में यह बताया है कि "परकीया रसोपासना का जितना स्पष्ट समर्थन नंददास द्वारा हुआ है, अष्टछाप के अन्य कवियों द्वारा नहीं हो पाया है।"[25] अगर नंददास की रचनाओं का अनुशीलन किया जाए तो निश्चित रूप में परकीया भाव की ओर उनका झुकाव देखने को मिलता है । उनकी रचना 'रासपंचाध्यायी' और 'सिद्धान्त पंचाध्यायी' में गोपियों का अर्धरात्रि में श्रीकृष्ण से वन–प्रदेश में मिलन, परकीया भाव का ही मिलन है। नंददास कृत 'भंवर गीत' में भी गोपियों का प्रेम परकीया भाव का पोषक सिद्ध होता है –

"ये सब प्रेमासक्त होइ रही लाज कुल लोपि।"[26]

दीनदयाल गुप्त ने भले ही नंददास कृज 'रसमंजरी' में वर्णित प्रेम में परकीया भाव मधुराभक्ति को स्वीकरा हो, किन्तु उनके उपलब्ध पदों में मुग्धा तथा स्वकीया गोपियों का ही अधिक चित्रण बताया है।[27] यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि हिन्दी के भक्ति साहित्य में राधा

अनन्यपूर्वा स्वकीया नायिका है किन्तु गौड़ीय वैष्णव साहित्य में यह परकीया ही है। अन्य गोपियों को, अवश्य ही कुछ को परकीया और कुछ को स्वकीया रूप में हिन्दी भक्तों ने माना है । इनमें धर्म, कर्म, लोभ, लाज, सुत और पति त्यागकर कृष्ण के पास भागने वाली गोपियाँ भी हैं। गोपी प्रेम एक निष्ठ प्रेम है। यह स्त्री–पुरुष का प्रेम होते हुए भी काम नहीं है। इस पर गौड़ीय दर्शनाचार्य कृष्ण दास ने बहुत जोर डाला है । नंददास की उक्ति भी इस के समभावयुक्त मिलती है –

"कृष्ण तृष्टि करि कर्म करै जो आन प्रकारा।
फल विभिचार न हौइ, हौइ सुख परम अपारा।।"[28]

नंददास, गोपियों को प्रथम काम–रस से युक्त बताते हैं, फिर वह कामरस शुद्ध प्रेम हो गया, यह भी कहते हैं।[29] अतः यहाँ उपर्युक्त बातों की ओर ध्यान आकर्षित करने का एक ही उद्देश्य है कि हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य में गोपी प्रेम संबंधी ऐसी उक्तियाँ स्फुट रूप से मिलती हैं जो, गौड़ीय दर्शन में वर्णित तथ्यों के समभाव वाले प्रतीत होती हैं । इसी तरह परमानंद दास ने भी कतिपय परकीयाभाव युक्त पदों की रचना की है:–

"मैं तो प्रीति श्याम सों कीनी ।
कोऊ निन्दों कोऊ बन्दों अब तो यह कर दीनी।
जो पतिव्रत तो था ढ़ोटा सों इन्हें समर्प्यो देह।
जो व्यभिचार नंद नंदन सो बाढ्यों अधिक सनेह।
जो ब्रत गह्यो सो और न भायो मर्यादा को भंग।
परमानंद लाल गिरधर को पायो मोरो संग।।"[30]

इस संबंध में अष्टछाप के अन्य कवि चतुर्भुज दास तथा गोविन्द स्वामी के दो–दो, तीन–तीन पद परकीयाभाव युक्त मिले हैं। इसका जिक्र दीनदयाल गुप्त ने अपनी पुस्तक में किया है। यह पद निम्न लिखित है।[31]

मोहन मोहिनी पढ़ि मेली,
मुख देखत तन दसा हिरानी को घर जाय सहेली।
काके मात–तात अरु भ्राता को पति नेह नवेली,
काके लोक लाज अरु कुल व्रत, को बन भँवति अकेली।
यहि ते कहति मूलमत तोसों एक संग नित खेली,

चतुर्भुज प्रभु गिरिधर रस अटकी श्रुति मर्यादा पेली।

(चतुर्भुजदास पद संग्रह से)

अब कहा करों मेरी आली री अँबियन लागेई रहत,
निसि दिन फिरति रूप रस माती आवे नहीं ग्रह काज करत।
जदपि मात पिता सुत ग्रह देषत तोहू न धीरज धरों मोहन बेनु सुनत।
गोविन्द प्रभु को हों जौलों न देखों आली, तौलों छिनु छिनु कैसे मेरे प्रान रहत ।।

(गोविन्ददास पद संग्रह से)

गौड़ीय संप्रदाय में 'राधा' को महाभाव की अधिकरिणी स्वीकारा गया है। इस ओर संकेत हम पहले कर चुके हैं। किन्तु यहाँ यह ध्यातव्य है कि 'महाभाव' की दो अवस्थाएँ मानी गई हैं – विप्रलंभ और संभोग । अतः अष्टछाप के जितने कवि हुए हैं, खास करके सूरदास ने अपनी रचना में उपरोक्त महाभाव की दोनों अवस्थाओं का वर्णन किया है। ऐसे तो सूरदास को वात्सल्यसिक्त तथा दांपत्यसिक्त रचना का सिद्धहस्त कवि माना जाता है । फिर भी उन्होंने अपने भ्रमरगीत में विप्रलंभ का अभूतपूर्व वर्णन एक सच्ची विरह नायिका के रूप में किया है।

वैसे यदि भारतीय भक्ति साहित्य वांङ्मय पर एक विहंगम दृष्टि ड़ाली जाए तो, यह देखने को मिलता है कि कवियों ने संयोग की अपेक्षा वियोग–श्रृंगार को अधिक महत्व दिया है। क्योंकि जहाँ संयोग में प्रिय के सान्निध्य से प्राप्त सुख हृदय की अनेक सात्विक वृत्तियों को तिरोहित किये रहता है, वहाँ वियोग उन्हें उद्‌बुद्ध कर भावों के प्रसार के लिए समस्त विश्व का क्षेत्र खोल देता है। अतः नरेशचंद्र बंसल जी यह मानते हैं कि ''चैतन्य संप्रदाय की परकीयोपासना के प्रभाव से ही अष्टछाप में विप्रलंभ का विशेष वर्णन हुआ है।''[32] महाप्रभु चैतन्य का विरह अतिव प्रसिद्ध है । वे सदा सर्वदा कृष्ण के विरह में आतुर रहते थे। उन्हें संसारके कण–कण में कृष्ण की मूर्ति दिखाई पडती थी । ठीक उसी प्रकार का भावमयी वर्णन हमें सूरदास की गोपियों के संदर्भ में 'भ्रमर गीत' में उपलब्ध होता है। इसीलिए डॉ हरवंशलाल शर्मा ने अपनी पुस्तक की भूमिका में यह स्वीकारा है कि ''गोपियों के चित्रण में सूर पर चैतन्य संप्रदाय का भी प्रभाव पड़ा है।''[33] गौड़ीय संप्रदाय के आचार्यो ने विशेषकर श्रृंगार के वियोग पक्ष का शास्त्रीय आख्यान किया है। इस संदर्भ में यह ध्यातव्य है कि सूरदास ने रूप गोस्वामी के विचारों को अपने पद में यथावत् स्थान दिया है। देखिए

'उज्ज्वलनीलमणि' का पद और सूरदास का पद । इससे हमारे कथन का आशय स्पष्ट हो पाएगा –

"न बिना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागौ विवर्धते ।।"[34]

अब देखिए सूरदास का पद –

"ऊधौ बिरहौ प्रेम करैं।
ज्यों बिनु पुट पट गहत रँग कौं, रंग न रसै परै।
ज्यौं घर दहै बीज अंकुर गिरि, तौ सत फरनि फरै।
ज्यों घट अनल दहन तन अपनौ, पुनि पय अमी भरै।"[35]

जहाँ तक गौड़ीय संप्रदाय में रस तत्व की बात है, तो इस तत्व का प्रभाव न सिर्फ वल्लभ संप्रदाय के कवियों पर पड़ा है बल्कि परवर्ती वैष्णव संप्रदायों पर भी परिलक्षित होता है। वल्लभ संप्रदाय के कवियों में इस मधुर भक्ति रस का वर्णन प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है । पहले कहा जा चुका है कि गौड़ीय वैष्णवों ने मधुर रस को शास्त्रीय भूमिका प्रदान की है। 'भाव' को रस की कोटि में बतलाकर उसके लोकोत्तरत्व का वर्णन किया है। इसलिए सूरदास के समकालीन आचार्य रूप–गोस्वामी को मधुर भक्तिरस की स्थापना हेतु 'उज्ज्वलनीलमणि, 'भक्तिरसामृत सिन्धु' जैसे महान ग्रन्थों की रचना करनी पड़ी थी। इस संबंध में मुख्य बात यह है कि 'उज्ज्वलरस' मधुररस का पर्यायवाची शब्द है, 'जो वस्तुतः श्रृंगार की चरम आध्यात्मिक परिणति है। 'उज्ज्वलनीलमणि' इस रस को 'भक्तिरसराट' कहकर चलता है –

"मुख्य रसेषु पुरा यः संक्षेपेणोदितो रहस्यत्वात् ।
पृथगेव भक्ति रसराट् स विस्तेरणोच्यते मधुरः ।।"[36]

जहाँ तक मधुरा रस या उज्ज्वल रस का संबंध वल्लभ संप्रदाय के साथ है, यह देखने को मिलता है कि नंददास ने अपनी कृति 'श्रीकृष्ण सिद्धान्त पंचाध्यायी' में 'उज्ज्वल रस' शब्द का प्रयोग किया है जो निम्न प्रकार है।[37]

जैसोई कृष्ण अखंडरुप चिद्रूप उदारा।
वैसोई उज्ज्वलरस अखंड़ तिन कर परिवारा।। (श्रीकृष्ण सिद्धान्त पंचाध्यायी, 91)
उज्ज्वल रस कौ यह सुभाव बाँकी छवि छावै।
बंक चहनि पुनि कहनि वंक अति रसहि बढ़ावै। (रास पंचाध्यायी, 1/71)

नंददास कृत 'रस मंजरी' का काव्य शास्त्रीय विवेचन करने के उपरांत डा. सच्चिदानंद चौधरी ने उस पर रूप गोस्वामी कृत 'भक्तिरसामृत सिन्धु' और 'उज्ज्वलनीलमणि' का स्पष्ट और असंदिग्ध प्रभाव दर्शाया है।[38] अगर गौड़ीय भक्ति के साधन पक्ष की बात करें, इस संप्रदाय में कीर्तन ही प्रमुख साधन रहा है। ऐसी बात नहीं कि अन्य आठ साधनों का महत्व इसमें नहीं है । पहले भी हम इस ओर विस्तार से सूचित कर चुकें हैं । पुनश्च यह कहते हैं कि महाप्रभु चैतन्य देव के स्व रचित 'शिक्षाष्टक' में, जिसमें महान आठ श्लोक हैं, महाप्रभु ने कीर्तन की बात पर जोर दिया है। यह निश्चित है कि "भक्ति के साधन पक्ष में श्री वल्लभाचार्य जी के संप्रदाय पर श्रीरूप गोस्वामी की भक्ति पद्धति का किसी हद में प्रभाव, श्री विट्ठलनाथ जी के समय में, अवश्य हुआ।"[39] यह तथ्य मिलता है कि वल्लभाचार्य जी ने नवधा भक्ति के कीर्तन साधन में नाम और लीला–कीर्तन के साथ वाद्यपूर्ण संगीत का भी समावेश कराया था और इस कीर्तन की आयोजना को श्री बिट्ठलनाथ जी ने और आगे–बढ़ाया । इस संदर्भ में अष्टछाप के परम ज्ञाता दीनदयाल गुप्त ने यह बताया है कि जहाँ अन्य वैष्णव संप्रदायों वाले सिर्फ कृष्ण लीला कीर्तन करते थे वहाँ महाप्रभु ने लीला कीर्तन के साथ–साथ कृष्ण नाम के कीर्तन का विशेष प्रचार गान और वाद्य के साथ किया। "संभव है, श्रीवल्लभाचार्य जी ने अथवा गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने गान और वाद्य की महत्ता, श्री चैतन्य महाप्रभु की प्रेरणा से ली हो।"[40]

अभी अगर थोड़े समय के लिए गौड़ीय संप्रदाय की दार्शनिकता की ओर मुड़ जाएँ तो यह देखने को मिलेगा कि कैसे गौड़ीय दर्शन में वर्णित जीव, माया आदि के दार्शनिक तत्वों का प्रभाव अष्टछाप के कवियों पर पड़ा नज़र आता है। पहले हम विस्तार पूर्वक जीव, माया आदिकों पर चर्चा कर आये हैं । पुनश्च स्वल्प संकेतों के रुप में यह बता देना उचित होगा कि गौड़ीय दर्शन में जीव को कृष्ण का दास माना गया है, किन्तु जीव इसे भूल बैठता है। इसी से माया उसका गला बांध लेती है। कृष्ण के भजन और गुरु–चरण–सेवन से यह माया जाल छूट जाता है और उसे कृष्ण चरण की प्राप्ति होती है। जीव कृष्ण की तटस्था शक्ति का प्रकाश है। ठीक इस प्रकार के दर्शनिक विचार युक्त पद सूरदास की रचना में देखने को मिलते हैं –

"सकल तत्व ब्रह्मांड देव पुनी माया सब विधि काल।।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण, सब है अंश गुपाल।।"[41]

(सूर सारावली)

नंददास ने भी स्पष्ट रूप से गौड़ीय मत के अनुरूप ही कथन किया है।[42]

तुम परमेस्वर सब के नाथ, बिस्व समस्त तिहारे हाथ।

तुम तैं हम सब उपजत ऐसैं, अगिनी तैं बिस्फुलिंग गन जैसें।।

अर्थात् व्यक्त अव्यक्त जो अनुपम विश्व है उसमें सब भूतों के तुम विस्तार हो । तुम सब के परमेश्वर और स्वामी हो । समस्त विश्व तुम्हारे हाथ है। तुमसे हम सब उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं जिस प्रकार अग्नि से स्फुलिंग उत्पन्न होते हैं।

यहाँ पर ध्यान रखें कि भले ही ऊपर प्रभाव पर की बात की गई हो, पर यहाँ यह निश्चित है कि अन्य वैष्णव तथा गौड़ीय वैष्णवों के दार्शनिक विचारों में अंतर भी है। जहाँ गौड़ीय वैष्णव दर्शन में जीव और ईश्वर में द्वैतता की बात की गई है वहाँ, अन्य वैष्णव कवियों ने जीव को ब्रह्म से भिन्न नहीं माना है। जहाँ तक माया से संबंधित बात है, इस संदर्भ में दोनों संप्रदायों के दार्शनिक सद्धान्तों में कुछ मिलती–जुलती बात नज़र आती है। विशेष रुप से अष्टछाप के अन्य कवियों की तुलना में सूरदास के कुछ माया से संबधित पद गौड़ीय दर्शन के प्रमुख व्याख्याता कृष्णदास कविराज से मिलते–जुलते परिलक्षित होते हैं।[43]

भक्ति के भेद के आधार पर भी कृष्णदास कविराज के पदों और सूरदास के पदों में समानता हैं। ध्यातव्य है कि कृष्णदास कविराज ने भक्ति के चार प्रकार, भक्त की विभिन्न भावनाओं के आधार पर बताये हैं। ये दास्य, सख्य, वात्सल्य और श्रृंगार हैं। वे कहते हैं कि ये चारों भाव चार प्रकार के भक्तों के आधार हैं। वे सब अपने–अपने भाव को श्रेष्ठ करके मानते हैं और उसी भाव से कृष्ण सुख का आस्वादन करते हैं –

"दास्य सख्य वात्सल्य आर जे श्रृंगार ।

चारि भाव चतुर्विधि भक्त इ आधार ।।

निज निज भाव सबे श्रेष्ठ करि माने ।

निज भावे करे कृष्ण सुख आस्वादने ।।"[44]

ठीक उसी तरह के समभावना युक्त पद सूरदास के हैं। सूरदास, कृष्णदास कविराज की तरह भक्ति के चार प्रकार मानते हैं किन्तु उनके नाम अलग दिये हैं –

"माता भक्ति चारि परकार।

सत रज तम गुन शुद्धा सार ।।"[45]

यहाँ पर यह सूचित करना उचित होगा कि 'प्रेमभक्ति' तत्व, जो गौड़ीय दर्शन का प्रमुख तत्व है, इसका प्रतिफलन हमें अष्टछाप के कवि सूरदास, नंददास आदिकों की रचनाओं में देखने को मिलता है । भले ही गौड़ीय दर्शन में वात्सल्य, सख्य, मधुर, दास्य और शांत भक्ति को स्वीकारा गया हो, मधुर भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना गया है और इसे प्रेम भक्ति कहा गया है। गौड़ीय आचार्यो के अनुसार वैसे तो सभी भावों की भक्ति अच्छी हैं। किन्तु प्रेम भक्ति सर्वश्रेष्ठ है। उसके बिना जगत् का कल्याण नहीं है –

"दास्य सख्य वात्सल्य श्रृंगार चारि रस।
चारि भावे भक्त जन कृष्ण तार वश।।
... ...
चिरकाल नाहि करि प्रेम भक्ति दान।
भक्ति बिना जगतेर नाहि अवस्थान।।"[46]

सूरदास और नंददास ने अपनी कृतियों में 'प्रेम भक्ति' का उल्लेख किया है। इस संदर्भ में सूरदास कहते हैं कि प्रेम भक्ति के बिना भक्ति नहीं मिलती और नंददास कहते हैं भगवान प्रेम से ही वश में हो पाते हैं। उनके उदाहरण द्रष्टव्य है –

"प्रेम भक्ति बिनु मुक्ति न होई।
नाथ कृपा करि दीजै सोई।।" (सूरसागर तृतीय स्कंध)

"ऐसे प्रभु बस होत जिहिं सुनहुँ प्रेम की बात।" (नंददास, दशम स्कंध, पृ–.326)

गौड़ीय दर्शन में 'प्रेमभक्ति' की सच्ची उपलब्धि 'गोपीभाव' से ही संभव बतायी गयी है। इसमें यह कहा गया हैं कि इस 'मधुर भक्ति' या प्रेमभक्ति की साधना का अन्य कोई उपाय नही है। गोपीभाव की रागानुगा भक्ति ही श्रेष्ठ है। इसी भाव से राधा–कृष्ण के चरणों की प्राप्ति हो पाती है –

"अतएव गोपी भाव करि अंगीकार। रात्रि दिन चिंते राधाकृष्णेर विहार।।
सिद्ध देह चिंति करे ताहिञि सेवन। सखी भावे पाय राधाकृष्णेर चरण।।
गोपी अनुगति बिना ऐश्वर्य ज्ञाने। भजि लेह नाहि पाय ब्रजेन्द्र नंदने।।"[47]

'अष्टछाप' के कवियों में सिर्फ नंददास कृत 'सिद्धान्तपंचाध्यायी' में गौड़ीय दर्शन के गोपीभाव की भक्ति से युक्त पद मिलते हैं। नंददास यह कहते हैं कि गोपीभाव से किये जाने वाला

प्रेम काम नहीं है और कृष्ण की तुष्टि के लिए जितने काम किये जाते हैं वे व्यभिचार नहीं हैं–

"कृष्न तुष्टि करि कर्म करै जो आन प्रकारा।।
फल विभिचार न हौइ, हौइ सुख परम अपारा।"[48]

अष्टछाप के मान्य कवि परमानंद दास की श्लाघनीय स्तुति सचमुच इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि गौड़ीय दर्शन के 'गोपीभाव' से परमानंद दास भी प्रभावित हुए हैं –

"ये हरिरस ओपी गोपी सब तिय तें न्यारी।
कमल नयन गोविन्द चंद की प्रान पियारी।
निरमत्सर जे संत तिनहिं चूडामनि गोपी।
निर्मल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी।
जे ऐसे मरजाद मोरि मोहन गुन गावैं।
क्यों नहीं परमानंद प्रेम–भगती–सुख पावैं।।"[49]

कहने का तात्पर्य यह है कि अष्टछाप के कवियों में गोपी प्रेम संबंधी ऐसी उक्तियाँ उपलब्ध होती हैं जो, गौड़ीय दर्शन की भावना से समानता रखती हैं। चाहे इसे गौडीय संप्रदाय का प्रभाव मान सकते हैं या इसे इन दोनों संप्रदाय की समानता भी माना जा सकता है।

यह पहले बताया जा चुका है कि गौड़ीय दर्शन की उपासना विधि में नाम स्मरण और कीर्तन पर ज्यादा बल दिया गया है। महाप्रभु ने स्वयं संकीर्तन को ही प्रमुखता दी है। उनका मानना है कि संकीर्तन से ही भक्त के मन में भगवत भक्ति का उदय हो सकता है। हमने यह भी सूचित किया है कि 'श्रीमद्भागवत' ही भक्ति का आधार ग्रंथ है और महाप्रभु चैतन्यदेव प्रमुख रूप से श्रीमद्भागवत से प्रभावित थे। 'श्रीमद्भागवत' में ही हरिनाम स्मरण को इस कलिकाल के लिए प्रमुख बताया गया है। किन्तु यह ध्यातव्य है कि महाप्रभु चैतन्यदेव ने जिस रूप में इस हरिनाम स्मरण तथा कीर्तन को भक्ति के लिए श्रेष्ठ बताया है वैसा उनसे पूर्व में किसी ने भी नहीं बताया था। चैतन्यदेव के बाद हरिनाम स्मरण तथा कीर्तन की बात अन्य संप्रदायों में भी चल पड़ी और इसे सबने प्रमुखता दी। इस संदर्भ में निश्चित रूप में यह कहा जा सकता है कि इसका प्रभाव कुछ न कुछ रूप में अष्टछाप के कवियों पर पड़ा है। इसका संकेत 'सूरसागर' तथा अन्य अष्टछापी कवियों की रचनाओं में दृष्टिगत होता है। सूरदास 'सूरसागर' में यह उपदेश देते हैं कि जिस प्रकार हरि चरणों की

महिमा अपार है उसी प्रकार हरिनाम की महिमा भी अपार है। इस नाम का भरोसा इतना भारी है कि जो प्रेम से नाम लेते है, वह सब सुखों का अधिकारी हो जाता है। इस संसार में हरि नाम ही आधार है। इस कलिकाल में और कुछ विधि–विधान है ही नहीं । वे कहते हैं कि "अब तुम नाम गहौ मन नागर।"[50] और यह भी कहते फिरते हैं कि –

"हरि हरि, हरि हरि सुमिरन करौ।
हरि चरनारबिन्द उर धरौ।।" (सूर सागर, 1/224)
हरि हरि सुमिरौ सब कोइ।
हरि हरि सुमिरत सब सुख होइ।।" (सूर सागर 2/5)

अंतत जहाँ तक वल्लभ संप्रदाय पर गौड़ीय दर्शन के प्रभाव की बात है इसे अंतिम रूप देने से पहले डा. नरेशचन्द्र बंसल जी से प्रदत्त वल्लभ संप्रदाय के चूडान्त विद्वान और गंभीर अन्वेषक दो विद्वानों से लेखक को प्राप्त दो पत्र का संदर्भ काफी परिलक्षित होता है। इन दो विद्वान, डॉ. गोवर्धननाथ शुक्ल और आचार्य के. का. शास्त्री से प्रेषित पत्र का कुछ अंश हमारे विषय को ठोस रूप देने के लिए नीचे प्रदत्त है [51] – "सच्ची बात तो यह है – जिसे वल्लभ संप्रदाय के कट्टर अनुयायी स्वीकार करने में हिचकिचाते हैं – कि स्वयं आचार्य महाप्रभु (वल्लभ) भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य से प्रभावित हुए हैं। आचार्य वल्लभ का राधाष्टक, परिवृढ़ाष्टक चैतन्य के प्रभाव का परिणाम है।" तथा आचार्य के..का. शास्त्री जी यह बताते हैं कि – "वल्लभ संप्रदाय और गौड़ीय संप्रदाय में आपस में क्या विनिमय हुआ इस विषय में मैंने कोई खास शोध नहीं किया है; संभवतः श्री गुसाई जी पर असर होना शक्य है।"

2 – निम्बार्क संप्रदाय के कृष्णभक्ति काव्य और गौड़ीय संप्रदाय

निम्बार्क संप्रदाय सबसे पुराना संप्रदाय माना जाता है।[52] यह निश्चित रूप से गौड़ीय संप्रदाय से पहले का संप्रदाय है। हम यह पहले बता चुके हैं कि निम्बार्क मत प्राचीनता की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कतिपय विद्वानों ने तो निम्बार्काचार्य को सबसे प्राचीन माना है और उनके दार्शनिक विचारों की गंभीरता देखकर उन्हें भक्ति संप्रदायों का अग्रणी मननशील आचार्य ठहराया है। इनके आविर्भाव का समय बारहवीं शताब्दी का अंत या तेरहवीं शताब्दी का प्रारंभ माना जाता है। निश्चित रूप से यह महाप्रभु चैतन्यदेव से तीन सौ साल पहले का समय है। तब हम यह कैसे कह पायेंगे कि वे महाप्रभु से प्रभावित हुए होंगे।

इस संबंध में दूसरी बात यह है केशव काश्मीरी, जो चैतन्य महाप्रभु के दीक्षा गुरू थे, निम्बार्काचार्य के शिष्य थे। यह तथ्य भी प्राप्त होता है कि निम्बार्क संप्रदाय के विकास में केशव काश्मीरी ने अहम् भूमिका निभाई थी । इसके बारे में प्रभुदयाल मीतल ने यह बताया है कि "श्री केशव काश्मीरी भट्ट जी का मथुरा के मुसलमान काजी से जो संघर्ष हुआ और उसमें उनको जो अपूर्व सफलता प्राप्त हुई, उससे उनके यश के साथ ही साथ निम्बार्क संप्रदाय के प्रभाव एवं प्रसार में भी वृद्धि हुई होगी।"[53] उन्होंने यह बताया है कि केशव काश्मीरी के शिष्य श्री भट्ट जी ने सर्वप्रथम ब्रजभाषा में काव्य रचना की और नवधा भक्ति में माधुर्यभाव को प्रमुखता प्रदान की थी। अगर इन्हें ब्रज का प्रथम निम्बार्क संप्रदायी आचार्य भी कहा जाए तो असंगति नहीं होगी। वस्तुतः श्री भट्ट जी से ही इस संप्रदाय का ब्रज से घनिष्ठ संबंध स्थापित होता है और उनके यशस्वी शिष्य श्री हरि व्यासदेव जी से निम्बार्क संप्रदाय के वास्तविक सांप्रदायिक एवं भक्तिमार्गीय स्वरूप का निर्माण होता है।[54] अंततः मीतल जी ने निम्बार्क संप्रदाय के इतिहास का आरंभ हरिव्यास देव जी से माना है। पुनः सूचना योग्य है कि केशव काश्मीरी के शिष्य श्रीभट्ट ने प्रथम बार ब्रजभाषा में काव्य रचनाकर ब्रजरस का गान किया था। उनके शिष्य हरिव्यास जी ने 'महावाणी' की रचना कर इस ब्रज रस का मान की वृद्धि की। [55] डा. नारायणदत्त यह मानते हैं कि निम्बार्क संप्रदायाचार्य श्री देवाचार्य जी के सुंदर भट्ट और ब्रजभूषण देव नाम के दो शिष्य थे। इनमें से सुन्दर भट्टजी की शाखा के आचार्य आगे चलकर हरिव्यासी कहलाए और ब्रज भूषण देव जी की शाखा के आचार्य हरिदासी कहे जाने लगे।[56] इनके जन्म के बारे में यह प्रमाण मिलता है कि ये सूरदास, कुंभनदास, स्वामी हरिदास, हित हरिवंश तथा गोस्वामी विट्ठल नाथ के समकालीन थे।[57] तब यह निश्चित है कि जब गोस्वामी विट्ठल तथा वल्लभाचार्य, महाप्रभु चैतन्यदेव से तथा गौड़ीय दर्शन से प्रभावित हुए हैं तब हरिराम व्यास भी प्रभावित हुए होंगे।

हरिदास जी द्वारा स्थापित 'सखी संप्रदाय' को निम्बार्क संप्रदाय की एक शाखा के रूप में माना जाता है। इस संप्रदाय के भक्ति तत्व तथा उपासना मार्ग में परस्पर प्रेम तत्व रूप श्रीश्यामा–कुंजबिहारी के नित्य विहार की मान्यता है। पं. बलदेव उपाध्याय ने हरिदासजी के बारे में यह लिखा है कि – "स्वामी हरिदासजी प्रथमतः निम्बार्क मत के ही अनुयायी थे, परन्तु भगवत्प्राप्ति के लिए गोपीभाव को एकमात्र उन्नत साधन मानकर उन्होंने इस स्वतंत्र

मत की प्रतिष्ठा की।"[58] डा. नारायण दत्त ने भी यह स्पष्ट किया है कि "स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्तित हरिदासी शाखा संप्रदाय आगे चलकर कई प्रमुख परंपराओं में विकसित हुआ तथा स्वामी हरिदासजी के पश्चात् उनकी परंपरा अन्य निम्बार्कियों से कुछ पृथक् सी हो गई।[59] यद्यपि इस संप्रदाय के वैष्णवों ने वेदांत के किसी विशिष्टवाद के प्रचार प्रसार में अपना समय नहीं बिताया, प्रत्युत वृन्दावनचंद्र की सखीभाव से उपासना ही उनके साधन का एक मात्र लक्ष्य था।[60] अंततः बलदेव उपाध्याय ने निम्बार्क संप्रदाय को माधुर्य भाव का उपासक माना है।[61] और 'वैष्णव साधना' परिच्छेद में उन्होंने 'गोपीभाव', 'रस साधना' और 'उपास्य तत्व' शीर्षकों में गोपी भाव पर अपने गंभीर विचार प्रकट किये हैं । उन्होंने स्पष्ट रूप में गोपी भाव के बारें में यह लिखा है कि –"गोपी भाव इस साधना की उच्चतम कोटि का नाम है . . . गोपी भाव स्त्री सुलभ बाह्यवेश के ऊपर आश्रित नहीं होता प्रत्युत एक उदात्त आंतरिक भाव की संज्ञा है।"[62] यह सर्वविदित है कि गौड़ीय दर्शन की भक्ति पद्धति में गोपीभाव की भक्ति को श्रेष्ठ माना गया है। इस संदर्भ में कृष्णदास कविराज ने 'चैतन्य चरितामृत' में बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। और कहा है कि गोपीभाव में काम वासना की भावना नहीं रहती है बल्कि श्रीकृष्णचन्द्र को प्रसन्न करने की भावना भरी रहती है –

"आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा, तार नाम काम
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा, धरे प्रेम नाम।
– – – – – – – – – – – – – –
आत्म दुःख सुख गोपी न करे विचार।
कृष्ण सुख हेतु करे सब व्यवहार।"[63]

इस भाव भूमि पर यह कहना स्वाभाविक हो जाता है कि गोपीभाव का जैसा सुन्दर तथा सर्वागंपूर्ण वर्णन गौड़ीय संप्रदाय में हुआ है, शायद वैसा वर्णन और किसी संप्रदाय के भक्ति दर्शन में न हुआ होगा। गोपीभाव ही भगवान कृष्ण की प्राप्ति का सच्चा साधन है। इसका पुष्ट प्रमाण हमें राय रामानन्द और चैतन्य महाप्रभु की चर्चा से उपलब्ध होता है। राय रामानंद ने सखी भाव या गोपीभाव को ही उत्कृष्ट मार्ग बताया है। यह ध्यान रहे कि सखी भाव और गोपीभाव, एक ही भाव के दो नाम हैं।[64] गौड़ीय दर्शन तत्व में गोपियों के दो वर्ग प्राप्त होते हैं – सखी और मंजरी। इस संदर्भ में हमने पूर्व अध्याय में विस्तार से बात की है। यहाँ यह स्मरणीय है कि मंजरी, सखी से अवस्था में छोटी होती है और उन्हें राधा–कृष्ण की

अंतरंग सेवा का अधिक अधिकार होता है। डा. शरण बिहारी गोस्वामी ने यह स्पष्ट किया है कि –"सखी, मंजरी की प्रमुख चर्चा गौड़ीय संप्रदाय में हुई है और बाद में निम्बार्क संप्रदाय में इसका ग्रहण हुआ ज्ञात होता है।"[65] अतः निम्बार्क संप्रदाय के भक्ति तत्व के साथ जहाँ तक गोपीभाव का संबंध है उस संप्रदाय के कविगण निश्चित रूप में गौड़ीय दर्शन के गोपी तत्व से प्रभावित हुए होंगे।

निम्बार्क संप्रदाय की मूल विचार–धारा ऐश्वर्य और माधुर्य को समाहित कर अग्रसर होती है। यद्यपि श्रीभट्ट जी के समय से युगल किशोर की माधुर्य परक लीलाओं पर अधिक बल रहा है। 'महावाणी' के काल में सखीभाव इस संप्रदाय में प्रधान हो गया था। निम्बार्क संप्रदाय में जहाँ तक 'नित्य विहार' तथा 'निकुंज लीला' की बात है, यह गौडीय दर्शन का प्रभाव ज्ञात होता है। बलदेव उपाध्याय ने यह बताया है कि श्रीभट्ट जी के शिष्य हरिव्यास देव जी का प्रौढ़ काव्य 'महावाणी' निकुंज लीला का महाकाव्य है – एकदम सरस, प्रौढ़ अंतरंग अनुभूति से उद्भासित तथा भाव–तारल्य से तरलायित। इनकी दृष्टि में राधा–कृष्ण की अभिन्नता, निकुंज लीला में अपृथकता जल एवं तरंगों के संबंध के समान है; सदा एक साथ मिला हुआ, अभिन्नरूप –

"जलतंरग ज्यों नैंन में वारे रहे समोय।
प्रेम पयोधि परे दोऊ पल न्यारे नहि होंय।।
प्रेम पयोधि परे दोऊ प्यारे निकसत नाहिंन कबहूँ रैन दिन।
जल तरंग नैंनन तारे ज्यों न्यारे होत न जतन करौ किन।।"[66]

निम्बार्क संप्रदाय के एक अन्य कवि रूपरसिक देव जी ने भी 'नित्यविहार पदावली' में निकुंज लीला का सरस वर्णन किया है। अगर गौर करें तो इन पर भी गौड़ीय दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है –

"स्यौंम घन, उमंगि उमँगि इत आवै।
क्रीट मुकुट कुंडल पीताम्बर, मनुदामिनि दर सावै।।
मोतिन माल लसत उर ऊपर, मनु बग पॉति लखावै ।।
मुरली गरज मनोहर धुनि सुनि सुवन मोर सचुपावै ।।
हम पर कृपा करी हरि मानों नीर–नेह–झर लावै।
'रुप रसिक' यह शोभा निरखत, तन–मन–नैन सिरावैं।।"[67]

इस संप्रदाय के अन्य कवियों के काव्य में रस की अभिव्यंजना पूरी मात्रा में लक्षित होती है। महाकवि बिहारी तथा घनानंद भी इसी संप्रदाय के अंतर्गत माने जाते हैं ।[68] बिहारी और घनानंद हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल के कवि माने जाते हैं। बिहारी जी को लेकर कोई द्वन्द्व नहीं दिखाई पड़ता है किन्तु घनानंद को लेकर द्वन्द्व है। क्योंकि 'घनानंद' के नाम के अनेक कवि हुए हैं। ध्यातव्य है कि चैतन्य संप्रदाय में आनंदघन हुए थे। जिसका पुष्ट प्रमाण चैतन्य संपद्राय के अनुसंधाता प्रभुदयाल मीतल जी ने दिया है। इस संदर्भ में यह बताना उचित होगा कि 'घनानंद' के कवित्तों के संकलन कर्ता श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्रजी ने चैतन्यदेव से आनंदघन के मिलने का संवत् 1563 लिखा है। किन्तु मीतलजी ने इस कालक्रम को सही नहीं माना है।[69] जो भी हो, मीतल जी ने आनंदघन के नाम से बहुसंख्यक पद मिलने की बात कहीं है। किन्तु वे सुजान प्रेमी घनानंद के माने जाते हैं। ऐसे 1057 पदों का संकलन विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने किया है। उनके अनुसार समस्त पद सुजान प्रेमी घनानंद के हैं। दूसरी बात इस संदर्भ में यह है कि विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने यह स्पष्ट रूप में लिखा है कि घनानंद निम्बार्क संप्रदायी थे।[70] हाँ, यह सही बात हो सकती है किन्तु उनके पद में चैतन्य देव की वंदना का आभास मिलता है –

"श्री चैतन्य दयानिधि धीर।
कलि कालीन मलीन दीन जन, पावन करन परम गंभीर।।
पुरन चंद नंदनंदन कौ उदै, सदा उमगऩ की भीर।
बोहित नाव चढ़ाये बहुजन, प्रेम मगन करि पठये तीर।।
भाव–तरंग अभंग–भंग गति, महा मधुर रस रूप सरीर।
निज जन रतन जाल युत राजत, धुन–हुँकार उसाँस समीर।
त्रिविध ताप तें जरे जीव जे, सीतल किये परस पद–नीर।
करुना दृष्टि वृष्टि सों सींचे, जय–जय–जय 'आनंदमुदीर।।'"[71]

अतः उपर्युक्त पद प्रमाण स्वरुप होने के पश्चात्, यह कहा जा सकता है कि निश्चित रूप में घनानंद गौड़ीय दर्शन से प्रभावित थे। कहते हैं कि ये पहले अत्यंत श्रृंगारी थे और सुजान नामक वैश्या से प्रताड़ित होने के पश्चात् उनके मन में वैराग्य की भावना आ गयी। अगर भक्ति के संदर्भ में गौर करें तो यह कोई नई बात नहीं है। श्रृंगार में भक्ति है और भक्ति में श्रृंगार । भक्त के मन में भक्ति उत्पन्न होने से श्रृंगार समाप्त नहीं हो जाता बल्कि श्रृंगार में

स्थित कामभाव का उदात्तीकरण हो जाता है। घनानंद के सांथ भी ऐसा ही हुआ था। भले ही वे श्रृंगारी थे; आखिर थे तो एक सच्चे प्रेम के पुजारी । अपने सच्चे प्रेम के खातिर उसने कृष्ण का वही 'सुजान' नाम रख लिया था। और वृन्दावन को अपनी भक्ति का विशिष्ट स्थान मान लिया था। उन्होंने अपने कवित्त में विरह का अनुपम वर्णन किया है । इन विरह पदों से गौड़ीय दर्शन के तत्वों की झलक मिल पाती है। संभव हो, वह वृन्दावनस्थ गौड़ीय गोस्वामियों से प्रभावित हुए हों। इसीलिए हम यह कह पाते हैं कि 'घनानंद' ने राधा को इतना प्रमुख माना है और उनका गुणगान किया है । प्रमाण हेतु घनानंद का निम्नलिखित पद द्रष्टव्य है –

"राधा राधा रटि राधा राधा रटि
मेरी रसना रसीली भई।
ज्यौं ही ज्यौं पीवति या रस कौं
त्यौं त्यौं प्यास नई।
ब्रज जीवनि की परम सजीवनि
सो निज जीवन जानि लई।
'आनंदघन' उमंग–झर लाग्यौ
ह्वै रही नाम मई।।"[72]

'घनानंद' के हृदय में राधा सर्वदा विराजित थीं – भीतर तथा बाहर और राधा के अतिरिक्त उनके जीवन का आधार भी अन्य कुछ न था। निश्चित रूप में उपर्युक्त पद में तन्मयता की पुकार भरी हुई, जो एक सच्चा प्रेमी अपनी प्रियतमा के लिए ही कर सकता है। दूसरी बात यह कही जा सकती है घनानंद 'राधा' नाम की क्यों रटन कर रहे हैं, कृष्ण नाम को क्यों नहीं ? इस संदर्भ में स्मरणीय है कि राधा कृष्ण की आह्लादिनी शक्ति है । राधा और कृष्ण एक हैं । अतः राधा की प्राप्ति में श्रीकृष्ण की प्राप्ति है । यही गौड़ीय दर्शन का प्रमुख तत्व है। स्मरणीय है कि सूरदास ने अपने 'भ्रमरगीत' में गोपियों की विरहानुभूति का एक अनूठा वर्णन किया है। इसे विद्वानों ने गौड़ीय दर्शन के मधुर रस (उज्ज्वल रस) का प्रभाव बताया है। हमें घनानंद में भी इस प्रकार गोपियों का विरहात्मक वर्णन उपलब्ध होते हैं, जो गौड़ीय गोस्वामियों के प्रभाव के कारण हो सकता है–

"चकोरी वापुरी ये दीन. गोपी।
अहो ब्रजचंद क्यों पहिचान लोपी ।।
छबिले छैल तुम को पीर काकी।
बिथा की कथा से छतियॉ जो पाकी।।
सजीवन स्यांवरे कब धौं ढरोगे।
मेरे साधा विरह बाधा हरोगे।।"[73]

कहते हैं विरह ही प्रेम को सशक्त बनाता है। विरह में प्रेमी को अपनी प्रिय वस्तु की छवि चारों तरफ दिखाई देती है। संयोग में जो एक था वियोग की तन्मयता ने उन्हें चारों तरफ अनेक बना दिया है। वियोग में मिलन की आतुरता वढ़ जाती है। प्रिय की एक–एक चीज में उसका प्रत्यक्ष दर्शन हो पाता है।

बिल्कुल इस प्रकार का था महाप्रभु चैतन्यदेव का विरह । राधावल्लभा के विरह में हर पल उनके नयनाम्बु में अश्रु उर्मियों की भरमार थी। घनानंद ने भी ऐसे पद रचे हैं। जिनमें गोपियाँ अपने विरह की ज्वाला को सहन न कर पाने के कारण पवन से अपने प्रियतम कृष्ण की पदरज लाकर देने के लिए अनुरोध करती हैं। यह ध्यान रखें कि भक्त के लिए अपने भगवान की पदरज ही श्रेष्ठ होती है। निश्चित रूप में घनानंद एक सच्चे भक्त के उदाहरण हैं –

"ए रे वीर पौन! तरो सबै ओर गौन बीरो,
तोसों और कौन मनै ढरकौंहीं बानि दै।
जगत् के प्रान, ओछे–बडे सों समान, घन–
आनंद निधान, सुखदान दुखियानि दै।।
जान उजियारे गुन भारे अंत मोहीं प्यारे,
अव ह्वै अमेही बैठे पीठि पहिचानी दै ।।
बिरह विथाहि मूरि ऑखिन में राखौं पूरि,
धूरि तिन पायन की हा हा! नेकु आनि दै।।"[74]

भगवान कृपा ही भक्ति का मूल है। बिना भगवत् कृपा से भगवान के सान्निध्य की प्राप्ति नहीं होगी। इसके मूल में आत्म समर्पण ही प्रमुख होता है। महाप्रभु ने अपने शिक्षाष्टक में लिखा है –

"अयि नंदतनूज किंकरं पतितं मां विषमें भवाम्बुधौ।
कृपया तव पादपंकजस्थित धूलीसदृशं विचिंतय।।"[75]

उपर्युक्त पद में महाप्रभु कहते हैं कि हे नंदसुत ! इस विषम संसार में पड़े हुए मुझ सेवक को कृपा करके अपने चरण कमलों पर पड़ी हुई धूलि के समान समझो । अब देखिए ठीक उसी प्रकार की कृपा की बात घनानंद ने कही है –

"मो–सो अनपहिचानि कों, पहिचानै हरि कौन ?
कृपा काम मधि नैन ज्यों, त्यों पुकारि मधि मौन।।
हरि तुमसों पहिचानि कौ, मोहि लगाव न लेस।
इहि उमंग फूल्यो रहौं बसौ कृपा के देस।।"[76]

नरेशचंद्र बंसल ने इस संदर्भ में यह कहा है कि "चैतन्य मतानुयायी हरिराम व्यास स्वयं हरिदास जी के रास परिकर के अंतरंग सहचर थे। उनकी ब्रजरस भावना का प्रभाव स्वामी हरिदास पर इतना ही ज्ञात होता है कि उन्होंने 'निकुंज लीला' में इसका संगुम्फन किया है।"[77] उन्होंने यह माना है कि श्री भट्टजी के 'युगल शतक' का रसतत्व गोपीभाव से भिन्न नहीं है। श्रीभट्ट जी ने जिन विषयों का निर्वचन किया है वे चैतन्य संप्रदाय की रस–पद्धति के सर्वथा अनुकूल हैं। इसे पुष्ट करने के लिए निम्न लिखित उदाहरणों की तुलना आवश्यक है।[78]

"रे मन वृन्दाविपिन विहार।
यद्यपि मिलै कोटि चिंतामणि तदपि न हाथ पसार।
विपिन राज सीमा के बाहिर हरि हू को न निहार।
जय 'श्रीभट्ट' धूली–धूसर तन, यह आशा उर धार ।।
(श्रीभट्ट का युगलशतक, पृ. 45–46)

तुलना कीजिए–

"मिलन्ति चिंतामणि कोटि कोटयः
स्वयं बहिर्दृष्टिमुपैति वा हरिः।
तथापि वृन्दावन धूलि–धूसरं–
न देह मन्यत्र कदापि यात्रु में।
(वृंदावनमहिमामृतम्,प्रबोधानंद सरस्वती, पृ .259)

अंततः उपर्युक्त तुलना के उपरांत बसंल जी ने श्रीभट्‌टजी का काल परवर्ती ठहराया है और कहा है कि स्वयं भट्‌टजी, प्रबोधानंद सरस्वती से स्पष्टतः प्रभावित हैं । क्योंकि प्रवोधानंद सरस्वती में जिस रूप में वृन्दावन की निष्ठा थी उसी तरह की निष्ठा श्रीभट्‌ट में नहीं थी।[79] इस मत को और अधिक पुष्ट करने के लिए अष्टछाप के प्रख्यात संगीतज्ञ–कवि गोविन्द स्वामी द्वारा रचित एक 'हिंडोल' का उदाहरण बंसलजी ने दिया है और कहा है कि "अष्टछापी कवि गायक गोविन्द स्वामी की रचना की छाया पर श्रीभट्‌ट जी के 'युगल शतक' के पद निर्मित होने का प्रमाण मिलता है।[80]

बंसल जी ने निम्बार्क संप्रदाय पर गौड़ीय संप्रदाय के प्रभाव के कम में यह बताया है कि हरिव्यास देवाचार्य की 'महावाणी' में रूप गोस्वामी कृत 'राधाकृष्ण गणोद्‌देश दीपिका' का स्पष्ट प्रभाव है। उन्होंने यह भी बताया कि 'महावाणी' के 'सिद्धान्त सुख' में अनेक स्थानों पर गोड़ीय दर्शन – 'अचिंत्य तत्व' का उल्लेख है।[81]

"अद्वय इकरस अद्‌भुत अव्यय आनंदमयी अचिंत अभंग।
परम धाम अभिराम पुरंदर सुन्दर स्याम सहचरिन संग।। 1
उद्वंत द्वय बहु भेद विसेषण आदि अयास अचिंत अनंत ।
श्री हरिप्रिया सहज परिकर सह करत विहार कामिनी कंत।। 2
(दोनों उदाहरण श्री महावाणी सिद्धान्त सुख–पृ.289 और 297 पर हैं)

'माधुर्य रस' और 'आह्लादिनी शक्ति' का उल्लेख भी 'महावाणी' से उपलब्ध होने की बात बंसल जी ने बतायी है। तब यह निश्चत है कि 'महावाणी' पर 'भक्तिरसामृत सिन्धु' और 'उज्ज्वल नीलमणि' का प्रभाव परिलक्षित होना स्वाभाविक हो जाता है।[82] हरिव्यास देव कृत एक अन्य भक्ति तत्व पूर्ण ग्रंथ 'सिद्धांत रत्नांजलि' पर 'भक्ति रसामृतसिंधु' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' का प्रभाव वसंल जी ने डॉ देवी. शंकर अवस्थी के मत के आधार पर बताया है। अंततः इस संदर्भ में यह देखा गया है कि अनेक आयार्च, विद्वानों ने 'महावाणी' को परवर्ती रचना मान है और उस पर रूप गोस्वामी जी का दार्शनिक प्रभाव बताया है । अंततः निम्बार्क संप्रदाय पर गौड़ीय संप्रदाय के प्रभाव को रेखांकित करते हुए यह कहा जा सकता है कि –"केशव काश्मीरि भट्‌ट और श्रीचैतन्य देव के मिलन की बार्ता को निम्बार्क और गौड़ीय दोनों संप्रदायों में प्रसिद्ध तथ्य के रूप में ग्रहण किया जाता है।[83] यह भी कह

सकते हैं कि भले ही चैतन्य पूर्व निंबार्क संप्रदायी गौड़ीय संप्रदाय से प्रभावित न हुए हों किन्तु बाद के कवि अवश्य प्रभावित हुए हैं ।

जहाँ तक निम्बार्क संप्रदाय के साथ सखी संप्रदाय का संबंध है, पहले इस ओर स्वल्प संकेत किया जा चुका है और बताया गया है कि उस पर गौड़ीय दर्शन का सर्वोपरि प्रभाव है। क्योंकि काल की दृष्टि से हरिदास जी चैतन्य महाप्रभु के बाद के हैं। ''निजमत सिद्धांत' में श्री चैतन्य महाप्रभु के वृन्दावन आगमन के समय और स्वामी हरिदास जी से मित्रवत् मिलने का कथन है । इसमें भी गौड़ीय गोस्वामी रूप और सनातन के समकालीन होने की बात कही गई है।[84] अतः वास्तविकता यह है कि हरिदास जी की भक्ति–पद्धति निश्चिय रूप में गौड़ीय गोस्वामियों से प्रभावित हुई होगी । आइए अब उनके भक्ति सिद्धांत की ओर चलें।

स्वामी हरिदास जी के संप्रदाय में भक्ति रस की प्रधानता है। श्रीकुंज विहारी–विहारिणी के नित्य विहार की उपासना इस संप्रदाय में इतनी अनन्यता से की जाती है कि शायद ही इस तरह की उपासना और किसी ने की हो। इनकी भक्ति गौड़ीय संप्रदाय की तरह एकनिष्ठ भक्ति है, जिसमें कर्म और ज्ञान का स्थान नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह रागानुगा भक्ति है। ''यहाँ प्रेम ही साधन है और प्रेम ही साध्य ।''[85] श्री नित्य विहारी से हित करना ही भक्ति का स्वरूप है। उनसे एक बार प्रेम हो जाने पर संसार के प्रेम से मन फीका हो जाता है। हरिदास जी यह कहते हैं कि इस प्रकार भक्ति से ही अपना सर्वोत्कृष्ट निर्वाह हो सकेगा ऐसा जानना चाहिए –

''हित तौ कीजै कमलनैंन सों,
जा हित के आगै और हित लागै सब फीकौ,
कै हित कीजै साधु संगति सों,
ज्यों कल्मष जाय जीकौ।
हरि कौ हित ऐसौ जैसौ रंग मजीठ ।
संसार हित रंग कसूँभ दिन दुती कौ।
कह श्री हरिदास हित कीजै विहारी सौं।
ओर निवाहु जान जीकौ।।''[86]

(स्वामी हरिदास, अष्टादश सिद्धान्त के पद)

हरिदास जी बहुल मात्रा में महाप्रभु चैतन्यदेव की तन्मयतामय भक्ति से प्रभावित हुए हैं। जिस प्रकार समय–समय पर चैतन्य देव श्रीकृष्ण प्रेम महोदधि में डूब जाते थे, जिससे उनकी सुध–बुध खो जाती थी, उसी प्रकार की तन्मयतामय भक्ति की झलक हरिदास जी में पाई जाती है । उन्होंने भी भक्ति को प्रेम की उदात्त स्थिति माना है और यह कहा है कि भक्त के चारों ओर प्रेम छाया हुआ है। यहाँ प्रेम ही साधन है और साध्य भी –"प्रेम प्रेम ही पाइयै तौ करैं प्रेम कौ अंग।"[87] यह प्रेम– भक्ति निश्चित रूप में ज्ञान से ऊँची है। भक्ति यदि सिद्धि है तो ज्ञान और विवेक साधन हैं –

"भक्ति बिना नहिं सिद्धि है साधन ज्ञान विचार।
तुस कुटे छाले परैं छूटै नहिं संसार।।"[88]

अब देखिए हरिदास जी ने भी वैसी ही बात कही है जैसी बात कृष्णदास कविराज ने कही थी। कविराज जी ने भक्ति के संदर्भ में यह कहा था कि –

"आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा, तार नाम काम
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा, धरे प्रेम नाम।"

अर्थात् कृष्ण को प्रसन्न रखने हेतु किया गया कर्म ही प्रेम है और हर सच्चे भक्त की इच्छा रहती है। ठीक उसी प्रकार की बात हरिदास जी ने कहीं है कि भक्त की चाह केवल यही होनी चाहिए कि किस प्रकार हरि को प्रसन्न करूँ। हरि की प्रसन्नता से ही भक्त को सुख मिल पाता है। अपने लिए कोई कामना करना ही 'काम' है, जो दुःख का मूल है –

"जाही में हरि प्रसन्न होई सोई कीजै बात।
अपनी चाह न ऊपजै ताहि मैं कुसरात।।(181)
हरि प्रसन्न भए सुख भयौ चाह भयैं भयौ दुष।
एक चाह हरि मिलन की लियैं रहत नित रुष।(182)"[89]

गौड़ीय दर्शनानुसार भगवान की कृपा से ही भक्ति की प्राप्ति होती है । ध्यातव्य है कि इस तरह की कृपा की बात भी हरिदास जी ने कही है। उन्होनें यह कहा है कि निष्काम भक्ति, जो ज्ञान और कर्म से भी ऊपर है, जो सब प्रकार से सुखद और जीवन का परम धर्म है, केवल हरि की कृपा से प्राप्त हो पाती है –

"साधन श्रम कछु न कियौ ना कछु कांखे योग।
कृपा विहारिणि दास की सहज संयोगी भोग।।"[90]

सर्वमान्य तो यह है कि रागानुगा भक्ति निश्चित रूप में साधन भक्ति से ऊँची है। यह सिर्फ गौड़ीय आचार्यो ने नहीं माना है बल्कि नारद मुनि, शांडिल्य मुनि सभी ने माना है। जहाँ प्रेम साधन है और साध्य भी, वहाँ नवधा भक्ति के साधनों की क्या आवश्यकता है । यहाँ प्रेम भक्ति निश्चित रुप में अन्य अनेक प्रकार की भक्ति से ऊँची है। साहित्य इसका साक्षी है कि भक्तों में, किसी ने श्रीकृष्ण को दास्य रूप में तो किसी ने सखा रूप में आराधाना की है। नित्य विहार का अनन्य रसिक भक्त तो सदा महल के अंतरंग में श्रीबिहारी–विहारिणि के पास रहकर उनको सुख पहुँचा रहा है। यह है सखी भाव की भक्ति, इसका पुष्ट उदाहरण निम्नप्रकार है –

"अरदासी द्वारैं परे फरियादी पिछवार।
मचला पौढ़े पैरि में एते भक्त अपार।।(428)
दफतर वारे दफतरी द्वार परे परदार।
गैर महल महली कहूँ सेवै नित्य विहार।।(430)[91]
(विहारिणि दास, सिद्धांत के दोहा)

उपर्युक्त उदाहरण से यह सिद्ध होता है कि निश्चित रूप में गौड़ीय संप्रदाय के गोपी तत्व से हरिदासजी तथा उनके संप्रदाय के कविगण प्रभावित हुए हैं। दूसरी बात, गौड़ीय दर्शन में गोपीभाव की भक्ति अनन्या भक्ति थी, निष्काम भक्ति थी। ठीक उसी प्रकार की भक्ति भावना से युक्त पद सखी संप्रदाय के कवि भागवत रसिक जी की रचना में मिलते हैं –

"नैननि देखौं और नहिं, श्रवण सुनौं नहिं और ।
घ्राण न सूँघौं और कछु, रसना कहौं न और ।।
रसना कहौं न और, त्वचा परसौं नहिं औरें ।
कुंजबिहारी केलि झेलि, इन्द्रिन सब ठौरें।।
भागवत रसिक अनन्य नेक उपदेशौं सैननि।
बैननि मैन जगाय रैन दिन देखौं नैननि।।[92]
(अनन्य निश्चयात्मक ग्रंथ, भागवत रसिक)

अतएव जैसी अनन्यता गौड़ीय दर्शन की थाती है, मूलतत्व है उसी प्रकार सखी संप्रदाय की मूल कुंजी भी है। गौड़ीय भक्ति की यह अनन्यता साधन–सिद्धान्तों के समस्त कंकड़ कांटों को साफकर प्रेम का पंथ पूर्णतया परिष्कृत कर देता है, जिससे प्रेमी भक्त अपने प्रेम स्वराज्य

में स्वछंद विचरण कर पाता है । गौर करें कि गौडीय भक्तों की तरह सखीभाव का उपासक सिर्फ अपने इष्ट के 'रस' में मत्त रहने के कारण 'रसिक' कहे जाते हैं । भक्ति साहित्य में नित्य विहार लीला या निकुंज लीला गौड़ीय संपद्राय की देन मानी जाती है। और गौड़ीय संप्रदाय में गोपीभाव की भक्ति को श्रेष्ठ माना गया है । इस संदर्भ में आग्रह यह है कि गौड़ीय दर्शन में जो बातें गोपीभाव के संदर्भ में कही गई हैं0 यहाँ वही बातें भी हरिदास जी ने सखी भाव के अंतर्गत कही हैं। भले ही शरण विहारी गोस्वामी नें उन दोनों में थोड़ा अंतर माने हैं फिर भी दोनों के साधन विधि के आधार पर उन्हें एक स्वीकारा है। इसकी पुष्टि हजारी प्रसाद द्विवेदी के इतिहास ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य' से होती है। द्विवेदी जी ने यह बताया है कि "17वीं शताब्दी के बाद के भक्ति साहित्य में सखीभाव की साधना का प्राधान्य हो गया। इस काल में तीन शक्तिशाली संप्रदाय; चैतन्य संप्रदाय, राधावल्लभीय संप्रदाय और हरिदास द्वारा पोषित टट्ती संप्रदाय हैं।"[93] यहाँ यह ध्यातव्य है कि सखी संप्रदाय में श्रीकृष्ण प्राप्ति के जो माध्यम हैं, वही गौड़ीय दर्शन का माध्यम है। भले ही किसी ने माना है या नहीं माना है, यह अलग बात है किन्तु डॉ. सुशील कुमार दे ने यह माना है कि – "चैतन्य मत के रस शास्त्र में सखी का महत्वपूर्ण स्थान होता है। बिना सखी के राधाकृष्ण की आनंदमयी प्रेम लीला संपादित ही नहीं हो सकती। लीला में प्रवेश भी सखियों अथवा उनके भाव साधकों के अतिरिक्त और किसी का नहीं हो सकता। इसीलिए भावुक भक्त गोपीभाव धारण कर रात–दिन श्रीकृष्ण की विभिन्न प्रेमलीलाओं का चिंतन करता रहता है।"[94]

3 – राधा वल्लभ संप्रदाय के कृष्ण भक्ति काव्य और गौड़ीय संप्रदाय

राधावल्लभ संप्रदाय रसोपासक भक्ति संप्रदाय है। इसके भक्ति–सिद्धान्त का मूलाधार है – प्रेम या हित तत्व।[95] अतः इसमें माधुर्यभाव की प्रेम लक्षणा भक्ति के अनुरूप साधना को ही प्रमुखता दी गई है। स्मरणीय है कि इस संप्रदाय के प्रवर्तक हित हरिवंशजी हैं, इनके संबंध में तथा इनके संप्रदाय के संबंध में कुछ वर्णन पूर्व अध्याय में किया जा चुका है। इस संप्रदाय के आचार्यों ने कृष्ण को जितना महत्व नहीं दिया है, उससे कई गुना ज्यादा राधा को दिया है। इस संदर्भ में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक हो जाता है कि संप्रदाय का नाम 'राधावल्लभ' क्यों रखा गया ? राधा–वल्लभ का अर्थ तो 'कृष्ण' है। इस संप्रदाय का नाम अगर 'कृष्णवल्लभा' रखा गया होता तो किसी हद तक नाम सार्थक होता । जो भी हो, उस

ओर ज्यादा ध्यान न देते हुए, उनके दार्शनिक तथा वैचारिक तत्वों को परखते हुए आगे बढ़ना है। ध्यान रहे कि "स्वामी हरिदासजी की भाँति हित हरिवंशजी को भी कुछ संप्रदाय अपने यहाँ का शिष्य मानते हैं, जिनमें गौड़ीय संप्रदाय प्रमुख है। उनका कथन है कि ये गोपाल भट्ट जी के शिष्य थे –

"जगते व्यापित हय परम पवित्र
श्रीमन् गोपल भट्टजीर शिष्यते हो।"[96]

(लालादासकृत भक्त माल; बंगला–बीसवीं माला)

इस मत को डॉ विजयेन्द्र स्नातक और ललिताचरण जी ने सप्रमाण खंडन किया है।"[97] बलदेव उपाध्याय ने इस संबंध में यह कहा है कि "यह एक स्वतंत्र वैष्णव संप्रदाय है जो ठेठ ब्रज मंडल में ही उत्पन्न हुआ है और यहीं खूब फूला फला।"[98] निश्चित रूप में राधावल्लभ संप्रदाय की उपासना पद्धति ही उसे एक स्वतंत्र वैष्णव संप्रदाय के रूप में स्वीकारने को बाध्य करती है। गौर तलव है कि कृष्ण भक्ति के वैष्णव संप्रदायों ने राधा के स्वरूप को स्वकीया या परकीया स्वीकार किया है। किन्तु राधावल्लभ संप्रदाय में यह विलक्षण है। इसकी राधा न स्वकीया है न परकीया। हित हरिवंशजी के अनुसार "स्वकीया–परकीया दोनों भाव अपूर्ण हैं। स्वकीया में मिलन है, पर विरह नहीं। उधर परकीया में विरह है, तो मिलन का पूर्ण सुख नहीं। इसीलिए, प्रेम राज्य में स्वकीया–परकीया की भावना केवल एकदेशीय तथा एकांगी भावनाएँ हैं।"[99] उनके अनुसार प्रेम की पूर्णता तब होती है, जब नित्य मिलन में भी विरह का सुख उपस्थित हो अथवा विरह में भी नित्य मिलन का आनंद विद्यमान रहे। इस मत को पुष्ट करते हेतु हितहरिवंश जी ने चकई तथा सारस के प्रेम का प्रसंग लिया है और दोनों के स्वकीया तथा परकीया भाव की भर्त्सना की है । उन्होंने उन दोनों के प्रेम के आधार पर नित्यमहासंयोग में नित्य महावियोगानुभूति वाली प्रेम–विधि के सिद्धान्त को मान्य तथा आदर्श सिद्ध किया है। उनके अर्थगर्भित पद को तो देखिए –

"चकई प्रान जु घट रहै पिय विछुरंत निकज्ज ।
सर अंतर अरुकाल निशि तरफि तेज धन कज्ज।।
तरफि तेज धन कज्ज, लज्ज उहि वदन न आवै।
जल बिहून करीनैन, भौर किय भाय बितावै।
हित हरिवंश विचारि याद अस कोन जु चकई।

सारस यह सन्देश प्रान घट रहै जु चकई।।" [100]

उपर्युक्त पद में सारस का व्यंग्य चकई के प्रति है। सारस कहता है – तेरे प्रेम में पराकाष्ठा कहाँ ? तुम कैसे अपने प्रियतम से विछुड़ने पर किस लोभ से अपने जीवन धारण कर पाती हो ? सारस व्यंग्यवाण छोड़ते हुए कहता है– हे चकई! प्रिय वियोग के बाद भी तेरे देह में प्राण व्यर्थ ही रहते हैं। तालाब के दोनों किनारों की यह दूरी, कालरात्रि के समान यह अंधेरी रात, बिजली की यह चमक, मेघ का यह गंभीर गर्जन–इतना होने पर भी तुम अपने प्रिय के विरह में अपने प्राणों को नहीं छोड़ती। इस निर्लज जीवन पर तुम्हें लज्जा नहीं आती। प्रातःकाल होने पर किस मुँह से अपने प्रियतम से मिलने जाओगी। इस प्रकार का व्यंग्य यह दर्शाता है कि विरह के दारुण क्षणों में भी जीवित रहना क्या प्रेम की निशानी है ? अंततः चकई का प्रेम एकांगी है, कथमपि सच्चा नहीं है। हितहरिवंश जी के दूसरे उदाहरण के माध्यम से सारस के प्रति चकई के व्यंग्य का अनुपम वर्णन देखिए ।

"सारस, सर विछुरंत को जो पल सहै सरीर।
अग्नि अनंग जु तिय भाखै तौ जानै पर पीर।।
तौ जानै पर पीर धीर धरि सकहि ब्रज तन।
मरत सारस हि फूटि पुनि न पर चौ जुलहतमन।
हित हरिवंश विचारि 'प्रेम–विरहा' बिन वा रस।
निकट कंत कत रहत मरम कह जानै सारस।" [101]

(स्फूट वाणी, पद–6)

अब आयी चकई की बारी । चकई भी सारस पर व्यंग्यवाण करना शुरु कर देती है। कहती है, हे सारस ! तुम अपनी प्रिया से वियोग होने पर अपना प्राण छोड़ देते हो । फलतः तुम प्रेम की पीर क्या जानो ? यह वह व्यक्ति जानता है, जो वियोग में शरीर धारण कर वेदना को सहता है और प्रेमाग्नि की तीव्र ज्वाला को अपने ऊपर लेकर भी जीवित रहता है । प्रेम में प्राण देने से तो अपने प्रिय के सामने प्रेम की मर्म–भरी अभिव्यक्ति करने का अवसर भी नहीं मिलता है। प्रेम की यथार्थ और परिपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए विरह की घड़ियों का दाह सहना अनिवार्य होता है। तुम तो कान्ता के पास सदा रहते हो। इसलिए, प्रेम का मर्म क्या जानो ?

अतः उपर्युक्त दोनों परम प्रेमी–युगलों के प्रेम उपन्यासोपरांत हितहरिवंश जी ने यह बताया कि दोनों का प्रेम एकपक्षीय और एकांगी है । वे उपर्युक्त दोनों के प्रेम स्वरुप को नकारते हुए 'प्रेम विरहा' की बात कहते हैं । इस ओर पहले संकेत किया जा चुका है। इस भावभूमि पर एक नम्र निवेदन है कि जैसे नींव के बिना प्रासाद का निर्माण असंभव होता है उसी तरह किसी सांप्रदायिक तत्वों के बिना एक नये सांप्रदायिक तत्व का गठन करना भी असंभव जान होता है। कहने का अर्थ यह है कि हितहरिवंश ने उपर्युक्त उदाहरण के माध्यमों से पाठकों को एक नये तत्व के बारें में अवगत कराना चाहा है । अतः हितहरिवंश से पूर्व ही गौड़ीय संप्रदाय के तीन दिग्गज आचार्यों द्वारा राधा प्रेम के संदर्भ में इस 'प्रेम–विरहा' की स्थापना हो चुकी थी । ध्यान देने योग्य है कि हित हरिवंश ने जिसे 'प्रेम विरहा' कहा है, उसे गौड़ीय आचार्यो ने 'प्रेम वैचित्य' कहा है । इस संदर्भ में जीव गोस्वामी का पद सार्थक लगता है –''सच संयोगे पि वियोग विस्फूर्ति ।''[102] अर्थात् संयोग में भी वियोगी विस्फूर्ति प्रेम वैचित्य है । विश्वनाथ चक्रवर्ती जी के अनुसार ''प्रेम वैचित्यं नाम तृष्णाया परावधिकाष्ठां व्यनक्ति ।''[103] अर्थात् प्रेम की पराकाष्ठा में जब आत्मविस्मृति की दशा उत्पन्न होती है तब वियोगात्मक अनुभूति की सहज उपस्थिति आ जाती है और मिलनोत्कंठा इतनी बढ़ जाती है कि वस्तुस्थिति का बोध मात्र नही रहता । भावना के आवेग के कारण मिलन की प्यास अतृप्त ही बनी रह जाती है। इस संदर्भ में उज्ज्वलनीमणिकार ने यह कहा है –

''प्रियस्य सन्निकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्ष स्वभावतः ।
या विश्लेषधियार्तिस्तत् प्रेम वैचित्मुच्यते।।''[104]

अर्थात् प्रिय के सन्निकर्ष होने पर प्रेम का उत्कर्ष होना स्वाभाविक होता है । उस समय विश्लेष की बुद्धि से जो हृदय में पीड़ा उत्पन्न होती है, वही प्रेम वैचित्य की संज्ञा पाती है। उपर्युक्त तत्व को और स्पष्ट करने हेतु रुप गोस्वामी जी का एक पद देखा जा सकता है । इस पद में कृष्ण के प्रत्यक्ष होने पर भी राधा के हृदय की तड़पन, सखियों से कृष्ण से भेंट कराने की प्रार्थना, विरह की आर्ति इतनी अधिक दृष्टिगोचर होती है कि जिसे देख स्वयं कृष्ण भी विस्मित हो जाते हैं –

''आभिरेन्द्रसुते स्फुरत्यपि पुरस्तीव्रामुरागोत्थया
विश्लेषज्वरसंपदा विवशधीरत्यन्तमुद्घूर्णिता।

'कान्तं में सखि दर्शये' ति दशनैरुग्द्गूर्ण–शस्यांकुरा

राधा हन्त तथा व्यचेष्टत यतः कृष्णोऽप्यभूद् विस्मितः ।।"[105]

सार रुपेण यह कहा जा सकता है कि राधावल्लभ संप्रदाय के अचार्य जिस तत्व को अपनी मौलिक विशेषता बताते हैं; यह उनकी मौलिक विशेषता नहीं बल्कि गौड़ीय दर्शन का प्रभाव माना जाना चाहिए। बिलकुल रूप गोस्वामी के विरहभाव युक्त श्लोक के आधार पर हितहरिवंश जी ने भी 'हितचौरासी' में कुछ पद लिखें हैं, उनमें से एक पद उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है, जिसमें हित हरिवंश जी ने नेत्र वर्णन का प्रसंग चुना है और एक पल के लिए केश–लट, नेत्र के आगे आ जाने से उत्पन्न दर्शन की बाधा को विरह की तीव्र वेदना कहा –

"कहा कहौं इन नैननि की बात।
ये अलि प्रिया वदन अम्बुज रस–अटके अनन न जात।
जब जब रुकत पलक सम्पुट लट अति आतुर अकुलांत।
लम्पट लव निमेष अंतर ते अलप कलप सत सात ।
श्रुति पर कंज, दृगंजन कुच विच मृग मद ह्वै न समात।
(जैश्री) हित हरिवंश नाभि सर जलचर जांचत सांवल गात।"[106]

(हित चौरासी–पद सं'60)

इसकी पुष्टि के लिए विजयेन्द्र स्नातक का यह कथन द्रष्टव्य है। "बंगाल में चैतन्य महाप्रभु का जन्म श्री हितहरिवंश जी से लगभग बीस वर्ष पहले हुआ था और उनके प्रमुख शिष्य श्री रुपगोस्वामी तथा सनातन गोस्वामी वृन्दावन में अपने भक्ति ग्रंथों के प्रणयन के निमित्त श्री हितहरिवंश जी से लगभग पंद्रह वर्ष पूर्व आ चुके थे। इन गोस्वामियों की ग्रंथ रचना का आधार माधुर्य भक्ति था जो अपने सैद्धांतिक विवेचन में इतना परिपूर्ण, पुष्ट और सुन्दर था कि परवर्ती किसी भी लेखक ने अद्यावधि उससे अच्छा शास्त्रीय विवेचन नहीं किया है। माधुर्य भक्ति को साहित्यशास्त्र की रसवादी परिपाटी से संयुक्त करके नव रसों का भक्ति में पर्यवसान इन गोस्वामियों का विलक्षण प्रतिभा का दिव्य वरदान ही समझना चाहिए। 'भक्तिरसामृतसिंधु' में भक्ति के विविध रूपों का जैसा सांगोपांग विवेचन हुआ है वैसा न तो पहले कभी हुआ था और न उसके बाद आज तक हुआ।"[107] आपने यह भी स्वीकारा है कि – "गौड़ीय भक्ति के शास्त्रीय विधान पर राधावल्लभ संप्रदाय की कोई छाप नहीं है, क्योंकि

वह तो पूर्व ही विस्तार पूर्वक तैयार हो चुका था। उस क्षेत्र में तो हितहरिवंश जी ने स्वयं प्रेम लक्षणा के वैधी रूप के निर्माण में गौड़ीय गोस्वामियों से कुछ–न–कुछ ग्रहण किया होगा।"[108]

जहाँ तक भक्ति के रस रुप को लेकर गौड़ीय संप्रदाय और राधावल्लभ संप्रदाय के बीच का संबंध है, दोनों ने भक्ति को रस रूप में स्वीकार है किन्तु सिद्ध तो यह है कि गौड़ीय गोस्वामियों ने भक्ति की जैसी वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय व्याख्या की हैं, शायद दूसरे संप्रदाय के आचार्यो ने की हो। तब इस भावभूमि पर निश्चित रूप में राधावल्लभीय भक्ति तत्वों पर गौड़ीय दर्शन का प्रभाव स्वीकार करना चाहिए । भक्ति की रस योग्यता को स्वीकारते हुए आधुनिक रसज्ञ डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यह कहा है कि –"आत्मा जिस रस का अनुभव करती है, वही सर्वश्रेष्ठ भक्ति रस है, जिसका नाना स्वभावों के भक्त नाना भाव से आस्वादन करते हैं। मधुर रस उसी का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप है।"[109]

इस संदर्भ में राधावल्लभ संप्रदाय की पहचान को कायम रखनेवाले कवि तथा भक्त ध्रुवदास की रचनाओं को आधार बनाया जा सकता है। ध्रुवदास के साहित्य के विशेष अध्येता डा. शीला ग्रोवर ने ध्रुवदास की भक्ति को रस मार्गी ठहराते हुए यह बताया है कि "रसमार्गी ध्रुवदास ने रूप गोस्वामी की मान्यता को स्वीकार करते हुए मुख्य भक्ति–रस पाँच माने हैं – शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। इनके सापेक्षिक महत्व को निरुपित करते हुए उन्होंने मधुर भक्ति रस को सर्वश्रेष्ठ वर्णित किया है। ध्रुवदास ने अपनी कृति 'भजनाष्टक' में रूप गोस्वामी प्रदत्त 'उज्ज्वलरस' नामक मधुर रस के उत्कृष्ट रूप को प्राप्त कर वृन्दावन रस के उपासक ज्ञान, ऐश्वर्य, माहात्म्य से रहित मधुर स्थिति में पहुँच जाने की बात मानी है।" [110] अतः 'हाथ कंगन को आरसी क्या' मुहावरा की सार्थकता के अनुसार यह सिद्ध है कि राधावल्भीय संप्रदाय के दर्शन विधान पर गौड़ीय संप्रदाय का प्रभाव है।

पहले बताया जा चुका है कि गौड़ीय संप्रदाय की तरह राधावल्लभ संप्रदाय में भी मधुरा भक्ति रस को प्रधानता दी गई है । ध्रुवदास जी ने मधुर रस की निष्पत्ति के संदर्भ में यह कहा कि "प्रेम और नेम के नित्य योग से यह मधुर रस निष्पन्न होता है।"[111] और नेम को काम का समानार्थ बताया है।[112] यहाँ पर अनुरोध यह किया जाता है कि जहाँ तक भक्ति के संदर्भ में मधुरा रस भक्ति की बात है, उसमें काम लेश मात्र भी नहीं रहता । यह सही है कि प्रेम के उत्पन्न होने में काम या नेम सहायक तत्व हो सकते हैं किन्तु प्रेम की उदात्त स्थिति पर, मधुरा भक्ति की भाव–भूमि पर प्रेम का सागर ही उमड़ता नज़र आता है; वहाँ पर

काम की वह सरिता नजर नहीं आती । वह काम की सरिता प्रेम के सागर में अपने–आपको मिलाकर अपने वक्षस्थल को विशाल बना देती है । हाँ, यह संभव है कि ध्रुवदास के मधुराभक्ति–रस संबंधी विचार सांप्रदायिक दर्शन के अनुकूल हों किन्तु गौड़ीय दर्शन का मधुरा भक्ति रस उससे कई गुना श्रेष्ठ परिलक्षित होता है।

प्रेम और काम के बारे में हितहरिवंशजी ने जो मत रखा है उससे यह ज्ञात होता है कि निश्चित रूप से राधावल्लभ संप्रदाय में वर्णित काम और प्रेम पर गौड़ीय दर्शन का प्रभाव है। इसको सिद्ध करने हेतु डा. स्नातक का कथन ग्रहणीय है – "प्रेमलक्षणा भक्ति को माधुर्य भक्ति और श्रृंगार रस को उज्ज्वल रस की संज्ञा देकर चैतन्य संप्रदाय के विद्वान पंडित रूप गोस्वामी ने अपने भक्ति–ग्रन्थों में श्रृंगार और प्रेम के लौकिक विषय–वासनामय रूप का उन्नयन किया . . . । भक्ति के क्षेत्र में जिस श्रृंगार को चैतन्य संप्रदाय के आचार्यों ने अवतरित किया था। उसका कृष्णभक्ति परक परवर्ती सभी वैष्णव संपद्रायों पर गहरा प्रभाव पड़ा . . . । प्रस्तुत प्रकरण में हमें प्रेम और काम के पारस्परिक संबंध और उनके स्वरूप पर ही प्रकाश डालना है। राधावल्लभ संप्रदाय में इस संबंध में कोई नवीन दृष्टिकोण प्राप्त नहीं होता । 'राधासुधानिधि' ग्रंथ में जिस भाव से राधा की महिमा का गान तथा उपासना का विधान हुआ है वह चैतन्य से भिन्न नही है ।"[112] अंततः स्नातक जी ने गौड़ीय आचार्यों की कृतियों से कतिपय उदाहरणों के माध्यम से राधावल्लभ संप्रदाय में वर्णित श्रृंगार तत्व में काम और प्रेम के संबंध को स्पष्ट किया है। विजयेन्द्र जी ने स्वीकार किया है कि चैतन्य संप्रदाय के आचार्यों की विलक्षण प्रतिभा ने मध्ययुग में भक्ति का पुनरुत्थान करके उसे माधुर्य के क्षेत्र में सर्वथा नवकलेवर प्रदान किया। श्री हितहरिवंश जी जब बृन्दावन पधारे तब उन्हें अवश्य ही यह भाव सामग्री उपलब्ध हुई होगी और माधुर्य भक्ति को समझने और समझाने में वे गौड़ीय आचार्यों के ग्रंथों से उन्होंने अवश्य ही लाभ उठाया होगा। स्नातकजी ने इसे और पुष्ट करते हुए यह प्रमाण दिया है कि 'उज्ज्वलनीलमणि' और 'भक्तिरसामृतसिंधु' के तात्विक विश्लेषण का उन्हें पूरा–पूरा बोध था। और राधा–कृष्ण के प्रणय व्यापार के वर्णन में उनके अंतर्मन पर इन ग्रथों का प्रभाव रहा होगा । स्नातकजी यह भी मानते हैं कि "हितहरिवंशजी ने अपने स्वतंत्र मार्ग की स्थापना में अनेक मौलिक सिद्धान्त स्थापित किये और चैतन्य और वल्लभ से अपना पार्थक्य रखा किन्तु इनके प्रभावों का वे सर्वथा परिहार नही कर सके।"[113] यहाँ यह ध्यान रहे कि राधावल्लभ संप्रदाय में स्वसुख तथा तत्सुख की बात की गई है और

इनके संबंध में यह कहा गया है कि "प्रेम प्रेमी की रागात्मिका वृत्ति का वह रूप है जो उसे प्रेमास्पद के प्रति आकृष्ट करके उसके दर्शन, स्पर्शन, वार्तालाप आदि द्वारा प्रेमी को संतुष्ट और सुखी बनाता है, सांसारिक प्रेम में, प्रेम करने वाला प्रेमी अपनी वृत्तियों के परितोष के लिए ही प्रेम के संसार में प्रविष्ट होता है। स्व–सुख–सिद्धि ही सामान्यतः प्रेम का लक्ष्य माना जाता है। किन्तु राधावल्लभीय प्रेम की परिभाषा इससे सर्वथा भिन्न है। यहाँ प्रेमी और प्रेमपात्र अपने प्रेम की परितुष्टि के लिए प्रयत्नशील न होकर दूसरे के परितोष में ही आत्मसमर्पण करते हैं।"[114] सर्वविदित तो यह है कि प्रेम में आत्मसमर्पण ही प्रमुख होता है और प्रेम की उदात्त स्थिति भक्ति; के संदर्भ में भी यह आत्म समर्पण ही प्रमुखता रखती है। इसकी बात तो प्रायतः सारे भक्ति के आचार्यो ने की है। मुख्य रूप से प्रेमभक्ति के संदर्भ में गौड़ीय संप्रदाय के आचार्य कृष्णदास गोस्वामी ने इसका सविस्तार वर्णन किया है –

"आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम।।" (चैतन्य चरितामृत)

इसमें गोस्वामी महाशय ने स्वसुख को 'काम' की संज्ञा दी है। और कृष्ण के लिए सुख को यानी तत्सुख को प्रेम की संज्ञा दी है । अतः विनती यह है कि हितहरिवंश गोस्वामी ने स्वसुख और तत्सुख का कोई नया रूप नहीं बताया है। दूसरी बात इस संदर्भ में यह है कि मुख्यतः राधावल्लभ संप्रदाय का 'प्रेम' लौकिक प्रेम के आधार पर व्याख्यायित ज्ञात होता है।

राधावल्लभ संप्रदाय के रसोपासक भक्तों ने सखी भावाश्रित मधुर रसोपासना को स्वीकृति दी है। उनके अनुसार अव्यक्त हिततत्व अथवा प्रेम का प्रकाशन रस रूप राधा–कृष्ण की लीलाओं के माध्यम से होता है। राधा–कृष्ण परात्पर हित के विग्रह हैं। इनके निज–रस का विस्तार नित्य विहार लीलाओं के माध्यम से रसिक भक्तों के निमित्त होता है। अतः भक्त, परात्पर हित तत्व अथवा प्रेम तत्व की उपलब्धि युगल की नित्य लीलाओं के दर्शन, चिंतन और गायन से कर सकता है। परन्तु इसके लिए सखीभाव धारण करना अनिवार्य है।

राधावल्लभ संप्रदाय में गोपीभाव की उपासना से सखी भाव की उपासना को श्रेष्ठ बताया गया है। क्योंकि यह माना जाता है कि गोपीभाव के प्रेम में शुद्धता नहीं रहती है। उसमें सकामता तथा आत्मसुख की बात आ जाती है –

"गोपिन के सम भक्त न आही, विधि ऊद्धव नित की रज चाही।
तिन मन कछु सकामना आई, ताते बिच अंतर परयौ भाई।। [115]
(ध्रुवदास कृत अनुरागलता से)

डा शरण बिहारी गोस्वामी ने इसके संबंध में यह बताया है कि "राधावल्लभ संप्रदाय के कवि सखीभाव के उपासक थे परन्तु उनका सखीभाव अंततः गोपीभाव ही था, क्योंकि उनके उपास्य ब्रज के राधाकृष्ण ही थे। श्री हितहरिवशंजी के काल के कवियों की दृष्टि में गोपिकाएँ ही प्रेम की सर्वश्रेष्ठ आदर्श थीं । श्रीहितहरिवंश जी के शब्दों में गोपिकाओं का उपास्य रस 'गोप्यैकभावाश्रय' है।[116] अतः निश्चित ही एक संप्रदाय के तत्व पर डॉ स्नातक एवं शरणबिहारी गोस्वामी के मत में अंतर परिलक्षित होता है। इस अंतर को पाटते हुए यह कहा जा सकता है कि शरणबिहारी गोस्वामी द्वारा प्रदत्त मत संप्रदाय के दार्शनिक तथा सांस्कृतिक परिस्थिति के अनुसार अधिक सार्थक है। कहने का मतलब यह कि जब प्रेम या भक्ति के संदर्भ में राधावल्लभीय संप्रदाय गौडीय आचार्यों से प्रभावित हैं तो यह निश्चित रूप में कहा जा सकता है कि राधावल्लभीय आचार्यों तथा विद्वानों से ग्रहणीय, चाहे गोपीभाव हो या सखीभाव, गौड़ीय दर्शन से प्रभावित है । प्रमाण स्वरूप यह देखा जा सकता है कि गौड़ीय दर्शन में गोपीभाव की उपासना को महत्व दिया गया है।

"आराध्यो भगवान् व्रजेश तनयस्तद्धाम वृन्दावनं।
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं पुराणममलं प्रेमपुमर्थो महान्
श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मतमिंद तत्राग्रहो नाः परः ।।"[117]

इस श्लोक से स्पष्ट है कि नंद नंदन श्रीकृष्ण आराध्य हैं और आराधना की शैली गोपीभाव है। स्मरणीय है कि गौड़ीय संप्रदाय में सखीभाव को गोपीभाव का समानार्थक बताया गया है।

"सखी बिनु एइ लीलार पुष्टि नाहि हय।
सखी लीला विस्तारिया सखी आस्वादय।।"[118]

डा. नरेशचन्द्र बंसल ने यह बताया है कि गौड़ीय संप्रदाय के कवि वल्लभरसिक भगवान कृष्ण के 'नित्य विहार' एवं 'निकुंज विहार' के वर्णन में बडे सिद्धहस्त कवि है। उन्होंने वल्लभरसिक की वाणी में शुद्ध निकुंज भावना व्यक्त होने की बात कही है और यह बताया है कि इस शुद्ध निकुंज भावना का प्रभाव राधावल्लभ संप्रदाय में वर्णित निकुंज भावना पर पड़ा है ।

आपने चैतन्य संप्रदाय की रस–साधना का प्रभाव भी राधावल्लभ संप्रदाय के कवि हित दामोदर, ध्रुवदास हित, वृन्दावनदास जी, रूपलाल हित, हित चंद्रलाल, हित रसिक दास, हित अनूप आदि प्रमुख वाणीकारों पर पड़ने की बात स्पष्ट रूपेण दर्शाई है और हित ध्रुवदास, गौड़ीय संप्रदाय का कवि प्रबोधानंद सरस्वती से प्रभावित होने की सूचना दी है। स्पष्ट रूप से तुलनात्मक उदहरण भी दिया गया है –[119]

"सा मे न माता, स च मे पिता न, स मे न बंधु, स च मे सखा न।
स मे न मित्रं, स च मे गुरुर्न, यो मे न वृन्दावन वासमादिशेत्।।"
(श्रीवृन्दावन महिमामृतम्, प्रबोधानंद सरस्वती, 17 वाँ शतक, श्लोक–18)

तुलना कीजिए –

"नहिं सो माता पिता नहिं, मित्र पुत्र कोऊ नाहिं।
इनमें जो अंतर करै, वसत वृन्दावन माहिं।।"
(वृन्दावन सतलीला, हित ध्रुवदास जी, छंद–65)

दूसरा उदाहरण भी उन्होंने दिया है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हित ध्रुवदासजी ने यथावत् उसका अनुवाद कर अपनी रचना में स्वीकार किया है –

"वृन्दारण्ये चर चरण! दृक् पश्य वृन्दावन श्री
जिह्वे! वृन्दावन गुणगणान् कीर्त्तय श्रोत्र! गृह्यान्।
वृन्दाटव्या ब्रज परिमलं ध्राण! गात्र! त्वमस्मिन्
वृन्दारण्यें लुठ पुलकितं कृष्णकेलि स्थलीषु।।"

अब तुलना करें –

"वृन्दावन श्रवननि सुनहि, वृन्दावन को गान ।
मन बच कै अति सौं वृन्दावन उर आनि ।।
वृन्दावन कौ नाम रटि! वृन्दावन कौं देषि ।
वृन्दावन सौ प्रीति करे, वृन्दावन उर लेषि ।।
(वृन्दावनसतलीला, पदसंख्या 78,99)

इस प्रकार बंसल जी ने राधावल्लभ संप्रदाय के दूसरे कवि हितरसिक दास जी, गौड़ीयाचार्य विश्वनाथ चकवर्ती से प्रभावित होकर अपने 'रस सिद्धान्त चिंतामणि, और 'श्रृंगार चिंतामणि'

आदि की रचना करने की बात बताई है । प्रमाण स्वरूप हित रसिक दास ने अपनी रचनाओं के पदों में विश्वनाथ चक्रवर्ती की प्रशंसा की है।[120]

(क) ख्यात चक्रवर्ती के हैं साधु सुशील अनूप।
मन अनुशीलन करि रहैं भजन रीति श्रीरूप।
(रस सिद्धांत चिंतामणि पद सं. 117)

(ख) रस ग्रन्थनि रस रीति में, निपुन कथन आख्यान ।
रसिक चक्रवर्ती हैं महा, साधुशील विद्वान ।।
(श्रृंगार चुडामणि पद सं–221)

अगर हितरसिक दास जी के 'रस सिद्धात चिंतामणि' का आद्यन्त अनुशीलन किया जाए तो स्पष्ट रूप से उन पर रूप गोस्वामी कृत 'लघुभागवतामृत' तथा सनातन गोस्वामी कृत 'बृहत् भागवतामृत' का प्रभाव होना दृष्टिगोचर होता है तथा उनका 'श्रृंगार चिंतामणि', रूप गोस्वामी कृत 'उज्ज्वलनीलमणि' का संक्षिप्त रूप परिलक्षित होता है। अंततः इन ग्रथों का अनुवाद राधावल्लभीय आचार्यो से होने की आशा व्यक्त की गई है।[121] पहले हमने राधावल्लभ संप्रदाय के कवियों में हित अनूप जी का स्मरण किया है । यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि राधावल्लभ संप्रदाय में ही संपूर्ण रूप में राधा के स्वकीया रूप को स्वीकारा गया है। किन्तु इस संप्रदाय के कवि हित अनूप की रचना 'माधुर्यविलास' में राधा के परकीयोपासना युक्त कुछ पद पाये जाते हैं । इन पदों का जिक्र कृष्णबिहारी गोस्वामी ने अपनी पुस्तक में किया है । इनके संबंध में गोस्वामी जी ने यह लिखा है कि –"माधुर्य विलास में परकीया नायिका का भी विस्तार से वर्णन किया गया है, यद्यपि राधावल्लभीय पद्धति में परकीया को स्थान नहीं है।"[122]

अतएव यह निश्चित है कि उन पर गौड़ीय आचार्यो का प्रभाव होना स्वाभाविक जान पड़ता है । इस संप्रदाय के कवि चाचा हित वृन्दावन दास ने अपनी कृति में गौड़ीय संप्रदाय के आचार्य जीव गोस्वामी की पद्मपुराण कथा लिखने की बात कही है, जिससे यह निश्चित कहा जा सकता है कि वे जीव गोस्वामी से प्रभावित अवश्य हुए होंगे। उनका एक पद प्रस्तुत है –

"तदपि हू लौकिक रीति नंद वृषभानुधाम,
भयौ है विदित व्याह ग्रन्थनि में गौयौ है।

पद्म पुराण कथा लिखि है गुसाई जीव,

हरि लीला, विलास तंत्र में हू सुनि पायौ है।"[123]

अंतमें अगर हम राधावल्लभीय पूजार्चना की विधि और विधानों पर ध्यान केन्द्रित करें तो स्पष्टतः यह गौड़ीय संप्रदाय में विदित पूजा पद्धति से समान होगा। गौड़ीय संप्रदाय में विदित अष्टयान पद्धति, जिसकी विस्तार पूर्वक चर्चा हमने इसके पूर्व अध्याय में की है, के समान ही इस संप्रदाय में भी अष्टयाम पूजा पद्धति से राधा–माधव की पूजा की जाती है। धूप, आरती, राजभोग, जागरण, स्नान, श्रृंगार, प्रसाधन आदि बिलकुल गौड़ीय संप्रदाय की पूजा–पद्धति के अनुसार मालूम होते हैं। साथ–साथ राधावल्लभ संप्रदाय में दीक्षित भक्त के द्वारा व्यवहृत माला, कंठी, तिलक आदि हू–ब–हू गौड़ीय सांप्रदायिक भक्तों सा परिलक्षित होता है। अतः उन पर गौड़ीय संप्रदाय का प्रभाव संभव हो सकता है। गौड़ीय संप्रदाय की तरह इस संप्रदाय में तुलसी पूजन आदि विधान नहीं है किन्तु आधुनिक युग में तुलसी पूजन यत्र–तत्र देखने को मिले हैं, यह भी अन्य संप्रदाय का प्रभाव है।[124]

उपर्युक्त विवेचनोपरांत निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि राधावल्लभ संप्रदाय के सिद्धान्त तत्व तथा उपासना विधि–विधान निश्चित रूप से कुछ हद तक गौड़ीय दर्शन के आचार्यो से प्रभाावित है। किन्तु जहाँ तक इस संप्रदाय के भक्ति तत्व के साथ संबंध की बात है, तो यह पूर्ण रुपेण गौड़ीय आचार्यो से स्थापित मतों से समानता रखता है।

4. संप्रदाय रहित कृष्णभक्त कवि और गौड़ीय संप्रदाय

हम पहले बता चुके हैं कि संप्रदाय के बंधन में अपने आपको बांधनेवाले कवियों की भक्तिभावना गौड़ीय संप्रदाय के सिद्धांतों से कैसे प्रभावित हुई थी । अब कुछ ऐसे कवि भी हैं, जैसे – मीराबाई एवं रसखान आदि, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गौड़ीय संप्रदाय से प्रभावित हुए थे । यहाँ उन्हीं कवियों पर गौड़ीय संप्रदाय के प्रभाव दर्शाने का प्रयास किया जाएगा ।

अ) कृष्णभक्त दिवानी कवयित्री – मीराबाई

कुछ ऐसे कवियों का भी भक्ति साम्राज्य में आविर्भाव हुआ है, जिन्हें किसी संप्रदाय की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। वे अपनी आंतरिक शक्ति के बल पर अपने युग का अतिक्रमण कर आगे के युग में भी शीर्ष पर बने रहे। मीरा के भक्ति प्रसंगों से परिचित होने

के पश्चात् "न उन्हें राधाभाव के आवेश से युक्त माना जा सकता है, न उनमें गोपीभाव का प्रेम है, वस्तुतः मीरा के कृष्ण मीरा के ही अपने कृष्ण हैं। वे न राधापति हैं, न गोपीपति, वे हैं मीरापति।"[125]

मीराबाई एक भक्त थीं। भले हि उन्हें कवि न कहा जा सकता है परंतु भक्त जरूर कहा जाता है। भक्त की बात कुछ अलग ही होती है। जहॉ कवि को अपने काव्य के प्रयोजन की आशा रहती है वहॉं भक्त को इन सारी बातों की कतई चिंता नहीं रहती । वह अपने भगवान के रस सागर में ऐसे डूबा रहता है कि उसे समय कहाँ अन्यों के बारें में सोचने विचारने का ! मीराबाई संप्रदाय रहित कवि थीं। अगर उन्हें आचार्य या कवि के रूप में प्रतिष्ठित होने की आकांक्षा हुई होती तो वे उसे प्राप्त कर सकती थीं, किन्तु इस लालसा ने उन्हें छूआ तक नहीं । उनका जीवन वस्तुतः सांप्रदायिकता के जाल से मुक्त था। ध्यान रहे कि मीरा के संपर्क में हितहरिवंश, हरिराम व्यास, वल्लभ, जीव गोस्वामी आदि प्रमुख आचार्य आये थे । साधु–संत भी उनसे मिलते रहे किन्तु संप्रदाय की सीमा में वह नहीं बंधी, किसी दार्शनिक मतवाद ने उन्हें मतवाला नहीं बनाया। सच देखा जाए तो मीरा अपनी भक्ति भावना में इतनी डूबी हुई थी कि उनका जीवन कृष्णमय हो गया था । कोई निंदा करे, कोई वंदना करे; इसकी उन्हें चिंता नहीं थी । कोई उनकी बात सुने या न सुने, कोई उनके कीर्तन में आये या न आये, उनके पद को गाये या न गाये, इससे उन्हें कोई मतलब नहीं था। भक्ति के आवेश में स्वान्तः सुखाय वे आत्मसमर्पण के गीत गाती थीं। इसीलिए कोई संप्रदाय की स्थापनाकर उसे चलाने की कल्पना भी उनके लिए स्वाभाविक नहीं थी। इनके संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी यह कहते हैं कि –"मीरा के आविर्भाव काल में सगुणवादी नाना पुराणों के मंथन में लगे थे, निगमागम सम्मत पथ की शोध चल रही थी। साधना का राजपथ बन रहा था। मीरा ने केवल लक्ष्य को पहचाना और उस ओर बढ़ गई। जहाँ उनके चरण पड़ते गये, राह बनती गई– सीधी सरल प्रेम की राह, जो न दर्शन की मुखापेक्षी थी और न किसी संप्रदाय की अनुवर्तिनी । इसका एक अनिवार्य परिणाम यह हुआ है कि उनका समस्त भावलोक आद्योपांत प्रियतम प्रधान है। पंथ वहाँ गौण है, लगभग नगण्य।"[126]

मरुस्थल की मन्दाकिनी, मधुरस की एकनिष्ठ साधिका गिरिधर की दीवानी मीरा का नाम भक्ति–भारती की मधुमय धरोहर है। कृष्णभक्ति की विरहाग्नि में विदग्ध व्यक्तित्व का

नाम ही मीरा है। सच तो यह है कि संपूर्ण भक्ति में आराधना और उत्सर्ग, समर्पण तथा विसर्जन की अन्यतम मूर्ति कोई हैं तो है मीरा । उनके ऐकान्तिक प्रेमोन्माद में राजसी पन तिनके की तरह उड़ गया, कुल मर्यादा ओस की तरह विलीन हो गयी, लोक–लज्जा की धूल उड़ गयी और अपने आराध्य को रिझाने के लिए मीरा को अपने पग में घुँघुरु बाँध कर नाचना पड़ा। वह कह उठी – ''पग घुँघरु बाँध मीरा नाची रें ।''[127] श्रीगिरिधर गोपाल की अनन्य उपासिका, प्रेमातिशयता की पीयूषवर्षी साधिका मीरा की अलौकिक प्रीति की अनुपमता श्री नाभादास के शब्दों मे देखने योग्य है –

''सहज गोपिका प्रेम पगट कलिजुगहिं दिखायो।
निर अंकुस अति निडर रसिक जस रसना गायो।।
... ...
भक्ति निसान बजायेके काहूँते नाहिन लजी।
लोकलाज कुल श्रृंखला तजि मीराँ गिरिधर भजी।।''[128]

विद्वानों को मीरा की भक्ति पद्धति पर गौड़ीय दर्शन का प्रभाव स्वीकार्य हुआ है। प्रथम अध्याय में भक्ति के उद्‌भव और विकास के वर्णन के दौरान हमने इस ओर संकेत किया है। मीराबाई को चैतन्य संप्रदाय की अनुगामिनी कहने वालों का कहना है कि ''मीराबाई के समय में श्रीरुप एवं सनातन नामक दो गौड़ीय वैष्णवों का प्रभाव वृन्दावन में प्रबल था और उन दोनों के भतीजे जीव गोस्वामी के साथ मीरा की भेंट भी हुई थी।[129] प्रसिद्ध है कि मीराबाई अपनी वृन्दावन यात्रा के अवसर पर श्री जीव गोस्वामी के मठ पर गयी थीं और उनसे मिलने के लिए जब खबर भेजी तो उस वक्त जीव गोस्वामी ने यह कहला भेजा कि मैं किसी नारी से नहीं मिलूँगा। उत्तर में मीरावाई ने यह कहा कि ''मैं तो आज तक यह समझती थी कि वृन्दावन में भगवान श्रीकृष्ण ही एक मात्र पुरुष हैं और अन्य सभी लोग स्त्री वा गोपी रूप है। किन्तु आज मालूम चला कि कृष्ण के अलावा इस वृन्दावन में और कोई एक दूसरा पुरुष है। अतः मीरा के इस कथन से प्रभावित होकर जीव गोस्वामी उनसे मिले थे। हमने उपर्युक्त कथा की ओर इसीलिए ध्यानाकर्षित किया ताकि यह दिखाया जा सके कि मीराबाई की भक्ति मुख्यतः गोपीभाव की भक्ति थी, जिसे गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय की सृष्टि कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी।

मीराबाई और जीव गोस्वामी की भेंट के बारें में 'भक्ति रस बोधिनी टीका' में प्रियादास ने स्पष्ट रूप में लिखा है।[130] ऊपर कही गई कहानी के आधार पर गुजराती के कवि दयाराम ने यह बताया कि –

"मीराँबाई आव्यां वृन्दावनमां रे प्रेम नीरख्या श्री व्रजराय
श्रीयमुना पयपान कर्युने करी जीवगोसाईं ने शिक्षाय।"[131]

जहाँ तक मीरा की भक्ति के साथ गौड़ीय दर्शन के भक्ति–तत्व के संबंध की बात है, यह तो निश्चित है कि मीराबाई चाहे जीव गोस्वामी से प्रभावित हुई हो या नहीं,; चैतन्य महाप्रभु की अनन्य भक्ति से अवश्य प्रभावित हुई है । मीराबाई का व्यक्तित्व स्वयं इसका साक्षी है। इस संबंध में पं. बलदेव उपाध्याय का मानना है कि –"ब्रजेश्वरी राधा का प्रेम कितना उज्ज्वल तथा उनका आत्मनिवेदन कितना मार्मिक तथा हार्दिक था कि इसे समझने के लिए दो ऐतिहासिक व्यक्ति हमारे सामने हैं, जिन्होंने अपने जीवन में उस उदात्त राधाभाव की एक मधुर झाँकी प्रस्तुत की थी। एक तो हैं महाप्रभु चैतन्य देव तथा दूसरी हैं मीराबाई।"[132] अतः इससे स्पष्ट रूप में यह प्रमाणित होता है कि मीराबाई चैतन्य संप्रदाय के राधाभाव (गोपी भाव), जिसे महाभाव कहा गया है, से प्रभावित थीं। चैतन्य महाप्रभु के बारें में यह कहा जाता है कि चैतन्य राधा–कृष्ण के मिलित अवतार हैं । क्योंकि वे गौरवर्ण के थे और यह भी माना जाता है कि राधा के चित्त जैसा कृष्णमय था उसी प्रकार चैतन्य महाप्रभु का आंतरिक चित्त कृष्णमय था। यहाँ मीराबाई के संबंध में यह तथ्य उपलब्ध होंता है कि उन पर राधावल्लभ संप्रदाय की उपासना पद्धति का प्रभाव था। किन्तु यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि राधावल्लभ संप्रदाय हो या सखी संप्रदाय, इनमें गोपीभाव को प्रधानता नहीं मिली है बल्कि सखीभाव को प्रधानता मिली हैं। किन्तु मीरा स्वयं गोपी के रूप में कृष्ण की आराधना करती नज़र आतीं हैं । अतः उनकी भक्ति का भाव निश्चित रूप में गोपीभाव है। इस गोपीभाव की भक्ति को गौड़ीय दर्शन में 'उत्तमा' भक्ति की कोटि में स्वीकार किया गया है और इस उत्तमा भक्ति की परिभाषा निम्न प्रकार दी गई है–

"अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम्
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरूत्तमा ।

और यह उत्तमा भक्ति तीन प्रकार की कही गयी है – साधन भक्ति, भाव भक्ति और प्रेम भक्ति । इन प्रकारों के बारे में पिछले अध्याय में कह चुके हैं। अंततः प्रेमभक्ति के बारें में यह

कहा गया है कि भाव भक्ति का जब पूर्ण परिपाक होता है, तब वह रस रूप, प्रेमाभक्ति में परिणत हो जाता है। मीरा के अनेक पदों में इस प्रेमाभक्ति की व्यंजना पाई जाती है। इस प्रकार "गौड़ीय संप्रदाय के आचार्यों द्वारा द्वारा व्याख्यात उत्तमा भक्ति के तीनों सोपान, जिन्हें तीन प्रकार का कहा गया है, मीरा में मिल जाते हैं ।"[133] साधारणतः भक्ति के संदर्भ में वैष्णव धर्म का मूलसार भगवान के चरणों में अपने को लुटा देना, आत्माभिमान छोडकर सब धर्मों का परित्याग करके शरणापन्न होना है । गौड़ीय संप्रदाय के आचार्यों ने इसका विशेष रूप से उल्लेख किया है । इसका यत्किंचित् समस्त वैष्णव संपद्राय के भक्ति तत्वों पर पड़ा है। यह कहा जाता है कि मीरा मुख्यतः विट्ठलनाथ की भक्ति भावना से प्रभावित थीं । और वल्लभ संप्रदाय के आचार्य तथा कवि विट्ठलनाथ, खास करके, महाप्रभु चैतन्य देव की भक्ति से प्रभावित थे । अतएव मीराबाई का परोक्ष रूप में चैतन्य महाप्रभु से प्रभावित होने की बात कहना असंगत नहीं है। डॉ नरेशचंद्र बंसलजी ने यह बताया है कि मीरा ने महाप्रभु के प्रति एक भाव भीना पद लिखा था – "अब तो हरी नाम लौ लागी ।"[134]

ऊपर हमने जो बताया कि मीरा गौड़ीय दर्शन के प्रेम भक्ति के माधुर्य रस से प्रभावित थीं उस कथन को पुष्ट करने के लिए एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है –

"पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे।
मैं तो मेरे नारायण की आपहि हो गई दासी रे।
लोग कहैं मीरा भई बावरी न्यात कहै कुलनासी रे।।
विषका प्याला राणाजी भेज्या पीवत मीरा हाँसी रे।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर सहज मिले अबिनासी रे।"[135]

अंततः मीराबाई के जीवन का लक्ष्य महाप्रभु चैतन्य की भाँति अपने प्राणेश्वर श्रीकृष्ण की प्राप्ति है। उनके जीवन साधना का लक्ष्य प्रेम ही है, जहाँ प्रियतम कृष्ण के प्रेम के अतिरिक्त अन्य कोई भाव नहीं है। इसे गौड़ीय संप्रदाय के दर्शन में 'गोपीभाव' कहा जाता है। किन्तु जहाँ तक गौड़ीय गोस्वामियों की भक्ति तत्वों से मीरा के प्रभावित होने का सवाल है, इस संबंध में मीरा के विशेषज्ञ डा प्रभात ने यह बताया है कि जिस समय मीरा को गिरिधर गोपाल से प्रेम हुआ था और उनके मन में गोपाल भक्ति जगी, उस समय चैतन्यमत का दर्शनिक रूप पूर्णतः व्यवस्थित नहीं हुआ था । हाँ, मीरा के भक्ति जीवन के प्रत्यूष में ही चैतन्य की 'भक्ति' के सामान्य रूप का विशेष प्रचार हो गया था । अतः मीरा पर अचिंत्य

भेदाभेदवाद की दार्शनिक चिंतन का नहीं, सामान्य चैतन्य भक्ति के आन्दोलन का प्रभाव हो सकता है ।"[136] दूसरी बात इस संबंध में विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि गौड़ीय संप्रदाय में उल्लखित भक्ति का प्रमुख संदर्भ है ब्रजेन्द्र कृष्ण की आराधना। उनका धाम वृन्दावन है। ब्रज की गोपियों के द्वारा की गई उपासना ही साधकों के लिए माननीय प्रमाणिक उपासना है। श्रीमद्भगवत निर्मल प्रमाण शास्त्र है, जिसमें प्रेम को ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ बताया गया है। इस संदर्भ में यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'गोपिन की प्रीति रीति' निभाने वाली और कान्ताभाव से गिरिधर को भजेने वाली प्रेम वियोगिनी मीरा की भक्ति पूर्ण रूपेण ऊपर वर्णित गौड़ीय संप्रदाय की भक्ति की तरह है । यह भी गौर तलब है कि चैतन्यपूर्व आचार्यों ने चार पुरुषार्थ माने थे किन्तु चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं पाँचवें पुरुषार्थ के रूप में 'प्रेम' की प्रतिष्ठा की। निश्चित रूप में मीरा की समस्त भक्ति इसी 'प्रेम' रूपी पुरुषार्थ का प्रतिरूप है। पूर्व सूचित है कि गोपियाँ इस प्रेम का स्वरूप हैं । उनका गोपी भाव चरम रूप में महाभाव या राधाभाव कहलाता है। इस संदर्भ में डा. प्रभात ने मीरा की प्रेमभक्ति को गौड़ीय दर्शन की गोपियों के महाभाव के आधार पर 'मीराभाव' की भक्ति कह डाला है।[137] अतः मीरा की प्रेमभक्ति बहुत मात्रा में गौड़ीय दर्शन की भक्ति से प्रभावित थी।

यह बताया जाता है कि मीरा कृष्ण को अपना पति समझा करती थीं। कहने का अभिप्राय यह है कि वह स्वयं को 'राधा' मानती थीं। इसीलिए उनके पदों में प्रेम का इतना अमल–निरंजन रूप हमें मिलता है तथा भावों में इतनी अंतरंगता, मार्मिकता तथा हृदयावर्जकता उपलब्ध होती है। सच तो यह है कि मीरा की भक्ति राधाभाव की थी किन्तु राधा विषयक उक्ति उनकी रचना में नहीं के बराबर मिलती है। एक जगह पर मीरा ने वृषभानु तनुजा राधा की बात कही है –

"भली जु बनी वृषभानु नंदिनी प्रात समि रण जीते आवे।
मुख परे स्वेद अलक लर छूटी मधुरी चालि गजगति लजावती।।
मोहन छले छबीले नागर सूरत ही डोरीया झुलत गावे।
छोउ सुभट रणखल महारस त्रासत मदन ठोर नहिं पावे ।
हरी के नख रुचि उदय विराजीत बिन तारावली हार देखावत।
मीराँ प्रभु गिरिधर छबी निरखत वदन कोटि रवि जोति लजावत।।"[138]

मीरा का उपर्युक्त एक ही ऐसा पद मिलता है, जिसमें कृष्ण–राधा की रति का वर्णन है। ध्यातव्य यह है कि गौड़ीय दर्शन में माधुर्य भाव की रति तीन प्रकार की मानी गई है। (1) साधारणी (2) समंजस्या (3) समर्था। पहली दो रतियों के उपासकों में यद्यपि कुछ न कुछ 'स्वसुख' की झलक देखने को मिली है किन्तु तीसरी प्रकार की रति के उपासक में केवल 'तत्सुख' की भावना भरी रहती है । यानी समर्था रति के उपासक का एक मात्र लक्ष्य होता है, भगवत् आनंद की प्राप्ति। हम गौड़ीय दर्शन वाले अध्याय में इस ओर संकेत कर चुके हैं। इस समर्था रति का सच्चा उदाहरण गोपिका है। हमने ऊपर भी यह बताया है कि इस समर्था रति की अंतिम अवस्था 'महाभाव' कहलाता है। गौड़ीय दर्शन में बताये गये राधा के स्वरूप के आधार पर यह कहा जाना स्वाभाविक लगता है कि "मीरा की राधा का रूप और राधा–कृष्ण की रति की व्यंजना करने वाले अनुभावों का चित्रण गौड़ीय संप्रदाय के राधाभाव से बहुत कुछ मिलना जुलता है।"[139]

स्मरणीय है कि राधा को भक्ति के क्षेत्र मपरकीया रूप की स्थापना गौड़ीय संप्रदाय के आचार्यों ने की थी। किन्तु अन्य संप्रदाय के आचार्यो ने संपूर्ण रूप में राधा को स्वकीया माना है। ध्यातव्य है कि बहुत सारे द्वन्द्वों के बावजूद मीरा की भक्ति को राधावल्लभ संप्रदाय के भक्त कवि ध्रुवदास की भक्ति के समानान्तर माना गया है। ध्रुवदास की भक्ति में सखीभाव प्रमुख था और 'राधा' स्वकीया थी। यहाँ यह नम्र निवेदन है कि मीराबाई की भक्ति गौड़ीय दर्शन की तरह गोपीभाव की थी न कि ध्रुवदास के सखीभाव की तरह। मीरा की भाव रचना का विश्लेषण करने से यह सिद्ध होता है कि उनकी समस्त भावयात्रा परकीया से प्रतिछायित रही है। अतः उनके संबंध में के. रामनाथन यह कहते हैं कि "परकीया भाव और उसकी निश्छल साधना का प्रतीक राजस्थान की जाह्नवी यही मीरा है।"[140]

मीराबाई चैतन्य महाप्रभु की तरह कीर्तन करते–करते कृष्ण भाव–विह्वलित हो जाया करती थीं। अतः चैतन्य भक्ति की मधुर विह्वलता और तन्मयी आवेश पूर्ण प्रीति मीरा को हाई थी। इस संदर्भ में यह बताना समीचीन लगता है कि डा के.एम.मुंशी ने अपनी प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक में मीराबाई की भक्ति पद्धति पर चैतन्य संप्रदाय का प्रभाव स्वीकार किया है।[141] डा. सावित्री सिन्हा ने मीराबाई के जीवनवृत्त तथा रचनाओं का परिशीलनोपरांत यह निष्कर्ष दिया है कि "मीराबाई की माधुर्यभक्ति महाप्रभु चैतन्य देव की माधुर्य भक्ति के अधिक

सन्निकट थी और उनका अंतस्तल चैतन्य, रूप, जीव आदि की प्रेमलक्षण भक्ति से सुवासित था।"[142]

निष्कर्ष रूप में मीरा के बारे में यह कहा जा सकता है कि जिसने जो भी माना हो, मीरा की भक्ति तथा उसका भक्तरूप महप्रभु चैतन्यदेव से संपूर्ण रुप में प्रभावित था। सचमुच श्रीकृष्ण प्रेम में मीरा पगी हुई थीं। उन्होंने भाव–मंजीर से जो कीर्तन किया वह कीर्तनियों में भी अद्वितीय है। पहले श्रीकृष्ण चैतन्य की कीर्तन शैली के बारे में सांगोपांग वर्णन किया जा चुका है । कहा जाता है चैतन्य महाप्रभु का व्यक्तित्व स्वयं में संकीर्तन है। कीर्तन को भक्ति के क्षेत्र में उच्च स्थान देने में महाप्रभु ही सर्वमान्य है। ध्यातव्य है कि उनसे पूर्व, भक्ति में कीर्तन की बात थी किन्तु उसकी प्रधानता या विशिष्टता भक्त समाज के लिए अछूत थी। महाप्रभु गौरांग ने उसे सर्वजन हिताय तथा कृष्ण प्राप्ति के परम साधन के रूप में जन–जन से परिचित कराया था। इसके साक्षी स्वयं महाप्रभु द्वारा रचित 'शिक्षाष्टक' के छंद हैं।

मीरा भी महाप्रभु चैतन्यदेव की तरह कीर्तन करते–करते भावयोग में लीन हो जाती थीं। उनके समक्ष कृष्ण के सिवा 'दूसरो न कोई' था। मीरा के कुछ ऐसे भाव प्रवण पद उपलब्ध हैं, जो महाप्रभु के कीर्तन से समानता रखते हैं –

"मेरा मन रामहि राम रटै रे।
राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।
जनम–जनम के खत जो पुरानें, नामहि लेत कटै रे।
कनक कटोरे इम्रत भरियो, पीवत कौन नटै रे।
मीरा कहै प्रभु हरि अविनासी, तन–मन ताहि पटै रे।।"[143]

दूसरा देखिए–

"राम नाम रस पीजै मनुआँ राम नाम रस पीजै।
तज कुसंग सत्संग बैठ नित हरि चरचा सुनि लीजै।।
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ बहा चित्त से दीजै।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, ताहि के रंग में भीजै।।"[144]

अतः मीराबाई के प्रेम भक्ति सागर में कीर्तन, भक्त मन को शीतलता पहुँचाने वाली हिलोरें थीं, जिनके पावन गायन से भक्त क्या स्वयं मीराबाई भावरूप आनंद सागर में डूब जाती थीं। यहाँ पर आपके मन में यह शंका जरूर उठ रही होगी कि मीरा तो कृष्ण दिवानी भक्त थीं,

उन्होंने राम नाम को क्यों महत्ता दी ! ध्यान रहे कि यहाँ 'राम' भगवत् नाम का सार है। महाप्रभु चैतन्य भी राम का नाम इस प्रकार लेते हैं –

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।।"

कृष्ण और राम तो एक ही विष्णु के अवतारी पुरूषों के नाम हैं। वैष्णवों का लक्ष्य तो विष्णु की स्तुति करना है; चाहे कृष्ण के माध्यम से हो या राम के माध्यम से। इस संदर्भ में यह माना जाता है कि रैदास, जो रामभक्त थे, मीराबाई के प्रमाणित गुरु थे तथा तुलसी दास के समकालीन होने के नाते उनसे तुलसी दास से पत्राचार होने की बात कही जाती है। अंततः कीर्तन के क्षेत्र में मीराबाई ने जो भाव विह्वलित पद रचे हैं, उन पर कुछ ही अंश में महाप्रभु चैतन्य का प्रभाव हो सकता है।

2 – कृष्ण भक्ति कवि रसखान

सचमुच क्या जादू है साहित्य में, जो धर्म के भेदभाव को भूला देता है। सैयद इब्राहिम के जीवन में ऐसा ही एक परिवर्तन ला दिया था साहित्य ने । आज जिन्हें हम 'रसखान'के नाम से जानते हैं वे और कोई नहीं सैयद इब्राहिम ही है । इन्होंने भागवत का फ़ारसी अनुवाद में गोपीप्रेम प्रसंग पढ़कर कृष्णभक्त बनने की ठान ली थी और तभी से रास रसिक नंद नंदन से मिलने के लिए उनके कवि हृदय की बीन बज उठी थी । दूसरे शब्दों में कहें तो ब्रज में लीलाविहारी श्रीकृष्ण के लोक रंजक चरित्र ने इन्हें अपनी ओर खींच लिया था और इनका लौकिक प्रेम श्रीकृष्ण प्रेम में परिवर्तित हो गया था । ब्रज रज के मस्तक से स्पर्श होते ही, भगवती कालंदी के जल की शीतलता के स्पर्श–सुख से तथा उन्मत्त समीर के मंद कंपन की अनुभूति से सैयद इब्राहिम अपनी सुध–बुध खो बैठे थे। ब्रज के रसमय वातावरण ने उनके कंठ में भक्ति की मधुर तान भर दी थी और तब वे रस की खान यानी 'रसखान' हो गये थे।

रसखान मध्ययुगीन भक्त कवि हैं। पं बलदेव उपाध्याय ने उन्हें निम्बार्क संप्रदायी बताया है।[145] किन्तु दूसरी तरफ अनेकानेक लेखकों ने उनके दीक्षागुरु वल्लभ संप्रदाय के श्री विट्ठल नाथ को बताया है।[146] विद्यानिवास मिश्र का मानना है कि रसखान मूलतः प्रेम दीवाने हैं। प्रेम ही उनके इह लोक और परलोक का लक्ष्य है।[147]

रसखान की गहन प्रेमानुभूति ही भक्ति के मूल में है। भक्ति के शास्त्रीय पक्ष से वे दूर थे। प्रेम ही उनके जीवन यात्रा का मूल मंत्र है। रसखान की प्रेमानुभूति तथा प्रेमाभिव्यक्ति, पंक से निकली बेदाग और उदात्त कमलिनी की तरह है। अगर रसखान के काव्य 'सुजान रसखान' तथा 'प्रेम वाटिका' का विहंगम अनुशीलन किया जाए तो यह स्पष्ट चित्र देखने को मिलता है कि वे एक अलौकिक प्रेम के सफल चितेरे हैं। उनके राधा–कृष्ण प्रेम के आलंबन हैं, प्रेम वाटिका के मालिन और माली हैं –

"प्रेम अयनि श्रीराधिका, प्रेम–बरन नंदनंद।
प्रेम वाटिका के दोऊ, माली–मालिन–द्वन्द्व ।"[148]

रसखान स्वयं मीरा तथा महाप्रभु चैतन्य की तरह आंतरिक भाव से प्रेरित थे। उनका प्रेम एक सच्चे भक्त का प्रेम है।

भक्ति सें ज्ञान और कर्म नीचे हैं। पहले यह दर्शाया गया है कि गौड़ीय दर्शन की भक्ति से ज्ञान और कर्म निश्चित रुप से नीचे हैं । इसका प्रमाण रुप गोस्वामी कृत 'हरिभक्ति रसामृतसिंधु' में मिल जाएगा। इसमें आचार्य जी ने बताया है कि –

"अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यना वृत्तम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा।।"

यहाँ यह निवेदन किया जाता है कि रसखान भी रूप गोस्वामी की भाँति ज्ञान–कर्म को भक्ति से नीचा मानते हैं –

"ज्ञान, कर्म अरू उपासना, सब अहमिति को मूल ।
दृढ़ निश्चय नहिं होत–बिन, किए प्रेम अनुकूल।।"[149]

अर्थात् रसखान ने प्रेम को ज्ञान, कर्म तथा उपासना विधि से परे, यानी श्रेष्ठ माना है। दूसरी बात रसखान के संबंध में यह कही जाती है कि वे वल्लभ संप्रदायी गोस्वामी विट्ठलनाथ से प्रभावित थे। इस संबंध में स्मरणीय है कि विट्ठलनाथ गौड़ीय गोस्वामी रूप, सनातन,जीव आदियों से प्रभावित थे। अतएव इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि रसखान भी गौड़ीय गोस्वामियों से प्रभावित हुए होंगे। तीसरी बात यह है कि जिस समय रसखान वृन्दावन पधारे थे, उस समय वृन्दावन गौड़ीय गोस्वामियों का गढ़ माना जाता था और रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी आदि भक्ति संबंधी ग्रंथों की रचना कर रहे थे।

रसखान की भक्ति सूर की भक्ति की तरह माधुर्य भक्ति मानी जाती है। माधुर्य भक्ति के तीन प्रमुख अंग माने जाते हैं – रूप वर्णन, विरह वर्णन तथा आत्मसमर्पण। विद्यानिवास मिश्र ने उपर्युक्त माधुर्य भक्ति के सारे अंग रसखान के काव्य में पाये जाने की बात कही है और परोक्ष रूप से सूरदास की माधुर्य भक्ति से प्रभावित होने की सूचना भी दी है।[150] इस संदर्भ में पहले बताया जा युका है कि सूरदास की माधुर्य भक्ति पर गौड़ीय दर्शन का प्रभाव है। और सूरदास की माधुर्य भक्ति के संदर्भ में जहाँ तक विरह वर्णन की बात है, सूरदास के विरह पदों पर गौड़ीय दर्शन का प्रभाव है। अतएव यह निश्चित है कि चाहे प्रत्यक्ष रूप में न हो, बल्कि परोक्ष रूप में रसखान की माधुर्य भक्ति संबंधित पदों पर गौड़ीय दर्शन का प्रभाव माना जाना चाहिए।

प्रेमस्वरूप ने रसखान के इस परिकल्पना के अंतर्गत यह बताया है कि "रसखान ने जैसा प्रेम–तत्व का निरुपण किया है वैसा केवल राधावल्लभ संप्रदाय के कवियों में, विशेषतः श्रीध्रुवदास में पाया जाता है। रसखान और ध्रुवदास के इस निरुपण को मिलाने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि रसखान ध्रुवदास जी से ही प्रेम–तत्व का निरुपण लेते हैं।"[151] साथ–साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि रसखान ने राधावल्लभीय प्रेम–निरुपण को ग्रहण करके भी उसे, उसी रूप में स्वीकार न कर अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। अतः उन्हें राधावल्लभीय भक्त नहीं माना जा सकता। यहाँ निवेदन यह किया जाता है कि प्रेमतत्व की दृष्टि में राधावल्लभ संप्रदायियों ने निकुंज रस के अंतर्गत सहचरी–प्रेम यानी सखी प्रेम को गोपी प्रेम से आदर्श बताया है। किन्तु रसखान ने मुक्त कंठ ने गोपी प्रेम को आदर्श ठहराया है जिस गोपीप्रेम को गौड़ीय दर्शनान्तर्गत आदर्श ठहराया गया है। अतएव इस प्रेम भाव की समानता के आधार पर यह कहा जाना स्वाभाविक हो जाता है कि रसखान किसी न किसी रूप में गौड़ीय दर्शनाचार्यो से प्रभावित थे। अब देखिए रसखान गोपीभाव युक्त पद –

"जदपि जसोदानंदन अरु ग्वालबाल सब धन्य।
पै या जग में प्रेम को गोपी भई अनन्य।।"[152]

कुल मिलाकर रसखान का भक्ति रस मधुर रस था और भाव, गोपी भाव । पूर्व सूचित है कि उन्होंने वल्लभ संप्रदाय के श्री विट्ठलनाथ से दीक्षा ली थी और इस संदर्भ में पहले यह भी बताया गया है कि श्रीविट्ठलनाथ पूर्ण रूपेण चैतन्य संप्रदाय के भक्ति तत्वों से प्रभावित थे।

अतः यह कहना युक्तियुक्त होगा कि रसखान भले ही प्रत्यक्ष रूप में चैतन्य संप्रदाय से प्रभावित न हो परंतु परोक्ष रूप में अवश्य हुए हैं ।

5.2 रामभक्ति संप्रदाय के कवि और गौड़ीय संप्रदाय

पहले हम इस ओर संकेत कर चुके हैं कि चैतन्य महाप्रभु की भक्ति का जादू मूलतः उस समय के समस्त भक्तों पर छाया हुआ था। महाप्रभु की भक्ति ने समस्त भक्तों के मन को कलुष मुक्त कर धौतपूत बना दिया था। हम यह भी कह चुके हैं कि गौड़ीय दर्शन का प्रभाव मुख्यतः कृष्णभक्ति संप्रदायों पर है और गौणतः रामभक्ति संप्रदायों पर। जहाँ तक, राम भक्ति संप्रदाय पर गौड़ीय संप्रदाय के प्रभाव की बात है तो उस संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि तुलसीदास अष्टछाप के समकालीन थे और यहाँ पर यह निवेदन किया जाता है कि जब अष्टछाप के आचार्य तथा कवि गौड़ीय दर्शन से प्रभावित थे तब उनके समकालीन तुलसीदास भी गौड़ीय दर्शन के भक्ति तत्वों से प्रभावित हुए होंगे । इसका ज्वलंत साक्षी तुलसीदास की रचनाएँ हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि तुलसी दास ने कृष्णभक्ति संबंधी रचना भी रची है और 'कृष्ण गीतावली' उसका एक अच्छा उदाहरण है।

गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति गौड़ीय संप्रदाय की तरह मधुरा भक्ति थी। किन्तु तुलसीदास की मधुराभक्ति दास्य भक्ति के अंतर्गत थी। अतः यह मानना होगा कि राम का रूप कृष्ण के समान मधुर भक्ति रस के अनुकूल नहीं था। उपासकों की मधुर भावना को जो उत्संग–उद्दीप्तता कृष्ण की विविध माधुरियों से मिलता है वह राजीवलोचन राम के भोलेपन से नहीं। जो भी हो, "रामभक्ति की मधुरोपासना पर प्रत्यक्षतः कृष्ण भक्ति संप्रदायों का प्रभाव था, उसमें चैतन्य और उससे प्रेरित सखी भावोपासक राधावल्लभ संप्रदाय और निम्बार्क संप्रदाय का प्रभाव था।"[153] इस संदर्भ में नरेश चन्द्र वंसल जी ने यह बताया है कि रामभक्ति में मधुरोपासना का संप्रदाय रूप में उद्भव तो निश्चित रूप से कृष्णभक्ति की मधुरोपासना का परवर्ती था। उन्होंने डॉ. करुणापति त्रिपाठी के मत को स्वीकारते हुए यह लिखा है कि " श्री करुणापति त्रिपाठी ने ठीक ही कहा है कि रामभक्ति शाखा में मधुरोपासना का साम्प्रदायिक स्तर पर प्रवेश कृष्णभक्ति की मधुरोपासना के बाद की चीज है।"[154]

मुख्यतः दास्य भाव की भक्ति में श्रृंगार की मात्रा कम् होती जाती है। तुलसीदास की भक्ति भावना में दास्य भक्ति प्रमुख होने के कारण इनके रामकाव्यों में राम के सौंदर्यशील की परिधि संकुचित हुई दृष्टिगोचर होती है। अतः उस समय चैतन्य संप्रदाय की माधुर्य पगी और रसलुप्त प्रेमभक्ति ने राम की ओर भक्तों को संप्रेषित किया । नरेशचंद्र बंसल जी ने 'रासरसर्वस्व' के आधार यह बताया है कि कृष्ण की रासलीला तुलसीदास के बाद के रामक्त कवि अग्रदास को प्रिय थी। उक्त कृति में इस संदर्भ में एक पद प्राप्त होता है –

"अद्‌भुत आनंद आज भयो।

रास अनुकरण ब्रजवासिन मिलि कोनों मो चित्त लाभ भयो।"[155]

अतः अग्रदास की रामभक्ति उपासना शैली मुख्यतः सखीभाव की थी न तो तुलसीदास की तरह दास्य भाव की। ध्यातव्य है कि अग्रदास जी की पदावली में माधुर्यभक्ति न सिर्फ रामभक्ति संप्रदाय तक सीमित थी बल्कि कृष्णभक्ति का गुणगान भी उन्होंने किया है।[156] इस संदर्भ में डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने विश्वास के साथ यह कहा है कि "हिन्दी साहित्य की राम–भक्ति धारा के रसिक भक्तों पर अप्रत्यक्ष रूप से चैतन्य संप्रदाय के आचार्यो की चिंतन पद्धति और भाव साधना विषयक साहित्य का प्रभाव पड़ा है।"[157] अगर तुलसी की नवधा भक्ति विषयक पदों को आधार बनाया जाएगा तो इनमें भी गौड़ीय संप्रदाय के परोक्ष प्रभाव की झाँकी मिल पाएगी। ध्यान रहे कि गौड़ीय संप्रदाय के दर्शन में भागवत में वर्णित नवधा–भक्ति को स्वीकारा गया है किन्तु 'कीर्तन' को प्रमुखता दी गई है। तुलसी दास ने भी गौड़ीय दर्शन में वर्णित कीर्तन के तत्वों के समान भाव वाले पद लिखे हैं जो अग्रलिखित हैं–

"कलियुग जोग न जन्य न ज्ञाता। एक आधार राम गुन गाता।।

सब भरोस तजि जो भजि रामहिं। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं ।।

सोई भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रकट कलि माहीं।"[158]

ध्यातव्य है कि तुलसी राम से, राम 'नाम' को महाप्रभु चैतन्यदेव की तरह विशिष्ट तथा श्रेष्ठ मानते थे । 'विनय पत्रिका' में उन्होंने यह बताया है कि[159] –

"राम राम रमु, राम राम रटु, राम नाम जपु जीहा।"

तथा –

"राम जपु राम जपु राम जपु बावरे।

घोर भव तीर निधि नाम निजु नाव रे।"

तुलसी की दार्शनिक विचारधारा के अनुशीलनोपरांत यह ज्ञात होता है कि तुलसी के विचार गौड़ीय दर्शन में वर्णित दार्शनिक विचारों से भिन्न नहीं है । उनके एक पद में वर्णित माया और जीव का वर्णन देखिए –

"मम माया संभव संसारा।

जीव चराचर विविध प्रकारा।

सब मम प्रिय सब मम उपजाते।।"[160]

स्मरणीय है कि गौड़ीय दर्शन में जैसे आत्मा को अविनाशी माना गया है तथा यह कहा गया है कि माया बंधन में पड़ा जीव, कृष्ण को पा जाय तो उसके कष्ट मिट जाते हैं। तुलसीदास भी वैसा ही कहते हैं –

"सद्गुरू बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न विषय कै आसा।

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धामति पूरी।

येहि बिधि भलेहि कुरोग नसाहीं। नाहिं न जतन कोटि नहिं जाहीं।।"[161]

तुलसीदास फिर यह कहते हैं कि ईश्वर जीव में कुछ भेद नहीं है फिर भी माया कृत एक झूठा भेद ज्ञात होता है। ईश्वर के समान यह जीव नित्य है और जन्म–मरण के बंधन में नहीं पड़ता। जीव चेतन है, वह प्रत्येक घट में है। घट उत्पन्न होता है और फिर नष्ट हो जाता है परन्तु चेतन जीव नित्य ही रहता है – जिस प्रकार प्रत्येक घट में सूर्य का प्रकाश रहता है। किन्तु उस घट के नष्ट हो जाने पर सूर्य नष्ट नहीं होता, वह नित्य ही रहता है। ईश्वर का अभिन्न अछेद्य रूप जो है, वही सब घटों में एक रूप से स्थित है। जो आत्मा इन्द्रियों को चेतन करती है, वह ईश्वर का ही रूप है –

"छिति जल पावक गगन समीरा।

पंच रचित अति अधम सरीरा।

प्रगट सो तनु सब आगे सोवा।

जीव नित्य के हि लगि तुम्ह रोवा।"[162]

जीव के मायावश और मायाधीश के बारे में गौड़ीय दर्शनाचार्य यह बताते हैं कि –"मायाधीश मायावश ईश्वरे जीव भेद।"[163] इसी से युक्त पद तुलसीदास ने भी रचे हैं।"[164]

जहाँ गौड़ीय दर्शन में परकीया भाव को प्रधानता दी गयी है वहाँ रामभक्ति संप्रदाय में दास्यभाव और सख्य भाव को। कृष्णदास कविराज यह कहते हैं –

"रागानुगा मार्गे तारे भजे जेइ जन।

सेई जन पाय ब्रजे ब्रजेन्द्रनंदन।।"[165]

वहाँ तुलसीदास ने उसी भाव की बात कही है किन्तु थोड़ी भिन्नता के साथ –

"सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।

भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त विचारि।।"[166]

ध्यातव्य है कि गौड़ीय संप्रदाय में भक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है यानी ज्ञान और कर्म से भक्ति को श्रेष्ठ माना गया है ।[167] कहा गया है कि भक्ति की प्राप्ति के पश्चात् ज्ञान और कर्म उसके अधीन हो जाते हैं। ठीक उसी प्रकार की घोषणा रामभक्त कवि तुलसी दास ने की है – "तेहि अधीन ज्ञान विज्ञाना।"[168] अतः ज्ञान भक्ति के सामने तुच्छ और बेकार है। जितने भी भक्त हैं उनकी भक्ति के कारण भगवान उनके वश में हो जाते हैं। भक्ति से युक्त नीच से नीच प्राणी भी भगवान के लिए प्रिय है। ध्यान रखें कि उपर्युक्त बात निश्चित रूप में तुलसीदास ने परोक्ष रूप में गौड़ीय दर्शन से अनुप्राणित होकर कही है । तुलना करके देखिए –

"दास्य सख्य वात्सल्य श्रृंगार चारि रस

चारि भावे भक्त जन कृष्ण तार वश ।"

(चै. च. आदिलीला, परि 3, पृ.17)

अब देखिए तुलसी दास का पद –

"भगतिवंत अति नीचौ प्रानी।

गोहिं प्रान प्रिय असि मम बानी।" (रा.च.मा. 3/ 86 पृ. 536)

अंततः तुलसीदास ने भगवत प्रेम को ही भगवान की प्राप्ति का सच्चा साधन बताया है। यह महाप्रभु चैतन्य की भी अपनी विशेषता है। गौड़ीय दर्शनान्तर्गत, इस प्रेमभक्ति के वर्णन पर ज्यादा जोर दिया गया है। तुलसीदास कहते हैं कि योग जप, दान, तप इत्यादि के रहते हुए भी राम उस पर उतनी कृपा नहीं करते जितनी उस पर करते हैं जो केवल प्रेम करता है। इसलिए जो चतुर हरि भक्त हैं वे मुक्ति का निरादर करके भक्ति की ओर उन्मुख होते हैं –

"उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम।

राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम।।"[169]

उन्होंने गौड़ीय आचार्यों की तरह प्रेमभक्ति जल के बिना, मन का मैल नहीं जाने की बात कही है –

"प्रेम भगति जल बिनु खगराई।
अभिअंतर मल कबहुं न जाई।।"[170]

उपर्युक्त विशद वर्णनोंपरांत यह कहा जा सकता है कि रामभक्ति काव्यों में माधुर्य भक्ति आदि का वर्णन गौड़ीयाचार्यो का प्रभाव माना जाना चाहिए । वास्तविकता यह है कि रामभक्ति शाखा की रसिक धारा ने वृन्दावन के इस संप्रदाय की रस पद्धति और उपासना विधि को अनेक रूप में अपनाया था। डा. भगवती प्रसाद सिंह और डा. माधव अपनी पुस्तकों में इस ओर संकेत करते हैं। डा. माधव ने अपनी पुस्तक 'रामभक्ति साहित्य में मधुरोपासना' में चैतन्य संप्रदाय द्वारा निरूपित रस–सिद्धान्त के आधार पर राम भक्ति की मधुरोपासना का जो विवेचन तथा मूल्यांकन किया है । इससे ज्ञात होता है कि राम भक्ति शाखा की रसिक काव्यधारा का रस–सिद्धान्त चैतन्य संप्रदाय का अनुवर्ती था।[171] डा. बसंल ने भी डा. माधव की पुस्तक के आधार पर यह बताया है कि दोनों संप्रदायों की माधुर्य भक्ति, सखाओं और सखियों के भेद, यूथेश्वरियों की कल्पना, एवं युगल विलास लीलाओं के वर्णन में बड़ी एक रूपता है।"[172]

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि तुलसीदास ने 'कृष्ण गीतावली" में मधुर रस की परिकल्पना की है। भले ही यह मधुर रस की परिकल्पना इतनी उन्मुक्त नहीं, इतनी स्वच्छन्द नहीं है, फिर भी उनकी पूर्व रचनाओं से थोड़ी आगे बढ़ी हुई जरूर नज़र आती है ।

'कृष्ण गीतावली' के श्रृंगार वर्णन में थोडी रसिकता दृष्टिगोचर होती है। इस संदर्भ में प्रेमस्वरूप यह कहते हैं कि "तुलसी के सामने कृष्णभक्ति के विविध मधुर संप्रदायों की मधुर–भक्ति की धारा प्रवाहित हो रही थी। तुलसी जहाँ वात्सल्य के चित्रण में कृष्ण काव्य से प्रभावित हुए, वहाँ माधुर्य चित्रण में भी कृष्ण काव्य की मधुर धारा से प्रभावित हुए ।"[173] अतः यहाँ यह विश्वास किया जा सकता है कि तुलसी गौड़ीय दर्शन की मधुराभक्ति से प्रभावित हुए होंगे। क्योंकि जिस समय तुलसी रचनाएँ रच रहे थे उस समय वृन्दावन ही गौड़ीय गोस्वामियों के मार्धुर्य रस का सरोवर सा था। स्मरण कराएँ कि 'कृष्ण गीतावली' में तुलसी ने गोपी विरह को कृष्णभक्ति के सूरदास के 'भ्रमरगीत' के समान चित्रित किया है, हो सकता है कि उन पर गौड़ीय दर्शन के प्रभाव संभव हो । पहले हमने बताया है कि 'माधुर्य रस' के

लिए तुलसी कृष्ण भक्ति संप्रदायों से प्रभावित हैं । दूसरी बात यह है कि सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' में वर्णित विप्रलम्भ श्रृंगार पर गौड़ीय दर्शन का प्रभाव है। 'कृष्ण गीतावली' में वर्णित विरह वर्णन का भाव सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' के भाव सा लगता है । इसमें सूरदास के विरह वर्णन की भॉति तुलसी ने विरह का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है –

"ऊधो! प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुःख दीन ?
सुनत समुझत कहत हम सब भईं अति अप्रबीन।।
अहि कुरंग कंज चकोर चातक मीन।
बैठ इनकी पांति अब सुख चहन मन मतिहीन।
निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न।
दास तुलसी सोच नित प्रेम जानि मलीन।।"[174]

दूसरा पद देखिए, जिसमें तुलसीदास की विरह–गोपिकाएँ उद्धव को कहती हैं –

"ऊधौ या ब्रज की दशा विचारो।
ता पाछे यह सिद्धि अपनी जौगकथा विस्तारों।"[175]

कहते हैं कि सच्ची प्रियतमा अपने प्रिय की प्राप्ति हेतु सर्वस्व त्यागने को तैयार रहती है । रास्ता कितना भी दुर्गम क्यों न हो, उस पर चलने को उद्यत हो जाती है। यही दशा आज तुलसीदास की विरहिणी गोपियों की है। ये कृष्ण को निकट पाने के लिए सब कुछ सहने को तैयार हैं । यहाँ तक कि कूबरी को भी वृन्दावन में ला सकती हैं, जिससे कि कृष्ण मथुरा छोड़कर यहाँ आ जावें –

"सब मिलि साहस करिय सयानी।
ब्रज आनियहिं मनाइ पायँ परि कान्ह कूबरी रानी।
बसैं सुवास, सुपास होहिं सब फिरि गोकुल रजधानी।
महरि महर जीव हिं सुख जीवन खुलहिं मोद मनि खानीं।
तजि अभिमान अनख अपनो हित कीजिय मुनिबर बानी।
देखिबो दरस दूसरे हुँ चौथेहुँ बडो लाभ, लघु हानी।
पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी।
तुलसी सो तिहुँ भुवन गायबी नंदसुवन सनमानी।।"[176]

डा बंसल ने रामभक्त उपासकों के गौड़ीय दर्शनाचार्यो से प्रभावित होने के संबंध में एक महती सूचना दी है। उन्होंने यह बताया है कि रामभक्ति में 'महाभाव' का शास्त्रीय निरुपण 'प्रीति पंचासिका' में मिलता है।

पूर्व कथित है कि मंजरी उपासना गौड़ीय संप्रदाय की अनोखी सूझ है। रामभक्ति संप्रदाय के भक्त रामचरणदास ने अपने पट्ट शिष्य युगलप्रिया जी को चौसठ तत्वों का उपदेश दिया था। अंततः इन पर गौड़ीय दर्शनाचार्य श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी और रूप गोस्वामी के क्रमशः 'हरिभक्ति विलास' तथा 'भक्तिरसामृत सिंधु' का प्रभाव माना जाता है।[177] यही नहीं शोड़ष मंजरी भावोपासना का जो आख्यान यहाँ संगठित हुआ है उनमें चैतन्य–संप्रदाय की मंजरी भावना ही नहीं ; रस मंजरी, गुण मंजरी, रति मंजरी जैसे मंजरी नामों की उद्धरणी भी कर दी गई है। यहाँ तक कि ग्रन्थों का नाम भी चैतन्य संप्रदाय के प्राचीन ग्रन्थों का अनुकरण मात्र है। कृपानिवास जी कृत 'रामरसामृत सिंधु' रूप गोस्वामी कृत 'भक्तिरसामृत सिन्धु के अनुकरण पर रखा गया ज्ञात होता है।[178] डा. माधव ने रामभक्ति संप्रदाय के आचार्यो पर संपूर्ण रूप से गौड़ीयाचार्यो के प्रभाव को स्वीकारा है और यहाँ तक कह डाला है कि "चैतन्य संप्रदाय की साधना में जो स्थान जीव गोस्वामी का है और जिस प्रकार जीव गोस्वामी ने भक्ति, प्रीति आदि षट् संदर्भ द्वारा चैतन्य वैष्णव साधना के रहस्य का उद्घाटन एवं विश्लेषण किया है, ठीक उसी पद्धति पर छह संदर्भो का विशद ग्रंथ मधुराचार्य जी ने लिखा है।"[179] ध्यान रहे कि मधुराचार्य जी द्वारा वर्णित सखी, दासी व्याख्यान, गौड़ीय संप्रदाय की मान्यतानुसार है। दूसरी बात यह है कि गौड़ीय संप्रदाय की अष्टयाम सेवा भावना तथा मानसी सेवा भावना का भी यथावत् अनुकरण, मधुराचार्य जी की रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। यहाँ विचारणीय यह है कि डा. गोपीनाथ कविराज ने रामभक्ति की रस साधना को रूप–सनातन गोस्वामी की रस साधना से प्रेरित बताया है।[180]

डा. बंसल ने यह खोज निकाला है कि स्वामी जनक राज किशोरी शरण 'ससिक अली' कृत 'सिद्धान्त मुक्तावली' अष्टयाम भावना और रस साधना का प्रमुख ग्रन्थ है। इस कृति में जो उद्धरण मिलते हैं उससे 'भक्तिरसामृतसिंधु का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है –

"भाव भक्ति तब जानिये यह जिय होय सुभाय।
क्षमा विरक्ति अमानता काल वृथा नहिं जाय।।
मिलन आसरजु वद्ध चित पुनि उत्कंठा जान।

आसक्ति सद्‌गुण कथन प्रीति बसत अस्थान।।
नाम गा (न) में रचि सदा नवलक्षण होई।
सिय रघुनंदन मिलन को अधिकारी लखु सोई।।"[181]

(सिद्धान्त मुक्तावली)

तुलना कीजिए–

"क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।
आशाबंधः समुत्कंठा नाम गाने सदा रुचिः।"[182]

रामभक्ति संप्रदाय के विस्तारपूर्वक वर्णनोपरांत यह कहा जा सकता है कि रामभक्ति संप्रदाय में तुलसी दास, अग्रदास से लेकर बाद के, 18 वीं शताब्दी तक के रामभक्त कवियों पर गौड़ीय दर्शनाचार्यो का प्रभाव निश्चित रूप में रहा है। यह हम नहीं बल्कि रामभक्ति साहित्य के प्रबुद्ध ज्ञाताओं ने स्वीकार किया है।

5.3 अन्य भाषा के कृष्णभक्ति काव्य और गौड़ीय संप्रदाय

1 – उड़िया कृष्ण भक्ति काव्य और गौड़ीय संप्रदाय

भक्ति साहित्य के आरंभ के बारें में इतिहासकारों का मानना है कि भक्ति का आरंभ इस्लाम के प्रभाव के कारण हुआ था । जहाँ तक उड़िया भक्ति साहित्य के साथ महाप्रभु चैतन्यदेव के संबंध की बात है तो उस समय उड़ीसा के चतु:पार्श्व में थी इस्लामिक संस्कृति, जिससे हिन्दू धर्म का लुप्त होना निश्चित था। स्वाधीन हिन्दू राज्य होने के बाद भी उड़ीसा की संस्कृति बौद्ध, ब्राह्मण तथा ब्राह्मणेत्तर आदि अनेक आभ्यंतरीय विवादों में फँसी हुई थी। यह स्थिति केवल उडीसा की ही नहीं थी वरन् पूरे भारतवर्ष की सनातन संस्कृति की स्थिति थी। सनातन धर्म के पतनोन्मुख हो जाने के कारण देश की आम जनता का आध्यात्मिक जीवन शोचनीय हो गया था। इस समय भारत की आम जनताओं के हृदय में नैतिक बल का संचार कराया स्वयं चैतन्य महाप्रभु ने। सनातन धर्म के संकट काल में जैसे स्वयं शंकराचार्य इस भूमि पर आविर्भाव हो कर इसे पावन बनाया था तथा भारतीयों में एकता स्थापित हेतु चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की थी। ठीक उसी तरह चैतन्य महाप्रभु ने भारत में तीन केन्द्र की स्थापना की थी । उत्तर में वृन्दावन , पूर्व भारत के नवद्वीप तथा दक्षिण पूर्व भारत

के नीलाचल पूरी एक–एक केन्द्र स्थल थे । इन तीनों केन्द्रों में धर्म प्रचार का कार्य महाप्रभु के निर्देशानुसार आरंभ हुआ था किन्तु स्वयं महाप्रभु ने नीलाचल को अपना धर्मक्षेत्र चुना था। सत्य तो यह है कि चौदह, पंदारहवीं शताब्दी के अधिकांश वैष्णव आचार्य अपने मत के धार्मिक तथा दार्शनिक तत्वों के प्रचारार्थ नीलाचल पधारे थे। इसके बारें में जानकीवल्लभ महान्ति यह लिखते हैं कि –"During 14th and 15th Century, vaishnavism spread widly in Orissa, Erlier, prominent vaishnava sadhaks like ballabhacharya, Ramanujacharya and others came to Orissa, particularly to Puri to prech their philosophy. In the 16th century came sri chaitanya who stayed in orissa till his death. He played a prominent part in spreading his religious cult in orissa .[183] ध्यातव्य यह है कि आचार्य शंकर ने जहां उडीसा के सिर्फ पुरी धाम को अपनी धार्मिक वाणियों से पवित्र बनाया था, वहाँ महाप्रभु ने उडीसा के संपूर्ण भागों को अपनी पादस्पर्श से पावन बनाया था तथा अपने संकीर्तन से समाज के प्रत्येक स्तर के जन मानस में भक्ति की चिनगारी सुलगाई थी। इस संबंध में जानकीवल्लभ महान्ति ने यह लिखा है कि – "Kindness to animal, devotion to god, name dharma and nama sankirtan are the key notes of the preaching of chaintanya. Universal love i.e. love for all, irrespective of cast and creed is a social reform and democratic ideal at leastin tha age."[184] इसी से आज उड़ीसा की गली–गली में सच्ची प्रेम भक्ति के संकीर्तन की झंकार सुनने को मिल पाती है । उड़ीसा के जन मानस की उस पुराण पुरूष के प्रति श्रद्धा थी। इस श्रद्धा ने 19वीं शताब्दी में जार्ज केनेडी साहब के मन में विस्मय पैदा कर दिया था, जिससे वे कह उठे थे कि – " उड़ीसा श्रीचैतन्य महाप्रभु के प्रति इतनी श्रद्धा तथा विश्वास से उद्‌बोधित है कि आज भी बंगला उड़ीसा की आम जनताओं द्वारा महाप्रभु का नाम ज्यादा सम्मानीय तथा आदृत है ।"[185]

सोलहवीं शताब्दी में चैतन्य देव के साथ ही गौड़ीय वैष्णव धर्म आन्दोलन उड़ीसा में पहुँचा, जिससे वहाँ पर प्रचलित वैष्णव धर्म लुप्त प्रायः हो गया । यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि गौड़ीय वैष्णव धर्म ने एक नवीन वैष्णव धर्म को जन्म दिया । चैतन्य पूर्व उड़िया भक्ति साहित्य पर अगर दृष्टिपात करें तो यह तथ्य मिलता है कि यहाँ भक्ति काव्य ब्रजबुलि

में रचा जाता था । किन्तु महाप्रभु के आगमनोपरांत यह साहित्य चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था ।

उड़ीसा के लिए यह बड़े गर्व की बात है कि जयदेव जैसे महान कवि उत्कल माता की कोख से पैदा हुए थे । जयदेव ने अपनी रचना ' गीत गोविन्द' के द्वारा सिर्फ उड़ीसा प्रदेश को ही नहीं बल्कि पूरे भारतीय साहित्य संसार को प्रकाशमान कर दिया था । महाप्रभु श्रीचैतन्य के मानस जगत् भी गीतगोविन्द के प्रभाव से अछूता नहीं रह पाया था । महाप्रभु गीतगोविन्द के पदों को गा–गाकर बेसुध प्रायः हा जाया करते थे । सत्य तो यह है कि महाप्रभु की भगवत् भक्ति से प्रभावित होकर स्वरूप दामोदर, राय रामानंद, सिखी मोहंती, और उनकी बहन माधवी दासी गौड़ीय वैष्णव धर्म में दीक्षित हो गये थे । इनकी रचनाओं का अनुशीलन करें तो ये गौड़ीय वैष्णव धर्म के दर्पण सिद्ध होंगी । उड़ीसा के वैष्णव कवियों के साथ यदि 'पंचसखाओं' का स्मरण न किया जाए तो निश्चत रूप से यह प्रसंग अधूरा रह जाएगा । चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव से उड़िया साहित्य में पांच महान वैष्णव कवि हुए, जो 'पंचसखा' के नाम से परिचित हैं । इन्हें साहित्य के महासंग्राम में पंच पांडव कहा जा सकता है, जिन्होंने अपनी आध्यात्मिक और कवित्व शक्ति से उड़िया साहित्य संसार को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया था । ये 'पांच सखा' ही नहीं बल्कि 'ब्रह्मतत्व' चैतन्य देव की पांच शाखाएँ हैं – जगन्नाथ दास, बलराम दास, अच्युतानंद दास, यशोचंत दास और अनंत दास। अच्युतानंद के 'शून्यसंहिता' में इनके संबंध में यह लिखा हुआ है कि –

" महा पंडित श्रीचैतन्य गोसाई वेदवेदांतरे सार,
ये येमन्ते विद्यासंखेला करन्ति पढ़न्ति सहि प्रकार ।
अनंत अच्युत धेनि यशोवंत बलराम जगन्नाथ,
ए पंचसखा हिं नृत्य करिगले गौरांगचंद्र सहित ।"[186]

सुदर्शन दास कृत 'चौरासी आज्ञा' में इस संबंध में यह वर्णित है कि

" जनम हेले भगवान । चैतन्य प्रभु बोलि जीण
तांक आज्ञारु पंच सखा । जनम होई संगे लेखा ।।"[187]

आपकी 'गुरुभक्ति गीता' में यह तथ्य मिलता है कि जिस प्रकार द्वापर के कृष्ण, कलियुग में महाप्रभु चैतन्य रूप में अवतरित हुए उसी प्रकार ये 'पांच–सखा' अच्युत, बलराम, जगन्नाथ, अनंत और यशोवंत भी क्रमशः सुदाम, सुवल, श्रीवत्स, श्रीदाम तथा सुबाहु के अवतार है। इन

पांचों के द्वारा ही गौड़ीय वैष्णव दर्शन के प्रमुख तत्त्व पूरे उड़ीसा में फैले थे। इन्होंने भारतीय संस्कृति की धरोहर माने जानेवाले अनेक संस्कृत महाकाव्यों का अनुवाद उड़िया भाषा में कर डाला था जिससे उड़िया साहित्य भंडार का श्रीवर्द्धन हो पाया था। जहाँ श्रीमद्भागवत का अनुवाद जगन्नाथ दास ने किया था, वहाँ भगवतगीता का बलराम दास ने। ये दो महान कृतियाँ प्रायः प्रत्येक उडिया के घर में पूजित है। आज भी उड़ीसा के गाँव–गाँव में भगवत टूंगी (एकत्र बैठकर भागवत सुनने का एक छोटा सा घर) देखने को मिलती है। बलराम दास कृत 'जगमोहन रामायण' उड़ीसा का प्रमुख महाकाव्य है। यह गौरतलब है कि इन पांच सखाओं के नामानुसार उड़िया साहित्य के इतिहास में सारला दास के बाद के युग को 'पंचसखा युग' कहा जाता है। इन पांच सखाओं ने उड़िया साहित्य संसार को नई ज्योति दी थी। अतः इनके अनुपम योगदान से आज उड़िया भक्ति साहित्य में जणाण, भजन, आदि मिल पाते हैं। संक्षिप्त रूप में इन पांचों पर प्रकाश डालना आवश्यक है। बलराम दास उत्कल के 16 वीं शताब्दी के प्रमुख वैष्णव कवियों में से एक हैं। उड़िया भाषा साहित्य में आज पूज्य रामायण इनकी अनवद्य कृति है। चैतन्य महाप्रभु के संसर्ग में आने के पश्चात् आपने 'जगमोहन रामायण' की रचना मूल संस्कृत 'वाल्मीकि रामायण' की ज्योति के आधार पर करके उड़िया साहित्य में स्थित अंधकार को दूर किया था। जगन्नाथ दास उड़िया भाषा में भगवत का अनुवाद कर उत्कल साहित्य में अमर हो गये । आपकी जीवनी यह बताती है कि आपकी उठारह वर्ष की उम्र में चैतन्य महाप्रभु से भेंट हुई थी। तत्पश्चात् आपने महाप्रभु की अपार दैविक शक्ति से आकृष्ट हो कर उनके भक्ति सागर में गोता लगाया था। जगन्नाथ दास के रचित पदों में इतनी शक्ति थी कि जिन्होंने कृष्ण के कलि अवतार माने जाने वाले जगन्नाथ प्रभु को भी मोहित कर दिया था । इसका स्पष्ट प्रमाण हमें देवकी नंदन बाबू की रचनाओं में मिलता है –

"जगन्नाथ द्वारा बन्दौं संगीते पंडित,
जार गीत शुनिया श्री जगन्नाथ मोहित ।"[188]

जगन्नाथ दास द्वारा रचित 'श्रीमद्भागवत' आज उडीसा के घर–घर में आदर के साथ पढ़ी जाती है। अच्युतानंद दास बाल्य काल से ही संसार के प्रति विरक्त थे। चैतन्य महाप्रभु से साक्षातोपरांत उनकी आज्ञा से सनातन द्वितीय से उन्होंने दीक्षा ली । उनकी रचनाओं में 'शून्य संहिता' मुख्य मानी जाती है। यशोवंत दास कृत अनेक ऐसे मूल्यवान साहित्य उपलब्ध

होते हैं, जिन्होंने उडिया भक्ति साहित्य के विकास में अपनी अनुपम भूमिका निभाई है। अंनत दास का भी उड़िया भक्ति साहित्य के विकास में कम योगदान नहीं है। सही रूप में अगर उड़िया भक्ति साहित्य पर नजर डाली जाए तो यह देखने को मिलता है कि उड़िया साहित्य में जो राग, छंद है, ये उन पांचों से अनुप्राणित हुए धनंजय दास, उपेन्द्र भंज और वनमाली दास जी का अवदान है। गौर तलब है कि परवर्ती समय में उपरोक्त तीनों से अनुप्राणित होकर कविसूर्य बलदेव रथ, रामकृष्ण पट्टनायक, गोपालकृष्ण पट्टनायक, गौरहरी परिछा, नृसिंह पट्टनायक आदियों की कलम से कृष्णप्रेम मय सुन्दर संगीत की धारा कल कल नादों में प्रवाहित हो पाई थी।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि उड़िया भक्ति–साहित्य संसार में जो श्रीवृद्धि हुई है यह उस समय का प्रभाव है, जिस समय चैतन्य महाप्रभु ने उत्कल भूमि पर विराजित होकर उसे पवित्र किया था । उडिया साहित्य में जो भक्ति सरिता प्रवाहित हो पाई है उसे गौरचंद महाप्रभु चैतन्यदेव की कृपा समझना चाहिए। गीता में कहा गया है कि धर्म की रक्षा हेतु स्वयं भगवान को समय–समय पर विभिन्न अवतार लेना पड़ा था उसी प्रकार कलि–युग में श्रीचैतन्य, कृष्ण के अवतार हैं, जो अपनी कलि–लीला समाप्त कर जगन्नाथ के श्रीविग्रह के सम्मुख भावमा नृत्य करते–करते अंतर्ध्यान हो गये थे।

2 – बंगला भक्ति काव्य और गौड़ीय संप्रदाय

बंगला भक्ति साहित्य अपने–आपमें एक महोदधि है। जिस में विष्णु अवतार श्रीकृष्ण चैतन्य विराजित हैं । इसका वर्णन करना तो सूर्य को दिया दिखाने के समान होगा। बंगला भक्ति साहित्य के अनुशीलनोपरांत हमें सिर्फ कृष्ण प्रेम ही हाथ लगता है। आगम ग्रंथों में कृष्ण प्रेम के बारें में यह कहा गया है कि "अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूपम् ।" अर्थात् प्रेम (कृष्ण प्रेम) अनिर्वचनीय है, वर्णनातीत है; मुकोस्वादनवत् है । यह सिर्फ अनुभव करने की वस्तु है।

बंगला भाषा के इतिहास में यह देखने को मिलता है कि चैतन्य का अविर्भाव बंगला साहित्य, समाज तथा धर्म के लिए एक युगान्तकारी घटना है। सच देखा जाए तो सोलहवीं शताब्दी से बंगला साहित्य का एक विशिष्ट रूप देखने को मिलता है। कहने का अभिप्राय यह है कि चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव के पश्चात् बंगला साहित्य में ही नहीं बल्कि बंग

संस्कृति (गौड संस्कृति) में एक आकस्मिक परिवर्तन हो गया था। चैतन्य महाप्रभु प्रवर्तित वैष्णव धर्म की मधुर धारा ने संपूर्ण बंगाल को आप्लावित कर दिया था।

"ईसवी सन् की सोलहवी शताब्दी का साहित्य मुख्य रूप से वैष्णव भक्ति का साहित्य है। इसके पहले का अर्थात् ईसवी सन् की तेरहवीं, चौदहवीं शताब्दी का बंगला भाषा का साहित्य कुछ अलौकिक कहानियों तथा पौराणिक चरित्रों तक ही सीमित था । वैसे उन शताब्दियों का ऐसा कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं जिसके आधार पर तत्कालीन बंगला साहित्य की रूपरेखा निर्धारित की जा सके।"[189] बंगला इतिहास इसका साक्षी है कि चैतन्य महाप्रभु के पूर्व के बंगला साहित्य में वह मूल्य नहीं था जो चैतन्य महाप्रभु के पश्चात् देखने को मिलता है। यहाँ ध्यातव्य है कि चैतन्य पूर्व बंगला साहित्य पर वैष्णव धर्म विशेष रूप से सहजिया संप्रदाय वालों का प्रभाव अधिक थी । चैतन्य पूर्व बंगला समाज में जयदेव तथा चंडीदास का प्रचुर प्रभाव था। संभवतः वैष्णव सहजिया मत ने चैतन्य महाप्रभु प्रवर्तित गौड़ीय वैष्णव साधना को अधिक प्रभावित किया था।[190] महाप्रभु स्वयं जयदेव तथा चंडीदास के पदों से प्रभावित थे। ऐसे कि वे इनके पदों को गा–गाकर बेहोस हो जाया करते थे। वैसे यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सहजिया वैष्णव साधना से गौड़ीय वैष्णव साधना भले ही प्रभावित हुआ हो किन्तु इसकी साधना पद्धति ठीक उसी तरह की नहीं है जिस तरह की सहजिया वैष्णव साधना की है।

सहजिया वैष्णव साधना इतनी उन्नत अवश्य नहीं थी किंतु महाप्रभु के आविर्भाव तथा गौड़ीय आचार्यो की रचनाओं के प्रभाव से उन्होंने अपनी साधना–पद्धति को उन्नत बना लिया था। मनीन्द्रनाथ वसु ने अपनी पुस्तक 'सहजिया साहित्य' की भूमिका में लिखा है कि "वैष्णव–पदावली–साहित्य की रचना राधा–कृष्ण लीला रस का आस्वादन करने के लिए हुई थी। यहाँ तक कि अपने मत की स्थापना के लिए उन्होंने "चैतन्य–चरितामृत' का आधार लिया।"[191]

चैतन्य महाप्रभु से प्रभावित बंगला भाषा के कवियों की रचनाएँ इसका पुष्ट उदाहरण हैं, जिनसे यह तथ्य खुलकर सामने आ जाता है कि सचमुच बंगला साहित्य महाप्रभु से तथा गौड़ीय वैष्णव दर्शन से कितना प्रभावित है। बंगला में नरोत्तमदास, मुकुन्द दास, वृन्दावन दास, रामचन्द्र गोस्वामी, रामचन्द्र दास, लोचन दास आदि के दर्शन एवं सिद्धान्त ग्रन्थों से

यह झलक मिल पाती है। नरोत्तम दास कृत प्रेम–भक्ति–चंद्रिका में ही समस्त कर्म कांड को तुच्छ बताया गया है । कृष्ण की महिमा बताते हुए कवि कहता है –

"तीर्थ–यात्रा–परिश्रम
केवल मनेर भ्रम
सर्व सिद्धि गोविन्द चरण।"[192]

नरोत्तम दास की अन्य रचना है 'हाटपतन' । इसमें यह माना गया है कि यह 'हाट पतन' नामक छोटी रचना में चैतन्य देव से प्रभावित सिद्धान्त हैं।[193]

रामचन्द्र गोस्वामी की रचना 'पाखंड दमन' है, जिसमें भक्ति–निरुपण, नामकीर्तन, भक्ति और भक्त महिमा, साधु संग आदि का विवेचन किया गया है। रामचंद्र दास की रचना 'सिद्धांत चंद्रिका' के पांचवें प्रसंग में कृष्ण और चैतन्य का अभेद बताया गया है और यह कहा गया है कि कृष्ण यदि वृन्दावन त्याग करके कहीं नहीं जाते तो चैतन्य का अवतार कैसे होता, राधा को विरह कैसे होता।[194] लोचनदास की रचना 'दुर्लभसार' में गौड़ीय दर्शन के प्रमुख तत्व, परकीया भाव की बात की गई है। इसमें ब्रजवासियों के विरह दुःख का करूणाजनक वर्णन तथा परकीया गोपियाँ क्या व्यभिचारिणी थीं, इसकी भी मीमांसा की गई है।[195] इसके अलावा कृष्णदास कविराज कृत 'चैतन्य चरितामृत' से ऐसे अनेक कवियों की सूची प्राप्त हो जाती है जिससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि चैतन्य महाप्रभु तथा गौड़ीय दर्शन का जादू सब पर कैसे छाया हुआ था। सब चैतन्य देव से प्रभावित होकर भगवान कृष्ण की प्राप्ति में विह्वलित हो उठे थे। सच देखा जाए तो, चैतन्य महाप्रभु का कीर्तन ही ऐसा था, जो अपनी अलौकिक शक्ति से सबको कृष्ण चरणारविन्द प्राप्ति के लिए भावावेश में डाल देता था। सबने चैतन्यदव की संकीर्तन की धारा में बहकर अपने आपको कृष्णरस सागर में पहुँचा दिया था। उनमें अनंददास, आचार्य चंद्र आत्मराम दास, ईशान नागर, उद्धव दास, कवि रंजन, केवि शेखर, किशोरी दास, कामदेव दास, कुमुदानंद दास, कृष्णकांत, कृष्ण दास, कृष्णदास कविराज, गिरिधर दास, गुप्त दास, गोकुल दास, गोपाल भट्ट, गोपीकांत वसु, गोविन्द घोष, गोविन्द दास कविराज, गौरांग दास, गौरी दास, चंडीदास, चंद्रशेखर दास, चंपति चूडामणि दास, चैतन्य दास, जगन्नाथ दास, जयकृष्ण दास, जयचंद्र दास, जानकी दास, दिव्य सिंह, देवकी नंदन दास, द्विज हरिदास, नरहरि दास, परमेश्वर दास, पुरूषोत्तम दास, मनोहर दास आदि प्रमुख माने जाते हैं।[196]

सच तो यह है कि चैतन्यपूर्व बंगला भक्ति साहित्य में राधा की स्थापना नहीं थी । अगर थी तो, आज के रूप में नहीं थी । सही देखें तो राधा को कृष्ण भक्ति में अन्यतम स्थान दिलाने में महाप्रभु ही प्रमुख माने जा सकते हैं। हमने पहले यह बताया है कि चैतन्य महाप्रभु से पहले बंगाल वैष्णव धर्म से प्रभावित हो चुका था। इतिहास यह बताता है कि गुप्त काल में वैष्णव धर्म का जो प्रसार और व्याप्ति हुई थी, उससे बंगाल अछूता नहीं रहा था। ईस्वी सन् चौदहवीं शताब्दी यानी महाप्रभु चैतन्य देव से पहले शिशुनियाँ पर्वत लिपि में चद्रवर्मण को चकस्वामी या विष्णु का उपासक कहा गया है।[197]

सुशीलकुमार दे ने पहाड़पुर से मिली हुई युगल मूर्ति के संबंध में यह स्वीकारोक्ति दी है कि यह युगल मूर्ति राधा–कुष्ण की युगल मूर्ति नहीं है ।[198] डा. प्रबोधानंद बागची ने यह अनुमान लगाया है कि यह युगल मूर्ति या तो कृष्ण–सत्यभामा की है या कृष्ण–रुक्मिणी की।[199] अतएव उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चैतन्य पूर्व बंगाला साहित्य में राधा की कल्पना नहीं थी। अगर थी तो; जयदेव, चंडीदास के द्वारा स्थापित हुई थी जो आज की तरह शुद्ध नही थी । मोटेतौर पर यह एक द्वन्द्वात्मक विषय है। हमने पहले बताया है कि बंगदेश (गौड देश) में महाप्रभु के आविर्भाव के उपरांत उनके सुमधुर कीर्तन की गूंज ने बंगाली वैष्णव कवियों के चित्त को द्रवीभूत कर दिया था। वे उनके कीर्तन की ताल से ताल मिलाकर सुमधुर पद रचना करने लगे थे। तभी कीर्तन में उपयोग के लिए प्रेम–स्निग्ध पदों की सृष्टि होने लगी। पदावली साहित्य बंगला–भाषा का सबसे माधुर्यमय कमनीय साहित्य है, जिसमें हृदय के कोमल भावों की अभिव्यंजना बड़े ही सरल शब्दों में की गई है। इन पदों के कारण बंगला साहित्य में मध्य युग को सुवर्ण युग की संज्ञा मिली है। जहाँ तक बंगला भक्ति काव्य में राधा–कृष्ण के महत्व की बात है, यह कहा जा सकता है कि बंगला में चैतन्य मत की विशेष–प्रतिष्ठा होने के कारण बंगाली कृष्ण–काव्य में दार्शनिक तत्वों के वर्णन में वैभिन्नता नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि हिन्दी के वैष्णव भक्ति साहित्य में राधा–कृष्ण संबंधी विचार, संप्रदाय भिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न पाये जाते हैं । किन्तु बंगला भक्ति काव्य में चैतन्य मत की प्रधानता हेतु कोई भी भिन्नता नही दिखाई देती है।[200] पं. बलदेव उपाध्याय ने महाप्रभु चैतन्य देव के पश्चात् के बंगला भक्ति साहित्य के परिवेश के बारे में बताया कि ''चैतन्य के भक्ति आन्दोलन के प्रभाव से बंग भाषा में एक विशाल मधुर साहित्य उत्पन्न हुआ, जिसे हम 'पदावली–साहित्य' के नाम से अभिहित करते

हैं।[201] उन्होंने यह बताया कि बंगला साहित्य में पदों का सबसे बड़ा संग्रह 'पद कल्पतरू' है। जिसमें तीन हजार से ऊपर पदों का संकलन बड़ी सुव्यवस्था के साथ किया गया है। इसके रचयिता वैष्णव दास हैं। इसकी पूर्वपीठिका है श्रीरूप गोस्वामी विरचित 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक भक्ति शास्त्रीय अनुपम ग्रंथ ।[202]

3 . मराठी और गुजराती भाषा के कृष्ण भक्ति काव्य और गौड़ीय संप्रदाय

जहाँ तक मराठी कृष्ण भक्ति काव्य की बात है, इसमें मधुरा भक्ति का वर्णन बहुल मात्रा में पाया जाता है । ध्यान रहे कि इसमें मधुरा भक्ति का वर्णन ऐसे हुआ, जैसे मानों गौड़ीय दर्शन की मधुरा भक्ति का वर्णन हो रहा हो। मराठी कृष्ण भक्ति साहित्य में मधुरा भाव की भक्ति की झलक नामदेव की रचनाओं से मिलती है । इनके संबंध में बलदेव उपाध्याय ने कहा है कि "मधुरा भक्ति के इस प्रवीण उपासक ने संभवतः सर्वप्रथम मराठी में राधा का वर्णन प्रस्तुत किया है।"[203] उन्होंने और एक कृष्णभक्त कवि जनाबाई के बारें में लिखा है कि जनाबई की कृष्णानुभूति अतीव विलक्षण है।

"राधा अणि मुरारी। कीडा कुंजवनी करी।
राधा डुल्लत डुल्लत। आली निज भुवनांत।
सुमनाचे शेजेवरी। राधा आणितो मुरारी।।
आवड़ीने विडे देत। दासी 'जनी' उभी तेथ।"[204]

उपर्युक्त पद का भावार्थ बिल्कुल गौड़ीय दर्शन के गोपीतत्व के समानार्थ है। इसमें उस अभिलाषा का संकेत किया गया है कि वह राधा–कृष्ण के मिलन–प्रसंग को अपनी आँखों से देखने से ही पूर्णानंद की प्राप्ति करता है, श्रीकृष्ण से साक्षात् मिलने की उसकी तनिक भी इच्छा नहीं होती । यहाँ गौड़ीय दर्शन के गोपीतत्व के समानार्थ रखने पर भी इस पर गौड़ीय दर्शन के तत्वों का प्रभाव माना नहीं जा सकता; क्योंकि कालखंड के अनुसार यह रचना गौड़ीय संप्रदाय के 100 वर्ष पहले की है। अतः बलदेव उपाध्याय जी ने निष्कर्षतः यह संकेत कर दिया है कि "मराठी साहित्य में राधा की लीला का प्रवेश चौदहवीं शताब्दी के आरंभ काल में हो गया था।"[205]

एक नाथ, तुकाराम तथा राम दास की कविताओं में गोपीतत्व की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति पाई जाती है। इतिहासकार मुरारी लाल अधिकारी ने तुकाराम की भेंट चैतन्य से

होने की बात कहीं है किन्तु नरेशचंद्र बंसल ने इसे स्वीकार नहीं किया है।[206] फिर भी एकनाथ ने अपनी भागवत में तथा तुकराम ने अपनी 'अभगों' में स्वयं विठोबा के भक्त होने के कारण गोपी कृष्ण की ललित केलि का वर्णन किया है। जो भी हो, मराठी भक्ति–साहित्य में कृष्ण की विविध माधुरियों पर खूब लिखा गया है और इसमें राधाभाव तथा गोपीभाव को प्रधानता दी गई है। अतः इस आधार पर उन रचनाओं पर चैतन्य संप्रदाय का प्रभाव होने की आशा डा. बंसल ने जतायी है।[207]

गुजराती भक्ति साहित्य

मीराबाई की भक्ति के वर्णन के संदर्भ में यह बताया जा चुका है कि गुजराती भक्ति साहित्य में राधा–कृष्ण संबंधी पदों की रचना मुख्यतया मीरॉबाई तथा नरसी मेहता ने की है। नरसी मेहता की पूरी रचनाओं के अनुशीलन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नरसी मेहता की भक्ति, चैतन्य महाप्रभु तथा कृष्णप्रेम दीवानी मीरा की तरह है। इनके बारे में यह वाक्य सार्थक सा लगता है कि ये चैतन्य तथा मीरा के समान श्रीकृष्ण को अपना जीवन स्वामी मानते थे।[208] नरसी मेहता की निजी भक्ति भावना गोपीभाव की थी। श्रीकृष्ण के प्रेम में आसक्त गोपियों की मनोदशा को उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से निखारा है। नरसी मेहता ने गोपियों की प्रेम दशा का जो वर्णन किया है, वह अनुकरण योग्य है । इसके आधार पर उन्हें एक सच्चा, शुद्ध प्रेमभक्त कवि माना जा सकता है। उन्होंने गोपी दशा के वर्णन के क्रम में यह दर्शाया है कि गोपियों के मानस पटल पर श्याम कृष्ण की छवि कृष्ण को बिना देखे ही उद्‌भसित हो जाती थी और वे कृष्ण प्रेम में भाव विह्वल हो उठती थीं।

"नाम न जाणुं पण छे कालो।
ओ जाये ओ जाये कोई पाछो, वालो।।
छेलपणे छमकलो वहालो, शामलीये साइड्डु लीधुं रे।
मारगमां वांसलडी वाहतां,चित्त हरी ने लीधु रे।
आलंगिन आप्युं वहाला अलवे, नाथ मन मान्युं तमशुंरे।
नरसैयाचा स्वामी आपण रमिये अंतर टालो अमशुंरे।।"[209]

गौड़ीय दर्शन की रागात्मिका भक्ति भी इसी प्रकार की है । इस संबंध में डा. नरेशचन्द्र बंसल जी ने यह कहा है कि श्रृंगारयुक्त भक्ति का जो उन्मेष गुजरात के कवि शिरोमणि नरसी मेहता में दृष्टिगत होता है वह कदाचित चैतन्य का प्रभाव था।"[210]

नरसी मेहता के काव्य में कृष्ण के प्रति राधा की प्रेमाभिव्यक्ति अत्यंत सशक्त तथा मनोवैज्ञानिक है। इसे एक सच्चा मनोवैज्ञानिक प्रेमी ही हृदयगंम कर सकता है –

"पीयु मारी सेजड़ीनो शणगार
जेवण सींचण हार।
पीयुजी कारण हूँ तो हार न धरती
जांणु रखे अंतर थाये।।"[211]

अर्थात् राधा रानी यह सोचती है कि अगर वह गले में हार पहनेगी तो कृष्ण के गाढ़ालिंगन में यह हार बाधित हो सकता है । इसीलिए वह कभी हार पहनने के लिए नहीं सोचती है। अतः गौड़ीय संप्रदाय में वर्णित प्रेम और नरसी मेहता की भक्ति के पदों में पर्याप्त समानता हैं। डा. के एम मुंशी यह मानते हैं कि नरसी मेहता पर रूप गोस्वामी कृत 'उज्ज्वलनीलमणि' और 'विदग्धमाधव' का प्रभाव है और प्रो. के. का. शास्त्री यह मानते हैं कि उन पर जयदेव, विल्वमंगल और भागवत का प्रभाव है।[212] जो भी हो, परोक्ष रूप में अगर देखा जाए तो वे चैतन्य संप्रदाय से ज्यादा प्रभावित प्रतीत होते हैं।

5 . 4 निष्कर्ष

विषय को अंतिम रूप देते हुए यह कहा जा सकता है कि जहाँ तक भक्ति संप्रदायों के साथ गौड़ीय संप्रदाय का संबंध है या उन पर प्रभाव की बात है, निश्चित रूप से अन्य कृष्ण भक्ति वैष्णव संप्रदाय, गौड़ीय दर्शन से प्रभावित हैं। यदि संक्षेप में कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि भक्ति के क्षेत्र में शुद्ध प्रेम भक्ति या शुद्ध भागवत भक्ति या माधुर्य भक्ति की स्थापना गौड़ीय वैष्णव गोस्वमियों द्वारा ही हुई थी। हमने ऊपर समस्त वैष्णव संप्रदायों – कृष्णभक्ति संप्रदाय और रामभक्ति संप्रदाय – का वर्णन किया है और उसमें यह दिखाया गया है कि कैसे वे गौड़ीय दर्शन से प्रभावित थे। चैतन्य महाप्रभु के संदर्भ में एक विशेष बात यह थी कि अन्य वैष्णव आचार्यों की भाँति अपने संप्रदाय की स्थापना हेतु उन्होंने किसी धर्म

ग्रंथ का भाष्य नहीं रचा था । यहाँ चैतन्य महाप्रभु का एक श्लोक प्रस्तुत कर अपनी बात समाप्त करने की आशा चाहूँगा –

"तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीया सदा हरिः ।।"[213]

संदर्भ

1 –	सूर और उसका साहित्य	पृ –200
2 –	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	पृ –55
3 –	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	पृ –55
4 –	चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य	पृ –391
5 –	चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य	पृ –391
6 –	सूर और उनका साहित्य	पृ –197
7 –	ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्य से उद्धृत	पृ –591
8 –	चैतन्य चरितामृत , 1/4/141	
9 –	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	पृ –527
10 –	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय से उद्धृत	पृ –527
11 –	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	पृ –528
12 –	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	पृ –528
13 –	सूर साहित्य	पृ –32
14 –	भारतीय वाङ्मय में श्री राधा	पृ –80
15 –	सूर सागर, दशम स्कन्ध, पद सं.1607	पृ –603
16 –	सूरदास से उद्धृत –	पृ –35
17 –	सूरदास से उद्धृत –	पृ –35
18 –	सूरदास से उद्धृत –	पृ –34
19 –	चैतन्य चरितामृत 2/173	
20 –	सूरदास से उद्धृत	पृ –35
21 –	सूर और उनका साहित्य	पृ –242
22 –	भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा	पृ –81
23 –	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय	पृ –627
24 –	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय से उद्धृत	पृ –628

25 – चैतन्य संप्रदाय : सिद्धात और साहित्य पृ –400

26 – भ्रमरगीत – छंद सं.63

27 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ –629

28 – नंददास – सिद्धांत पंचाध्यायी पृ –189

29 – नंददास – सिद्धांत पंचाध्यायी से उद्धत पृ –913

30 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय से उद्धृत पृ –628

31 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ –629

32 – चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य पृ –298

33 – सूर और उनका साहित्य पृ –6

34 – उज्ज्वलनीलमणि, श्रृंगारभेद प्रकरण, श्लोक 3

35 – सूरसागर, पद सं.4606

36 – हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना से उद्धत पृ –190

37 – चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य से उद्धृत पृ –399

38 – हिन्दी काव्य शास्त्र में रस सिद्धांत पृ –293

39 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ –58

40 – अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय से उद्धृत पृ – 58

41 – 16वीं शति के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि से उद्धृत पृ –227

42 – 16वीं शति के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि से उद्धृत पृ –227

43 – विस्तार हेतु उपर्युक्त पुस्तक के माया खण्ड देखिए ।

44 – चैतन्य चरितामृत, आद्रिलीला पृ –23

45 – सूर सागर, तृतीय स्कन्ध पृ –133

46 – चैतन्य चरितामृत, आदिलीला, परि 4, पृ –23

47 – चैतन्य चरितामृत, मध्य लीला, परि– 8 पृ –153

48 – नंददास, सिद्धांतपंचाध्यायी पृ –186

49 – भागवत संप्रदाय से उद्धृत पृ –640

50 – सूर सागर, प्रथम स्कन्ध पृ –29

51 – चैतन्य संप्रदाय सिद्धांत : और साहित्य, विस्तार हेतु द्रष्टव्य पृ –392–93

52 –	भागवत संप्रदाय	पृ –316
53 –	ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास	पृ –343
54 –	ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास से उद्धृत	पृ –343–44
55 –	कृष्णभक्ति काव्य में सखीभाव	पृ –561
56 –	निम्बार्क संप्रदाय और उनके कृष्णभक्त हिन्दी कवि	पृ –39
57 –	ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास	पृ –347
58 –	भागवत संप्रदाय	पृ –351
59 –	निम्बार्क संप्रदाय और उनके कृष्णभक्त हिन्दी कवि	पृ –40
60 –	भागवत संप्रदाय	पृ –252
61 –	भागवत संप्रदाय से उद्धृत	पृ –352
62 –	भागवत संप्रदाय से उद्धृत	पृ –632
63 –	चैतन्य चरितामृत	
64 –	कृष्णभक्ति काव्य में सखी भाव	पृ –136
65 –	कृष्णभक्ति काव्य में सखी भाव से उद्धृत	पृ –153
66 –	भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा	पृ –401
67 –	भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा से उद्धृत	पृ –402
68 –	भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा	पृ –402
69 –	चैतन्य मत और ब्रज साहित्य	पृ –139
70 –	घनानंद कवित्त, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	पृ –29
71 –	चैतन्य मत और ब्रज साहित्य से उद्धृत	पृ –140
72 –	घनानंद पद सं.500	पृ –446
73 –	विरह लीला	पृ –6
74 –	घन आनंद कवित्त सं.70	
75 –	चैतन्य चरितावली, खंड पॉच	पृ –262
76 –	ब्रज माधुरीसार से उद्धृत	पृ –181
77 –	चैतन्य संप्रदायः सिद्धांत और साहित्य	पृ –403
78 –	चैतन्य संप्रदायः सिद्धांत और साहित्य से उद्धृत	पृ –404

79 – विस्तार हेतु द्रष्टव्य,चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य पृ –404

80 – तुलनात्मक उदाहरण के लिए उपर्युक्त पुस्तक द्रष्टव्य पृ–404–405

81 – चैतन्य संप्रदाय सिद्धांत और साहित्य से उद्धृत पृ –405

82 – चैतन्य संप्रदायः सिद्धांत और साहित्य पृ –405

83 – कृष्णभक्ति काव्य में सखी भाव पृ –566

84 – स्वामी हरिदासजी का संप्रदाय और उनका वाणी साहित्य पृ –149

85 – स्वामी हरिदासजी का संप्रदाय और उनका वाणी साहित्य पृ –169

86 – स्वामी हरिदासजी का संप्रदाय और उनका वाणी साहित्य से उद्धृत पृ–168–169

87 – स्वामी हरिदासजी का संप्रदाय और उनका वाणी साहित्य पृ –169

88 – स्वामी हरिदासजी का संप्रदाय और उनका वाणी साहित्य पृ –169

89 – स्वामी हरिदासजी का संप्रदाय और उनका वाणी साहित्य पृ –169

90 – स्वामी हरिदासजी का संप्रदाय और उनका वाणी साहित्य पृ –170

91 – स्वामी हरिदासजी का संप्रदाय और उनका वाणी साहित्य पृ –171

92 – कृष्णभक्ति काव्य में सखीभाव से उद्धृत पृ –348–49

93 – हिन्दी साहित्य पृ –212

94 – The Sakhi is an important person in the Rassastrik and theology of Chaitanyaism . without her the blissful erotic sport of 'Kirshna and Radha is not nourished . not does it expand, No one has access to the sport except the priviled sakhis....

(Early History of the Vaishnava faith and movement in Bengal p-158)

95 – भक्त कवि ध्रुवदासः सिद्धांत और साहित्य पृ –148

96 – राधावल्लभ संप्रदायः सिद्धांत और साहित्य से उद्धृत पृ –101

97 – कृष्णभक्ति काव्य में सखीभाव से उद्धृत पृ –598

98 – भागवत संप्रदाय पृ –421

99 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा पृ –93

100 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा से उद्धृत पृ –94

101 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा पृ –94

102 – लोचन रोचनी पृ –465

103 — आनंद चन्द्रिका पृ –548

104 — उज्ज्वलनीलमणि पृ –548

105 — भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा से उद्धृत पृ –96

106 — राधावल्लभ संप्रदाय :सिद्धांत और साहित्य के संदर्भ से उद्धृत पृ –141

107 — राधावल्लभ संप्रदाय :सिद्धांत और साहित्य पृ –84

108 — राधावल्लभ संप्रदाय :सिद्धांत और साहित्य पृ –586

109 — मध्यकालीन धर्मसाधना पृ –216

110 — राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य से उद्धृत पृ –451

111 — भक्त कवि ध्रुवदासः सिद्धांत और साहित्य पृ –273

112. भक्त कवि ध्रुवदासः सिद्धांत और साहित्य पृ –161

113 — राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धात और साहित्य पृ –85

114 — राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धात और साहित्य पृ –147

115 — राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य पृ –147

116 — कृष्णभक्ति कावय में सखीभाव पृ –537

117 — भागवत संप्रदाय से उद्धृत पृ –456

118 — चैतन्य चरितामृत 2/8/164

119 — चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य से उद्धृत पृ –408

120 — चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य पृ –409

121 — चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य पृ –409

122 — कृष्णभक्ति काव्य में सखीभाव पृ –547

123 — चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य से उद्धृत पृ –410

124 — राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य पृ –263

125 — ब्रज साहित्य का इतिहास पृ –245

126 — मीराबाई पुस्तक से उद्धृत पृ –385

127 — कल्याण, भगवत्प्रेम अंक 1 से उद्धृत पृ –409

128 — भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा से उद्धृत पृ –350

129 — मध्यकालीन प्रेम साधना पृ –78

130 –	चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य	पृ –411
131 –	मीराबाई पुस्तक से उद्धृत	पृ –189
132 –	भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा	पृ –351
133 –	मीराबाई	पृ –344
134 –	चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य	पृ –410
135 –	कल्याण, भगवत्प्रेम अंक 1 से उद्धृत	पृ –113
136 –	मीराबाई	पृ –360
137 –	मीराबाई	पृ –360
138 –	मीराबाई पुस्तक से उद्धृत	पृ –324
139 –	मीराबाई	पृ –325
140 –	मधुरा भक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	पृ –131
141 –	Gujarat and his literature	पृ –13-14
142 –	चैतन्य संप्रदायः सिद्धांत और साहित्य	पृ –411
143 –	कल्याण, संकीर्तनांक – 1	पृ –420
144 –	कल्याण, संकीर्तनांक – 1	पृ –420
145 –	भागवत संप्रदाय	पृ –333
146 –	कल्याण, भक्त चरितांक	पृ –363
147 –	रसखान रचनावली	पृ –133
148 –	रसखान रचनावली	पृ –132
149 –	रसखान रचनावली	पृ –133
150 –	रसखान रचनावली	पृ –133
151 –	हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना	पृ –349–350
152 –	हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना	पृ –352
153 –	चैतन्य संप्रदायः सिद्धांत और साहित्य	पृ –414
154 –	चैतन्य संप्रदायः सिद्धांत और साहित्य	पृ –414
155 –	हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना	पृ –417
156 –	हिन्दी साहित्य (द्वितीय खण्ड)	पृ –305

157 — रामचरित मानस, उत्तरकांड पृ —164

158 — विनय पत्रिका, पद सं.65

159— विनय पत्रिका, पद सं.66

160 — रामचरित मानस 3/86 पृ —536

161 — रामचरित मानस 3/122 पृ —563

162 — रामचरित मानस, किष्किन्धा कांड—11 पृ —360

163 — चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला, परि 6, पृ —132

164 — रामचरित मानस, उत्तर काण्ड, 117

165 — चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला,परि 8 पृ —153

166 — रामचरित मानस, उत्तरकांड—119, पृ —560

167 — चैतन्य चरितामृत, मध्यलीला, परि 22 पृ —279

168 — रामचरित मानस, अरण्यकांड — 16, पृ —330

169 — रामचरित मानस, लंकाकांड 117 पृ —482

170 — रामचरित मानस

171 — रामभक्ति साहित्य में रसिक संप्रदाय पृ —118

172 — चैतन्य संप्रदायः सिद्धांत और साहित्य पृ —118

173 — हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना पृ —386

174 — श्रीकृष्ण गीतावली, छंद सं.55

175 — श्रीकृष्ण गीतावली, छंद सं.33

176 — श्रीकृष्ण गीतावली, छंद सं.48

177 — रामभक्ति में रसिक संप्रदाय पृ —404

178 — चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य पृ —420

179 — रामभक्ति साहित्य में मधुरोपासना पृ —173

180 — रामभक्ति में रसिक संप्रदाय की भूमिका पृ — 4

181 — चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य से उद्धृत पृ —423

182 — हिन्दी भक्तिरसामृतसिंधु, पूर्व भाग, तृतीया भावलहरी पृ —97—98

183 — An approch to Oriya literature p-41

184 – An approch to Oriya literature p-37

185 – The Chaitanya movement p-75

186 – उड़िया साहित्य का इतिहास (उड़िया भाषा में) पृ –20

187 – अर्थात् स्वयं भगवान चैतन्य अवतार के रूप में जन्म लिए हैं । उनकी कृपा से आज पंच सखा का आविर्भाव हो पाया है । इस प्रकार समझो ।

(उड़िया साहित्य का इतिहास , पृ – 21)

188 – ब्रज भाषा और ब्रजबुलि साहित्य पृ –435

189 – ब्रज भाषा और ब्रजबुलि साहित्य पृ –442

190 – ब्रज भाषा और ब्रजबुलि साहित्य पृ –454

191 – सहजिया साहित्य (भूमिका से)

192 – 16वीं शती के हिन्दी और बंगाली कवि पृ –126

193 – 16वीं शती के हिन्दी और बंगाली कवि पृ –128

194 – 16वीं शती के हिन्दी और बंगाली कवि पृ –129

195 – 16वीं शती के हिन्दी और बंगाली कवि पृ –130

196 – विस्तार हेतु, 16वीं शती के हिन्दी और बंगाली कवि पृ –41 –86

197 – वैष्णव साहित्य प्रवेशिका पृ – 14

198 – Early History of the Vaishnava faith and movement p-7

199 - History of Bengal] part-1 p-401

200 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा पृ –289

201 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा पृ –299

202 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा पृ –300

203 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा पृ –339

204 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा से उद्धृत पृ –339

205 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा पृ –340

206 – चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य पृ –412

207 – चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य पृ –412

208 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा पृ –352

209 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा से उद्धृत पृ –355

210 – चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य पृ –411

211 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा पृ –354

212 – भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा पृ –354

213 – शोध ग्रंथ के द्वितीय अध्याय द्रष्टव्य

उपसंहार

भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में महाप्रभु चैतन्य देव और गौड़ीय संप्रदाय के दर्शन, उपासना विधि आदि के वर्णनोपरांत सार रूप में यह कहा जा सकता है कि गौड़ीय संप्रदाय मुख्यतः शुद्ध भक्ति (माधुर्य भक्ति) से संबंधित संप्रदाय रहा है। इस संप्रदाय में परम पूज्य कृष्ण अवतारी महाप्रभु कृष्णचैतन्य के अधरामृत से उद्गलित पावन वाणी से, इस संप्रदाय का दर्शन महिमा मंड़ित हुआ है । महाप्रभु चैतन्य गोसाईं का आविर्भाव इस कलि काल के उद्धार हेतु माना जाता है। कृष्णदास गोस्वामी महाप्रभु को राधा–कृष्ण का मिलित अवतार मानते हैं । चैतन्य में राधा भाव (महाभाव) की चरम प्रेमानुभूति का पूर्ण उन्मेष होने की बात मानी जाती है। इस महाभाव की दशा में जैसे राधा के नेत्रों को सिर्फ कृष्ण की छवि चारों तरफ से दिखाई देती है; वह कृष्ण की प्राप्ति के लिए बावरी सी हो जाती है ठीक उसी प्रकार भक्त जब महाभाव की दशा में आ पहुँचता है, वह उसी तरह का अनुभव करता है । इस स्थिति में भक्त सांसारिक बंधन को तिलांजलि देते हुए एक ही कृष्णमय पथ का पथिक बन गया होता है ।

स्वयं महाप्रभु का भाव महाभाव था। उनका जीवन इतिहास इसका ज्वलंत साक्षी है। महाप्रभु के भक्ति संदेशों से निर्गत प्रेमभाव परक प्रवाह ने जन मानस की चेतना को दिव्य आलोक से आलोकित कर दिया है । उनके प्रेमवारि के वर्षण से लोक जीवन रससिक्त और मधुर हो गया है ।

महाप्रभु ने न कोई भाष्य लिखा है; न सिद्धान्त । बस! वे अपने भक्ति मय जीवन से अशेष शांति प्राप्त कर लेते थे । स्मरणीय है कि उनके भक्तिमय प्रकाश ने कुछ ऐसे व्यक्तियों के अंधकार पूर्ण हृदय को प्रकाशित किया कि जिन्होंने महाप्रभु की भक्तिमय जीवन–धारा के आधार पर दर्शन ग्रंथों की रचना कर गौड़ीय संप्रदाय खड़ा किया । महाप्रभु के समय में भक्ति साहित्य में श्रेष्ठ माने गये षट् गोस्वामियों की भूमिका न केवल गौड़ीय दर्शन के विकास के लिए, बल्कि पूरे भक्ति साहित्य के विकास में अहम् रही है। यह बात हम नहीं; बल्कि भक्ति संप्रदायों के समस्त आचार्यों से लेकर कवि तक, सभी ने स्वीकारी है। गौड़ीय संप्रदाय का भक्ति रस, आध्यात्मिक दर्शन, संगीत, साहित्य, शिल्प आदि क्षेत्रों में अपूर्व योगदान रहा है। ध्यातव्य है कि शास्त्रीय रस पद्धति एवं दर्शन का जो सैद्धान्तिक विवेचन

गौड़ीय आचार्यों ने किया है, उसका व्यावहारिक रूप ब्रज भाषा काव्य में मुखरित हुआ है। ब्रज भाषा के कवियों ने अपने काव्य में नित्य विहार के विधायक तत्व – राधा, कृष्ण, वृन्दावन, सहचरी–मंजरी का मनोमुग्धकारी सरस वर्णन किया है।

जहाँ तक गौड़ीय दर्शन के प्रभाव की बात है, तो यह संपूर्ण भक्ति साहित्य पर देखा जा सकता है । ऐसा कोई भी एक भक्ति संप्रदाय नहीं है जिस पर गौड़ीय दर्शन का प्रभाव न पड़ा हो – चाहे कृष्णभक्ति संप्रदाय हो या रामभक्ति संप्रदाय । निवेदन यह है कि राम और कृष्ण अलग– अलग नहीं है; बल्कि एक ही विष्णु के दो अवतारी पुरुष हैं। इस संदर्भ में यह सिद्ध है कि गौड़ीय भक्ति का प्रभाव प्रमुखतः कृष्णभक्ति संप्रदायों पर तथा गौणतः राम भक्ति संप्रदाय पर परिलक्षित होता है। इसके प्रमाण तथा उदाहरण हमने पॉचवें अध्याय में दिये हैं। गौड़ीय दर्शन के ग्रंथों में से रूप गोस्वामी कृत 'भक्तिरसामृतसिन्धु' का प्रभाव ज्यादा रहा है। गौड़ीय संप्रदाय का प्रभाव मुख्यतः वल्लभ संप्रदाय के कवियों पर तथा राधावल्लभ संप्रदाय के कवियों पर ज्यादा रहा है। राम भक्ति साहित्य पर गौड़ीय संप्रदाय का प्रभाव; मुख्यतः तुलसी दास पर रहा है किन्तु गौड़ीय संप्रदाय में मधुर रस की परिकल्पना से तुलसी दास प्रभावित नजर नहीं आते । ऐसा नहीं कि, उनकी रचनाओं में मधुर रस का वर्णन नहीं है; अवश्य है किन्तु जिस रूप में मधुर रस का वर्णन गौड़ीय दर्शन में वर्णित है उस रूप में नहीं है। अंतिम समय में तुलसी दास कृत कृष्णकाव्य 'कृष्ण गीतावली ' में माधुर्य रस का वर्णन मिलता है। ध्यातव्य है कि उनके पश्चात् अग्रदास की रचनाओं में मधुर रस की भरमार है।

जहाँ तक गौड़ीय दर्शन में निकुंज लीला की बात है, तो बाद के समस्त संप्रदाय इससे प्रभावित नजर आते हैं। गौड़ीय दर्शन में एक खास बात यह देखने को मिलती है कि चैतन्य महाप्रभु को कृष्ण का अवतार समझकर उनकी उपासना, कृष्ण उपासना की तरह की जाती थी, जब महाप्रभु जीवित थे और उसमें वर्णित सखी और मंजरी के आधार पर 'अष्टमंजरी' की कल्पना भी की गई थी । यह गौड़ीय संप्रदाय की अपनी विशेषता है । इस तरह की उपासना विधि अन्य संप्रदायों में देखने को नहीं मिलती । दूसरी बात इस संबंध में ध्यान देने योग्य है कि गौड़ीय संप्रदाय में गोपीभाव की भक्ति को प्रधानता मिली थी किन्तु बाद के संप्रदायों ने उनसे अनुप्राणित होकर सखीभाव को प्रधानता दी है। हितहरदिास जी ने तो 'सखी संप्रदाय' की स्थापना ही कर ड़ाली थी । सच देखा जाए तो गौड़ीय संप्रदाय में जो

भाव गोपीभाव कहा जाता था वही सखी संप्रदाय में सखीभाव है। दोनों भावों का मूल लक्ष्य राधा–कृष्ण को, निकुंज में रसकेलि के समय आनंद पहुँचाना है । इस संप्रदाय में सखी भाव से भी गहनतम मंजरी भाव की साधना उच्चतम मानसी साधना मानी गयी है, जिसकी अतिशय महत्ता है। मंजरी भाव की उपासना इस संप्रदाय की अति मौलिक विशेषता है; जिसकी सरस अभिव्यंजना इस संप्रदाय के कवियों की रचनाओं में उपलब्ध होती है।

हम पहले बता चुके हैं कि गौड़ीय संप्रदाय का प्रभाव अन्य संप्रदायों पर रहा है। इस संदर्भ में राधावल्लभ संप्रदाय के प्रमुख विद्वान् डा. विजयेन्द्र स्नातक ने यह बात स्वीकारी है कि **गौड़ीय भक्ति के शास्त्रीय विधान पर राधावल्लभ संप्रदाय की कोई छाप नहीं है, क्योंकि वह तो पूर्व ही विस्तार पूर्वक तैयार हो चुका था। उस क्षेत्र में हित हरिवंश जी ने स्वयं प्रेम लक्षणा के वैधी रूप के निर्माण में गौड़ीय गोस्वामियों से कुछ न कुछ ग्रहण किया होगा।** ब्रज रस, परकीया, मान विरह आदि को जो स्थान अन्य संप्रदायों के काव्यों में मिला है उसके मूल में गौडीय दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। जहाँ तक निम्बार्क संप्रदाय पर गौडीय दर्शन के प्रभाव की बात है, यह निश्चित है कि महाप्रभु चैतन्य देव से निम्बार्काचार्य एक सौ वर्ष पुराने है किन्तु गौड़ीय संप्रदाय की स्थापना के पश्चात् अन्य संप्रदाय के कवि अनायास खिंचे चले आये थे । हिन्दी साहित्य में रीतिकाल की कोटि में गिने जानेवाले कवि तथा निम्बाार्क संप्रदायी कहेजाने वाले कवि बिहारी, घनानंद, भी, उससे अछूत नहीं रहे हैं । घनानंद नाम धारी अनेक कवि हुए हैं। 'घनआनंद' नाम के एक कवि गौड़ीय संप्रदाय में भी हुए थे ।

गौड़ीय भक्ति की श्रेष्ठता से परिचित कराते हुए यह कहा जा सकता है कि चैतन्य महाप्रभु का आविर्भाव वस्तुतः विशुद्ध प्रेम और विश्व बंधुत्व का द्योतक है। महाप्रभु ने स्वयं बताया है कि जो भी नाम हमें प्रिय हो, जो भी हमारा धर्म,संप्रदाय और आजीविका हो,उसी में रहकर हमें प्रेम से भगवन्नाम संकीर्तन करना चाहिए। इतना ही नहीं, अन्य संप्रदाय जैसे द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत आदि; चाहे किसी भी आध्यात्मिक दार्शनिक सिद्वान्तवाद को जानने वाले क्यों न हो, वे प्रेम से नाम संकीर्तन कर सकते हैं । संकीर्तन करनेवालों के लिए कोई बाह्य आड़म्बरों की आवश्यकता नहीं है। शुद्व चित्त से कीर्तन मात्र करना ही मंगलकारक है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि महाप्रभु की भक्ति पद्धति किसी न किसी रूप में अन्य समस्त वैष्णव संप्रदायों से श्रेष्ठ है । महाप्रभु ने स्वयं को एक संसारी जीव मानते हुए श्रीकृष्ण से शुद्धाभक्ति की प्रार्थना की है –

"धन जन नाहिं मॉगो कविता सुन्दरी

शुद्धाभक्ति देह मोरे कृष्ण कृपा करि।"

इस प्रकार के भावनामय दिव्यपुरुष थे महाप्रभु चैतन्य गोसाईं । अंततः उन्होंने संसार के सुप्तप्रायः मानव जाति को प्रेम के भक्तिपथ दिखलाकर पुनः जागृति की ऐसी घुटि पिलाई है, जिसे भारत क्या; संसार की स्थिति रहने तक उसे भक्त हृदय भूल नहीं सकेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

क्रम सं	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	प्रकाशक
1.	अवतार	श्रीअरविंद	अदितिकार्यालय, पंड़िचेरी 1965
2.	अथातो भक्ति जिज्ञासा	ओशो रजनीश	डायमंड़पाकेट बुक्स पा.लि, एक्स–30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज– 2 दिल्ली 1995
3.	अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय भाग 1, 2	डॉ दीनदयाल गुप्त	हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द्वितीय संस्करण 1970
4.	अणुभाष्य	आचार्य वल्लभाचार्य,	ब्रजवासी दास एण्ड कंपनी, बनारस, 1907
5.	अमरकोष	हरिदास, टीकाकार श्रीहरगोविन्द शास्त्री	संस्कृत ग्रंथमाला,30 चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वारणासी–1,1957
6.	अभिलाषमाधुरी	ललित किशोरी	शाहगौरशरणगुप्ता शाहजी मंदिर वृन्दावन
7.	आनंद चन्द्रिका	विश्वनाथ चक्रवर्ती	निर्णय सागर प्रेस, बंबई
8.	उत्तरी भारत की संत परंपरा	परशुराम चतुर्वेदी	भारती भंडार, प्रयाग
9.	उज्ज्वल नीलमणि	श्री रूप गोस्वामी,	अच्युत ग्रंथमाला प्रेस, बम्बई, 1932 ई
10.	उडिया साहित्य का इतिहास (उड़िया में)	डॉ वंशीधर मोहन्ती,	गीतांजली प्रेस कटक– 1
11.	कृष्णभक्ति काव्य में सखी भाव	डॉ. शरणबिहारी गोस्वामी	चौखम्बा विद्याभवन, वारणसी–1, 1966
12.	कृष्ण कर्णामृत	लिलाशुक्ल विल्वमंगल ठाकुर	डॉ. सुशील कुमार दे द्वारा संपादित
13.	गीतगोविन्द	सं –कपिला वात्सायन	लोकभारती प्रकाशन, महात्मागाँधीमार्ग इलाहाबाद तृ .सं –1985
14.	गीता रहस्य	लोकमान्य तिलक, हिन्दी अनुवादक माधवराव सप्रे	तिलकबंधु,मुम्बई, प्रथम 1928 ई
15.	ग्वालिनी झगरौ	हस्तलिखित प्रति अंतिम पत्र	
16.	घनानंद कवित्त	(सं) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	सरस्वती मंदिर, जतनबर, बनारस, द्वितीय संस्करण

17.	चैतन्य संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य	डॉ नरेश चंद्र बंसल	पुस्तक मंदिर आगरा, प्रथम संस्करण–1980
18.	चैतन्य चरितामृत	ले. कृष्णदास कविराज गोस्वामी, सं. क्षीरादचंद्र गोस्वामी	पूर्णचंद्र शील, कलकत्ता
19.	चैतन्यमत और ब्रज साहित्य	प्रभुदयाल मीतल,	भारतप्रिंटर्स, डैम्पियरपार्क मथुरा
20.	श्री श्रीचैतन्य चरितावली (1 से 5 खंडों तक)	प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	गीताप्रेस, गोरखपुर
21.	चैतन्य संप्रदाय का ब्रज भाषा काव्य	डॉ. उषा गोयल	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली 02
22.	चैतन्य संप्रदाय और संगीत	नीलम सैम्भी	प्रिन्टवैल,सापिंगकाम्प्लेक्स, तिलक नगर, जयपुर, प्रथम–1994
23.	चिंतामणि	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	इण्डियन प्रेस प्रा.लि. इलाहाबाद
24.	पुराण विमर्श	बलदेव उपाध्याय	चौखम्भाप्रकाशन, वारणासी संस्करण–सं 2021 वि.
25.	तत्वदीप निबंध–भागवतार्थ प्रकरण	श्री वल्लभाचार्य	सं – नंदकिशोर भट्ट, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
26.	निरुक्तम् मूल निघण्टु सहितम्	मेहरचंद्र लक्ष्मण दास	मेहरचंद्र लक्ष्मण दास, दिल्ली– 1964
27.	नारद भक्ति सूत्र	नारद	गीता प्रेस गोरखपुर
28.	नंददास (दो भाग)	सं उमाशंकर शुक्ल	प्र. प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रथम – 1947 ई
29.	निम्बार्कसंप्रदाय और उसके कृष्णभक्त हिन्दी कवि	डॉ नारायणदत्त शर्मा	अशोक प्रकाशन,मथुरा,प्रथम – 1978
30.	नंददास ग्रंथावली,	नन्ददासजी	सं ब्रजरत्नदास, नागरी प्रचारणी सभा, काशी
31.	ब्रज के धर्म संप्रदायों का इतिहास	प्रभुदयाल मीतल	National Publishing house New delhi 6
32.	ब्रज साहित्य का इतिहास	डॉ. सत्येन्द्र	भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद
33.	ब्रज माधुरी सार	वियोगी हरि	हिन्दीसाहित्य सम्मेलन, प्रयाग
34.	ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य भक्ति	डा. रूपनारायण	नवयुग प्रकाशन, दिल्ली

35.	बंगला साहित्य का इतिहास	सुकुमार सने अनु – डॉ निर्मला जैन	साहित्य एकादमी, नई दिल्ली, 1978
36.	ब्रज का इतिहास– भाग 2	प्रो कृष्णदत्त वाजपेयी	
37.	ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्य	डा. कणिका तोमर	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणसी
38.	भक्ति का विकास	डॉ मुशीराम शर्मा	चौखम्बा विद्याभवन, वारणसी द्वि. सं – 1979
39.	भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत	श्रील प्रभुपाद	भक्ति वेदांत बुकट्रस्ट, हरेकृष्ण धाम, जुहू, मुंबई
40.	भागवत संप्रदाय	पं. बलदेव उपाध्याय	नागरी प्रचारणी सभा, काशी
41.	भारतीय साहित्य का संमेकित इतिहास	सं डॉ नगेन्द्र	हिन्दी माध्यम कार्यान्वय, निदेशालय,दिल्ली विश्वविद्यालय,मॉडलटाउन दिल्ली – 1989
42.	भारतीय वाड्मय में श्रीराधा	पं. बलदेव उपाध्याय	बिहारराष्ट्रभाषापरिषद,पटना, प्रथम– 1963
43.	भक्ति और शरणागति	विष्णुकांत शास्त्री	लोकभारतीयप्रकाशन, इलाहाबाद,प्रथम –1963
44.	भक्ति काव्य और लोकजीवन	शिव कुमार मिश्र	अरुणोदय प्रकाशन, दिल्ली प्रथम – 1991
45.	भक्ति सिद्धांत	आशागुप्त	लेकभारती प्रकाशन,महात्मागॉधी मार्ग, इलाहाबाद –9
46.	भारतीय दर्शन	बलदेव उपाध्याय	
47.	भक्तमाल	नाभादास	नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्रथम – 1922 ई
48.	भक्ति रसायन	मधुसूदन सरस्वती	
49.	भक्ति रसामृत सिन्धु	रूप गोस्वामी	श्रीगोस्वामी दामोदर शास्त्री अच्युत ग्रंथमाला, काशी
50.	भागवतामृत कणिका	विश्वनाथ चकवर्ती	
51.	भक्तिरस बोधिनी (भक्तमाल टीका)	प्रियादास	श्री सर्वेश्वर कार्यालय वृन्दावन, सं.2096 वि.
52.	भँवरगीत – नंददास	सं विश्वम्भर नाथ मेहरोत्रा	रामनारायण लाल बुक सेलर,इलाहाबादसंस्करण – 1942
53.	भ्रमरगीत सार	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	गोपालदाससुन्दरदास,साहित्य सेवा सदन, बनारस
54.	मिश्रबंधु विनोद	मिश्रबंधु	गंगापुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

55.	मध्यकालीनभक्ति आन्दोलन का सामाजिक विवेचन	डॉ. सुमन शर्मा	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणसी, प्रथम सं–1974
56.	मीराबाँई	डा. प्रभात	हिन्दी ग्रंथरत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, प्रथम – 1965
57.	मध्ययुगीन हिन्दी कृष्ण भक्तिधाराऔरचैतन्य संप्रदाय	डॉ. मीरा श्रीवास्तव	हिन्दुस्तानी अकादमी,, इलाहाबाद पथम्र – 1968
58.	मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति	मदन गोपाल गुप्त	नेशनलपब्लिशिंग हाउस दिल्ली, प्रथम–1968
59.	मध्यकालीन प्रेम साधना	परशुराम चतूर्वेदी	साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, प्रथम –1952
60.	मध्यकालीन धर्म साधना	हजारी प्रसाद द्विवेदी	साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद द्वि. सं–1956
61.	मध्यकालीन भारतीय संस्कृति	राय बहादुर, महामहोपाध्याय गौरी शंकर हीराचंद्र ओझा	हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, तीसरा संस्करण–1951
62.	मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद	डॉ कपिल श्रीवास्तव	चौखम्बा विद्याभवन, वारणसी
63.	मधुरभक्ति साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ के रामनाथन	सयंज बुक सेन्टर, के 38/6, गोलघर, वारणसी 4
64.	मीराबाई की पदावली	सं आचार्य परशुराम चतुर्वेदी	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
65.	राधावल्लभ संप्रदाय सिद्धांत और साहित्य	विजयेन्द्र स्नातक	नेशनलपब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
66.	रामचरित मानस	तुलसीदास	गीता प्रेस, गोरखपुर
67.	राधासुधानिधि	हित हरिवंश	वेंकटेश्वरप्रेस, बंबई 1964
68.	रसखान रचनावली	सं – विद्यानिवास मिश्र	वाणी प्रकाशन, दिल्ली 1993
69.	रामभक्ति साहित्य में मधुरभावना	भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र माधव	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना 1957 ई
70.	रामभक्ति में रसिक संप्रदाय	भगवती प्रसाद सिंह	अवध साहित्य मंदिर बलरामपुर
71.	लघुभागवतामृत	श्रीरूपगोस्वामी – श्री बलाई चाँद गोस्वामी तथा श्री अतुलकृष्ण गोस्वामी द्वारा संपादित	श्री महाप्रभु के श्रीमंदिर से प्रकाशित कलकत्ता

72.	लोचन रोचनी	जीव गोस्वामी	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
73.	वैष्णव धर्म	परशुराम चतुर्वेदी	राजकमल प्रकाशन दिल्ली, द्वितीय संस्करण
74.	विवेकचुडामणि	शंकराचार्य	
75.	वेदार्थ संग्रह	श्रीरामानुज	
76.	वेदांत सार	रामानुज	सं – वि कृष्णमाचार्य
77.	विष्णुपुराण	सं –जीवानन्द विद्यासागर	सरस्वती प्रेस, मुम्बई –1882 ई
78.	बृन्दावनमहिमामृतम्	प्रबोधानंद सरस्वती	
79.	वैष्णव सिद्धांत रत्न संग्रह	सं. और प्रकाशक –श्यामल हकीम,	वृन्दावन, प्रथम 1953
80.	विरह लीला	कवि आनंदघनकृत, सं– काशी प्रसाद जायसवाल	काशी नागरणी प्रचारिणी सभा
81.	वैष्णव साहित्य प्रवेशिका	श्री हिमांशु चंद्रचौधरी	प्रकाशकजेनरल, प्रिन्टार्स एण्ड पब्लिसर्स लिमिटेड, 119 धर्मशाला स्ट्रीट, कल्कत्ता
82.	शाण्डिल्य भक्ति सूत्र	शांडिल्य	गीता प्रेस, गोरखपुर
83.	श्रीमद्भगवद्गीता	श्रीकृष्णदास गोयन्दका	गीता प्रेस, गोरखपुर
84.	श्रीराधा का क्रम विकास	शशि भूषण दास गुप्त	हिन्दीप्रचारक पुस्तकालय,वारणसी–1956
85.	संस्कृति का चार अध्याय	रामधारी सिंह दिनकर	लोकभारतीय प्रकाशन, 15 ए महात्मा गॉधी मार्ग, इलाहाबाद, द्वितीय सं – 2000
86.	सूर ओर उनका साहित्य	डॉ हरवंश लाल शर्मा	भारत प्रकाशन मंदिर सुभाष रोड, अलीगढ छटवॉ सं 1995
87.	सूर साहित्य	हजारी प्रसाद द्विवेदी	श्रामकमल प्रकाशन, दिल्ली तृतीय सं.1989
88.	स्वामी हरिदासजी का संप्रदाय और उसका वाणी साहित्य	डॉ गोपाल दत्त	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
89.	सगुण भक्ति काव्य के आराधना के विवध स्वरूप	डॉ भीमराज शर्मा	मंगल प्रकाशन, जयपुर
90.	संत वैष्णव काव्य पर तांत्रिक प्रभाव	डॉ विश्वंभर नाथ उपाध्याय	विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
91.	सुबेधिनी टीका	आचार्य वल्लभाचार्य, भाषन्तर– देवर्षि रमानाथ शास्त्री	विद्याविभाग, श्रीनाथ
92.	सर्व संवादिनी	जीव गोस्वामी	बाबा कृष्णदास, मथुरा

93.	सूरसागर	सूरदास	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
94.	सूरसागर	सूरदास	वेंकटे श्वर प्रेस, बम्बई संस्करण संवत 1967 वि
95.	सूरसागर	सूरदास	नवल किशोर प्रेस, लखनऊ
96.	श्री सुधर्मबोधिनी	लाडलीदासकृत, पं. भीमसेन जी रामनंद जी पुरोहित अटरे	राज्य ग्वालियर प्रथम संस्करण वि 1984
97.	श्रीकृष्ण गीतावली		गीता प्रेस, गोरखपुर
98.	सहजिया साहित्य	श्री मनीद्र मोहन बसु	कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1932
99.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	नागरी प्रचारणी सभा, काशी
100.	हिन्दी भाषा और साहित्य	डा. श्यामसुन्दर दास	
101.	हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास	बाबू गुलाबराय	
102.	हिन्दी साहित्य की भूमिका	हजारी प्रसाद द्विवेदी	हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर बम्बई 1944
103.	हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास	हजारी प्रसाद द्विवेदी	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 6 ठवाँ सं– 1992
104.	हिन्दी और बंगाली कृष्णकवि	सं –रत्नकुमारी	भारती साहित्य मंदिर फव्वारा, दिल्ली
105.	हिन्दी और तेलुगु वैष्णव भक्ति साहित्य	डॉ. के रामनाथन	विनोद पुस्तक मंदिर आगरा, प्रथम सं 1968
106.	हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य	डॉ. के भास्करन नायर	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, प्रथसम संस्करण 1960
107.	मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतांत्रिमक अध्ययन	डॉ सत्येन्द्र	विनोद पुस्तक मंदिर, हास्पिटल रोड आगरा, प्रथम 1968
108.	हिन्दी भक्तिरसामृत सिन्धु	सं. डॉ नगेन्द्र	हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली, प्रथम 1963
109.	हिन्दी के कृष्णभक्ति कालीन साहित्य में संगीत	डॉ उषागुप्ता	लखनऊ विश्वविद्यालय
110.	हिन्दी कृष्णभक्ति साहित्य में मधुराभाव की उपासना	डा. पूर्णमासी राय	अभिनव भारती प्रकाशन, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

111.	हित हरिवंश की स्फुटवाणी	सं – भोलनानाथ जी	
112.	हिन्दी वेष्णव साहित्य में रस परिकल्पना	प्रेम स्वरूप	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 6
113.	हिन्दी काव्य शास्त्र में रस सिद्धांत	डॉ सच्चिदानंद चौधरी	
114.	हिन्दी साहित्य	डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी	अनंत चंद कपूर एंड सन्स, दिल्ली 1952
115.	हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य पर पुराणों का प्रभाव	डॉ. शशि अग्रवाल	हिन्दुस्तानी अकादमी उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद,प्रथम–सं 1960

English books

1. A History of Hindi literature – Mr. F. E. Key
2. Chaitanya His life and doctrine – A K Majumdar, Bharatiya Vidya Bhavan chaupati Bombay 1969
3. The chaitanya movement – M T Kennedy, Oxford University press 1925
4. Chaitanya and his companion
5. The culture heritage of India – vol II (`1337 AC)
   Pub: Sri Ramakrishna centenary committee Belur math Calcutta
6. History and evolution of vaishnavaism in eastern India - Pranabananda Jhash
7. History of Tirupati – S Krishnaswamyu Ayengar, vol 1
8. Vaishnavism, Saivism and other Minor relilgious systems, R.G. Bhandarkar, Bhandarkar, oriental research institute, Poona 1928 AC
9. Essays on the religions of the Hindus- vol 1- H.H. wilson
10. Thus spake sri ramakrishna (5^{th} Edition 1948 AC) compiled by Swami suddha satwananda

11. Early History of the vaishnava faith and movement in Bengal - S.K Day
12. An approach to oriya lilterature -- Dr Janaki Ballabh mohanty
13. The chaitanya movement --- M.T Kennedy, The Religious life of India series, calcutta 1925

पत्र–पत्रिकाएँ

1. कल्याण , भक्त चरितांक – गीताप्रेस, गोरखपुर
2. कल्याण, भागवत अंक सन् 2003
3. कल्याण, संकीर्तनांक सन् 1986
4. श्री गैरांग, सं –बाबु ब्रजरत्नदास, भूषण शाह, लंका, वारणसी
5. Journal of Srivenkatewwaara university, Tirupathi, July- Dec 1956
6. तुलसी मानस, नवधा भक्ति विशषांक, जनवरी, 2004
   तुलसी मानस प्रतिश्ठान मध्य प्रदेश, मानसभवन, यामला हिरन, भोपाल 62
7. जीवन संचेतना – अप्रेल –2003

8- Modern Hinduism and its debts to the Nestorians DV c

9. धर्मयुग – सं धर्मवीर भारती ,टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस, बंबई –1
10. नागरी प्रचारिणी पत्रिका – नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
11. परिषद पत्रिका – बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना